ॐ
॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥
आचार्य सुधांशुजी महाराज
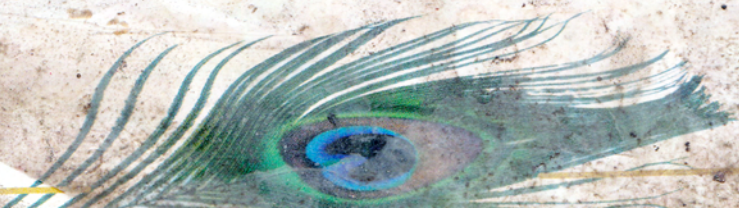
दो शब्द

प्रभात की पहली किरण उस दिन एक सन्देश लेकर आई जिससे मैं अनजान थी। यमुना नदी के तट पर, कृष्ण नगर स्थित, राधा माधव मन्दिर में एक बार फिर इतिहास लिखा जाना था, एक बार फिर गीता के स्वर कृष्ण के मुख से निकले, फिर वंशी की मधुर तान छेड़ी गई, फिर सुनी दुनिया ने स्वर लहरी।

उस समय गाई गई गीता और आज कही गई गीता में केवल इतना अन्तर था कि वह गीता विषाद से ग्रस्त अर्जुन को कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में सुनाई गई थी, जिसका कि केवल अर्जुन ने श्रवण और मनन किया किन्तु बीसवीं सदी के कृष्ण द्वारा गाई गई गीता को आज लाखों, करोड़ों विषाद ग्रस्त अर्जुन ने अनेक प्रसारण माध्यमों से सुना।

मुझे याद आता है, मैंने कहीं पढ़ा था कि युद्ध समाप्त होने पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से एक बार फिर गीता का ज्ञान सुनाने को कहा और भगवान कृष्ण केवल मुस्कुराए उनकी यह मुस्कान एक इशारा था अर्जुन को कि अर्जुन यह जो ज्ञान तुम्हें दिया गया यह कोई साधारण ज्ञान नहीं था, इसके लिए तुम एक योग्य पात्र बने इसीलिए इस रहस्य को मैंने केवल तुम्हें युद्ध में सुनाया था। आज के इस अर्जुन की यह हालत न हो जाए इसीलिए इस अर्जुन ने गीता को सुनते-सुनते इसको साथ-साथ लिखना शुरू कर दिया ताकि यह गुह्यज्ञान आज की दुःखी पीड़ित मानव जाति को एक नई संजीवनी देने का कार्य जिस प्रकार करती आ रही है उसकी प्रकार करती रहे।

अर्जुन ने गीता को भगवान कृष्ण के मुख से श्रवण किया और गणेश जी ने गीता लिखी। जहाँ अर्जुन और गणेश जी दोनों का कार्य एक जगह आकर मिल गया क्या आप उस अति सौभाग्यशाली व्यक्ति की मनोदशा का अन्दाज़ा लगा सकते हैं?

भगवान कृष्ण मेरे इष्टदेव हैं और मैंने आज के आधुनिक युग के वैचारिक क्रान्ति लाने वाले कृष्ण के मुख से गीता सुनी है अर्थात् अपने गुरु के मुख से गीता का श्रवण किया है। भगवान कृष्ण मेरे गुरु हैं। जैसे भगवान कृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन को गीता सुनाई, वह प्रवाह फिर बहा, फिर शिष्य सम्मुख हुआ, एक बार फिर अमृत बंटा।

एक बार फिर भगवान कृष्ण ने मेरे गुरु के रूप में इस धरती पर अवतरण किया है। सच तो यह है कि जिस कठिन और अगम ज्ञान को गुरुजी ने इतने सरल और सुगम तरीके से व्याख्या की उसको समझने के लिए भी अर्जुन जैसा श्वेत मन लेकर बैठना आवश्यक है तभी उसकी गहराईयों में पहुँचा जा सकता है।

भगवान कृष्ण की इतनी असीम कृपा मुझ पर हुई कि मैंने गीता को श्रवण किया गुरुजी के मुख से और अब उसको प्रकाशित करने जा रही हूँ।

मुझे जो अनुभूतियाँ गीता का श्रवण करते हुए हुईं उन्हें शब्दों में व्यक्त कर पाना सहज कार्य नहीं है। परम पिता परमात्मा के कार्यों में कभी भी कोई समस्या नहीं आई। प्रभु अपने कार्यों को पूर्ण कराने के लिए अपने सहायक भेज देते हैं और मैं उन सभी का हार्दिक धन्यवाद करती हूँ।

अपने गुरु के चरणों में सादर समर्पित

आनन्दमयी

अनुक्रम

भू मि का

गीता है संजीवनी
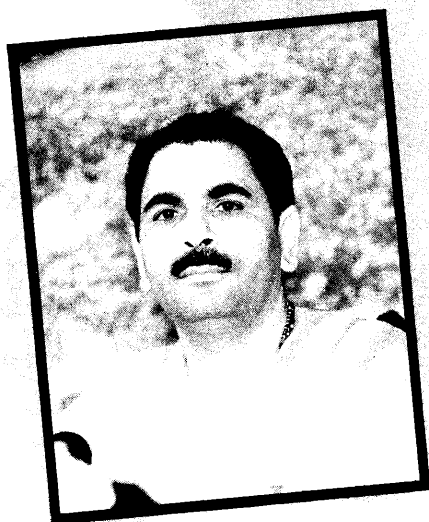
ाँच हज़ार दो सौ बाईस वर्ष पूर्व, कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में यह एक महान गीत कहिये, संगीत कहिये, जो हर किसी के जीवन को जीवन देने का, संजीवनी देने का कार्य करता है, उस गीत को हम गीता के नाम से जानते हैं।

गीता और गंगा भारत देश की पहचान हैं। जैसे सारे संसार में गंगा एक ही है दूसरी गंगा नहीं है ऐसे ही सारे संसार में गीता एक ही है और जैसे सदियों से गंगा लोगों के तन-मन और जीवन को निर्मल करती रही है, ऐसे ही कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में गाई गई गीता भी पाँच हज़ार वर्ष ही कहिए – क्योंकि भगवान की वाणी है, सदा से थी, सदा है और सदा रहेगी – इस वाणी के माध्यम से जन कल्याण होता है और होता रहेगा। इसीलिए हमारे ग्रन्थों में बहुत सुन्दर ढंग से इसका वर्णन किया गया है; अगर भीष्मपर्व को हम उठाकर देखें बहुत ही सुन्दर उल्लेख है:

गीता सुगीता कर्तव्या किम् अन्ययी शास्त्र संग्रही

गीता को सुगीत बनाओ, अर्थात् गीता का गान गाओ, गीता को पढ़ो, गीता का श्रवण करो, गीता को मनन करो, गीता को निरिध्यासन करो क्योंकि समस्त शास्त्र इसी में आ जाते हैं और कहा गया है कि अगर गीता है तो फिर और किसी शास्त्र की आवश्यकता नहीं है अर्थात् समस्त शास्त्रों का सार गीता ही है। यह भी कहा गया है –

गीता गंगा च गायत्री, गोविन्देयति हृदयस्थिति पुर्नजन्म न विद्यते

– अर्थात् जिसके हृदय में यह चार चीजें हैं – गीता, गंगा गायत्री और गोविन्द – यह जो चतुर्थगकार हैं, "ग" हैं, जिसने यह हृदय में धारण कर लिए *पुर्नजन्म न विद्यते* – उसके लिए फिर मोक्ष हो ही जायेगा, भक्ति हो ही जायेगी, फिर जन्म लेकर बार-बार दुनिया में भटकना नहीं पड़ेगा अर्थात् अगर अपना कल्याण करने की कामना हमारे मन में है तो इन चार – गीता, गंगा, गायत्री और गोविन्द – को अपने हृदय में बसा लो।

यहीं तक नहीं बाद में स्कन्ध पुराण में यहाँ तक वर्णन किया गया है कि गीता का जाप, गीता का पाठ साधारण नहीं है –

एतत् पुण्यं पाप हरं धन्यं दुख प्रणाशनम्

– अर्थात् यह इतना अनोखा पाठ है कि इससे पुण्य की वृद्धि होती है; *पाप हरं*-और पाप नष्ट हो जाते हैं, *धन्य अर्जो* जो इसका पाठ करता है वह वास्तव में धन्य हो जाता है और यहाँ तक कहा गया है कि ऐसा ही मत समझो, वही धन्यवाद का पात्र भी है, उसने अपने जीवन को धन्य कर लिया; *दुखप्रणाशनम्* गीता या हरि का स्मरण दुःख को नष्ट करने वाला है, समस्त पाप, सन्ताप को दूर करने वाला है।

तो ज़रा विचार करके देखिए कि इसमें सारी ही चीजें आ गईं- अगर दुख दारिद्र दूर करना हो तो गीता का पाठ कीजिए, अगर धन-समृद्धि की कामना है तो पाठ कीजिए, अगर चाहते हैं कि हमें समस्त तीर्थों का पुण्य मिल जाये तो पाठ कीजिए, और अगर चाहते हैं कि हमारे पाप जो हमें कष्ट देते हैं उनसे त्राण पाने की इच्छा है तो कहा है गीता का पाठ कीजिए।

यह तो शास्त्र चर्चा हुई; अगर हम दूसरे ढंग से भी विचार करें - गांधी, जिन्हें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नाम से जानते हैं, हमारे देश को गुजरात की धरती से उगा हुआ एक सूर्य की तरह से प्रकाश देने वाला व्यक्तित्व हुआ। भारत देश की आज़ादी के लिए उन्होंने बहुत बड़ा कार्य किया।

महात्मा गांधी ने स्वयं कहा है कि गीता मेरे लिए माता है; जब भी थका-हारा, निराश मन लेकर गीता की शरण में पहुँचा हूँ, इसने मुझे नई संजीवनी दी है।

लोकमान्य तिलक को कर्म के नये सिद्धान्त और जीवन संघर्ष में सफल होने का सन्देश अगर कहीं से मिला तो वह गीता से ही मिला।

विनोबा भावे जी कहते रह गए कि जितना गऊ के दूध से मेरे शरीर की पुष्टि हुई है उससे कहीं अधिक मेरे व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है गीता के दूध से, गीता के ज्ञान से; माँ की लोरी की तरह से गीता ने मुझे सदैव शान्ति दी।

चाहे राजगोपालाचार्य हों या डा० राधाकृष्णन् – जिनका भी नाम लें, हर व्यक्ति गीता से प्रभावित हुआ है। भारत की आज़ादी में जो भी संघर्ष क्रान्तिकारी लोगों ने किया – चाहे वह नरम दल के लोग थे या गर्म दल के

लोग थे, आनन्दपूर्ण बात यह रही कि फांसी के फन्दे पर झूलने वाले लोग, प्राणों को हथेली पर रख कर चलने वाले लोग, वह भी अगर कहीं से प्रेरणा लेते थे तो गीता से।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

–अर्थात् तुम्हारा आत्म तत्व वह तत्व है जिसको कोई शस्त्र काट नहीं सकता, न अग्नि जला सकती है, न हवा इसे सुखा सकती है, न पानी इसे गीला कर सकता है।

वांसासि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

– जिस प्रकार से मनुष्य अपने पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्र धारण करता है, पुराना छोड़कर खुश होता है और नए वस्त्र धारण करके प्रसन्न होता है ऐसे ही यह ज्ञानी आत्मा अपना पुराना, जराजीर्ण शरीर को त्यागकर इस चोले को त्यागकर, नवीन शरीर को धारण करके प्रसन्न होता है।

अब यह विचार जैसे-जैसे किसी क्रान्तिकारी के हृदय में उठे उसे महसूस हुआ कि चोला बदलने में कोई देर नहीं लगने वाली, नया चोला मिलेगा, फिर से कार्य करेगें, किसी तरह का कष्ट नहीं हुआ, मन क्षुब्ध नहीं हुआ जबकि फाँसी के फन्दे को देखकर हर कोई घबरा जाता है।

हम सभी लोग केवल अपना ही पालन-पोषण करने में लगे हुए हैं, अपना घर परिवार, लेकिन परायी आग में कूदने के लिए कौन तैयार है ? दूसरे का दु:ख दर्द दूर करने के लिए कौन आगे आयेगा? अगर सामने संघर्ष हो, कष्ट हो, तो कष्टों को अपने सिर पर ओढ़ने के लिए कौन आगे आयेगा? लेकिन जिसने गीता की अमृतमयी ज्ञान की बूँदों को चख लिया उसके लिए स्वयं का कष्ट तो कष्ट रहा ही नहीं। वह दुनिया के कष्टों का निवार्ण करने के लिए निकल पड़ा।

इसीलिए गीता संजीवनी है, सांस लेने वाले हम मुर्दा लोगों के अन्दर एक नयी जान फूँकने का काम यदि कोई ग्रन्थ कर सकता है तो वह गीता है। इसीलिए यह ग्रन्थ साधारण नहीं माना जाना चाहिए। यह ग्रन्थ केवल हाथ जोड़कर प्रणाम कर देने के लिए नहीं है, इस गीत संगीत को गुनगुनायें – होठों से नहीं, हृदय से और अपने कानों से – तब यह जीवन संगीत बनेगा।

कर्तव्य के रथ से उतरकर भागने की इच्छा रखने वाले अर्जुन के मन को गीता के माध्यम से भगवान कृष्ण ने एक नई संजीवनी दी:

"भागो नहीं, जागो, अपने स्वरूप को पहचानो"

इसीलिए भगवान कृष्ण ने गीता के माध्यम से सबसे पहले यह अनोखी चीज़ संसार को दी; और सब ग्रन्थों में शायद भागने की बात कही होगी–संसार से विमुख हो जाओ, दुनिया की तरफ नहीं देखो, संसार में क्या है, वन की तरफ़ चलो – बहुत सारे तर्क़ दिए लेकिन भगवान कृष्ण ने ऐसा कोई नारा नहीं दिया; उन्होंने कहा है कि जीवन एक संघर्ष है, एक चुनौती है, परीक्षास्थल है, रणक्षेत्र है – इसका सामना करना होगा, परीक्षा देनी ही होगी; संघर्ष तब तक रहेगा जब तक सांस चलेगा, इसीलिए संघर्ष से भागना नहीं स्थिर होकर उसका सामना करना।

युधिष्ठिर का अर्थ है- *युद्धि* –जो युद्ध में स्थिर है, युद्ध में स्थिर रहने वाला; दुर्योधन का अर्थ है–*योधन*– लड़ने वाला, दुर्योधन अर्थात् 'जो बुरी तरह लड़ता है।'

सरल लोगों को जल्दी से जल्दी संसार की हर हवा प्रभावित करती है। अर्जुन को भी हल्की–सी हवा प्रभावित कर गई, मन विमुख हुआ लेकिन फिर से उस हवा से सही शुद्ध हवा की ओर ले जाने का काम भगवान कृष्ण ने किया।

तो मैं इसीलिए कहना चाहूँगा कि चाहे क्रान्तिकारी लोग हुए या फिर वह लोग जो लोगों को इकट्ठा करके देश की आज़ादी के लिए कार्य करते रहे, उन सबके सामने गीता शक्ति बनकर खड़ी हुई।

गीता को इसीलिए भी पढ़ना, चिन्तन करना क्योंकि यह हमें कर्तव्य बोध कराती है। जीवन के हर क्षेत्र में ठीक ढंग से चलने का रास्ता गीता हमें देती है।

जीवन में इसीलिए कायरता से वीरता का सन्देश गीता है – कायर, डरपोक बनकर भागो नहीं, अपनी ज़िम्मेदारियों से पीछा छुड़ाने की कोशिश मत करो, अपनी ज़िम्मेदारियाँ तुम्हें उठानी पड़ेंगी, तुम्हें अपने कर्तव्य निभाने पड़ेंगे, कर्तव्य पालन करते–करते न जाने कितनी बार मन में निराशाऐं आयेंगी किन्तु निराश मत होना, मन को फिर से तैयार करना होगा क्योंकि तुम्हारा भाग्य बदलने के लिए कोई और आने वाला नहीं है, अपने ही हाथों से अपने भाग्य का निर्माण तुम्हें स्वयं करना होगा।

विषाद से प्रसाद की ओर चलने का मार्ग गीता है इसीलिए प्रथम अध्याय को ही विषाद-योग कहा है कि आकर खड़े हो गए विषाद में, दुःख में, संताप में, निराशा में; अब विषाद से प्रसाद की ओर चलना है, प्रसन्नता की ओर चलना है।

प्रसन्नता कोई दे नहीं जायेगा, बाज़ार से, दुकान से कहीं मिलेगी भी नहीं यह ऐसा नहीं होता कि आज कहीं किसी दुकान पर जायें और जाकर के कहें कि जी यह थोड़े से रुपये हैं इसकी थोड़ी-सी प्रसन्नता दे दीजिए – सौ ग्राम दे दीजिए, सौ ग्राम क्या, यदि किसी धनी को यह पता लग जाए कि प्रसन्नता मिल रही है तो वह करोड़ों रुपये देकर के कहेगा कि दो चार क्विंटल प्रसन्नता तो हमें ही तोल कर दे दो। फिर तो निर्धनों के आँगन में तो कभी प्रसन्नता होगी ही नहीं, सारी प्रसन्नता जमा पूँजी बनकर के किसी सेठ की तिजोरी में कैद हो जायेगी।

लेकिन अनोखी बात यह है कि प्रसन्नता जीवन जीने के अन्दाज़ से आयेगी और जीवन जीने का अंदाज अगर किसी का अच्छा है तो फिर भले ही वह झोपड़ी में भी क्यों न रहता हो प्रसन्नता के फूल वहीं खिलने लग जायेंगे और अगर किसी व्यक्ति के जीवन में यह सुव्यवस्था है ही नहीं तो महलों के अन्दर भी विषाद, निराशा, आंहें भर रही होगी, आनन्द नहीं रहेगा।

इसीलिए विषाद से प्रसाद की ओर चलने का नाम गीता है। मरणधर्मा मनुष्य को अमृतमय बनाने का सन्देश जहाँ से मिला उस सन्देश का नाम गीता है क्योंकि हम सभी मरणशील लोग हैं और यही डरते रहते हैं कि हम मिट न जायें, हम खो न जायें, हमारा कुछ छिन न जाये, कोई हमारा कुछ ले ना ले, हर समय डर में सहमें हुए हैं, चिन्ताओं में जी रहे हैं निराशा हमें खोखला कर रही है।

भगवान कृष्ण समझाते यहीं हैं कि तुम्हारा कोई कुछ छीन नहीं लेगा, तुम अपने स्वरूप को पहचानो क्योंकि तुम चैतन्य आत्मा हो। अनित्य है तो यह शरीर और नित्य है तो यह आत्मा; मिटने वाला तत्व तो है शरीर और जो मिटने वाली नश्वर चीजें हैं उनकी चिन्ता क्यों करते हो – आऐंगी जायेंगी, मिलेंगी बिछड़ेंगी – संसार है ही संयोग और वियोग का स्वरूप।

लेकिन जो मिलकर नहीं बिछड़े, पाकर जिसको न खो दे हम, जो सदा हमारे पास रहेगा वह तत्व परमतत्व है-परब्रह्म परमेश्वर-वहाँ से अपने को जोड़ने की कोशिश करो। इन मिटने वाले पदार्थों के साथ अपने को जोड़ोगे तो रोज़ ही दुःखी होगे क्योंकि यह पदार्थ कभी मिलेंगे और कभी बिछड़ेंगे। इसीलिए गीता स्वरूप ही अलग़ है।

मरणधर्मा को अमृत का सन्देश देती है गीता और मैं तो कहूँगा आलसी को कर्मठता का उपदेश गीता से मिलता है, भागने वाले को जागने का सन्देश गीता से मिलता है, गिरे हुए को उठाने का हाथ गीता है। इसका महात्म् कम नहीं है।

सात सौ श्लोकों की यह गीता, ऐसा समझिये कि सात सौ मंत्र, सात सौ प्रकार के विचार ही नहीं हैं, एक विचार न जाने कितने-कितने सुन्दर विचारों को जन्म देने की शक्ति रखता है।

मनुष्य विचारों से ही बना है। हमारे अगर विचार महान् होंगे तो जीवन भी महान् होगा। इसीलिए इस बात का ध्यान करना – विचारों में कभी हीन नहीं होना, विचार कभी हल्के नहीं होने देना। अग़र कभी-कभी हमारा मन निराशा से ग्रस्त हो जाये तो भगवान कृष्ण के सन्देश को चिन्तन करना शुरू कर दीजिए, नई शक्ति मिलेगी।

गीता में एक चीज़ और देखेंगे आप लोग – गीता में योग की शिक्षा है। इसीलिए जितने भी अध्याय हैं गीता के उनके साथ योग जुड़ा हुआ है और भगवान कृष्ण के नामों में एक नाम "योगेश्वर" भी है। पता यह चला कि भगवान कृष्ण हमें योग युक्त होने का सन्देश दे रहे हैं इसीलिए अर्जुन को भी वह कहते हैं –

"तस्मात् योगी भव अर्जुन"

अर्जुन तुम योगी बनो और यह भी भगवान कृष्ण समझते हैं कि योग है क्या ?

"समत्वम् योग उच्यते"

सब में सम भाव रखना यही योग है; वैर नहीं, विरोध नहीं, निन्दा नहीं, आलोचना नहीं; किसी के गुणगान गाने में लग जायें क्योंकि हमें उससे कुछ लेना है और जिससे हमारे स्वार्थ की पूर्ति दृष्टि नहीं हो रही है उसका विरोध करने के लिए खड़े हो जायें या अकारण शत्रुता पैदा कर लें।

अर्जुन को इस योग को सिखाने का मतलब क्या है भगवान कृष्ण का-कि फटे हुए दिल सिल सकें, टूटा हुआ मन जुड़ सके, प्यार के धागे में गांठ ना पड़ जाए।

ज़रा सोच कर के देखिये – एक तरफ दुर्योधन है जो जुड़े हुओं को तोड़ना चाहता है और एक पक्ष वह है, पाण्डव पक्ष, पाण्डु पुत्र, सभी कोशिश कर रहे हैं कि जुड़ जायें, भले ही हमें झुकना पड़े।

आप लोग जानते हैं हमारे देश में तरह-तरह की कथायें प्रचलित हैं; हम लोगों ने बचपन में कभी सुना था कि एक बार बादशाह ने अपने बुद्धिमान वज़ीर बीरबल से यह प्रश्न किया कि ऐसी कोई चीज़ बताओ जो घर में आ जाए तो घर मिट जाए, जीवन में आ जाए तो जीवन मिट जाए, परिवार में आ जाए तो परिवार मिट जाए और मोहल्ले में आ जाए तो मोहल्ला बर्बाद हो जाए और देश में आ जाए तो देश ना रहे-ऐसी चीज़ का नाम क्या है?

बीरबल मुस्कुराए और मुस्कुराकर बोले – उस चीज़ का नाम है "फूट" – फूट जिस घर में आ गई घर बर्बाद, परिवार में आ गई परिवार बर्बाद, जिस संगठन में फूट आकर बस गई वह संगठन बर्बाद और जिस मोहल्ले में फूट आकर बैठ गई वह मोहल्ला बर्बाद और जिस नगर में फूट पड़ गई वह नगर बर्बाद और जिस देश में फूट के बीज़ चारों तरफ से अकुंरित होने लग जायें तो फिर समझ लेना वह देश भी देश नहीं रहता, सबको तोड़ने का काम फूट करती है और जोड़ने का काम त्याग करता है।

पढ़िये वेद को, प्रश्न है – *प्रच्छामि त्वा भुवनस्य नाभिः?* संसार की धुरी क्या है जिस पर संसार के सम्बन्ध टिके हुए हैं?

बड़ा सुन्दर उत्तर है – *'अयं यज्ञो भूवनस्य नाभिः'*

यज्ञ की भावना, त्याग की भावना, यही है संसार का केन्द्र बिन्दु क्योंकि यज्ञ करने वाले लोग 'स्वाहा' और 'इदनमम्' यह शब्द बोलते हैं-यह मेरा नहीं है।

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' – मेरे प्रभु तेरा ही था, तुझे ही अर्पित कर रहा हूँ – कहा कि जहाँ भी त्याग की भावना होगी उससे पैदा होगा प्रेम और प्रेम ही वह बन्धन है जो संसार को बांधे हुए है, प्रेम ही वह धूरी है जिस पर संसार टिका हुआ है मतलब प्रेम और त्याग न हों तो संसार के

सम्बन्ध ही न हों। मज़े की बात यह है कि प्रेम, आदर, मान, प्रेम के ही अलग़-अलग़ रूप है चाहे स्नेह है वात्सल्य है, आदर है, सम्मान है –. न माँगने से मिलता, न खरीदने से खरीदा जाता ; यह कुछ चीज़ ही अलग़ है, इसे कमाना पड़ता है।

आप पैसा दे करके नौकर तो खरीद लोगे किन्तु सेवक नहीं मिलने वाला, अपनी नौकरी पूरी करने के लिए नौकर सामने खड़ा दिखाई देगा-घण्टी बजाओगे, वह सामने खड़ा दिखाई देगा लेकिन सेवादार नहीं; सेवादार पैसों से नहीं खरीदा जा सकता-वह आपके प्यार का भूखा है, प्यार दीजिए उसे और वह आपके लिए अपनी जान लुटाने के लिए तैयार हो जायेगा–यह क़िस्मत के खेल हैं। अग़र पैसे से खरीदा जा सकता है तो फिर लाइन लगाकर के लोगों को खड़ा किया जा सकता है लेकिन आदमी तरसता रहेगा; नौकरों की भीड़ ही रहेगी वफ़ादार कोई भी नहीं, सेवक कोई भी नहीं। तुम उसके लिए त्याग करो वह तुम्हारे लिए त्याग करे, नौकर के लिए मालिक और मालिक के लिए नौकर त्याग करे और बल्कि मालिक और नौकर वाली तो बात ही ख़त्म हो जानी चाहिए, जहाँ सम्बन्ध बनने लग जाते हैं, नौकर को व्यक्ति अपना बेटा कहने लग जाए और नौकर यह कहे कि यह मेरे लिए अन्नदाता ही नहीं, इनके रहते मेरे सिर पर छाया है-वहाँ एक प्यार पैदा हो गया, उस पर सम्बन्ध टिक गया। अब आप देखेंगे कि पैसा दूर रह गया, यह कीमती चीज़ आगे आ गयी।

यहाँ तक देखने में आया है कि बाप को खून की ज़रूरत पड़ी बेटा खून देने के लिए आगे नहीं आया, लेकिन जिसके साथ प्यार के दो-बोल बोलकर जिसे अपना बनाया था वह नौकर आगे आ गया और उसने कहा – मालिक इन रगों में अग़र खून है तो तुम्हारा इसीलिए अग़र तुम्हारा यह खून तुम्हारे काम आ जाए तो फिर हमारे लिए इससे बढ़कर और खुशी की बात क्या होगी। उससे पूछें कि अरे तेरा मेरा रिश्ता ही क्या है, तुझे देता कितना हूँ – दो सौ, चार सौ, एक हज़ार, दो हज़ार रुपये ही तो देता हूँ! कहता है – मालिक रुपया तो आप जानिए, हमें तो यह पता है कि जो आप प्यार देते हैं उसकी कोई कीमत नहीं है इस संसार में। इस प्यार की भावना पर टिका है यह संसार।

सब में समभाव रखो या सब में प्यार का भाव रखो। भगवान इस को योग कह रहें हैं।

इसीलिए गीता की यह जो भूमिका जो मैं आपके सामने रखने लगा हूँ न जाने कितने कितने कण्ठों से गीता के यह गीत उच्चारित किये गए, मैं कहने वाला कोई पहला व्यक्ति नहीं हूँ। मेरे बाद भी न जाने कितने कितने लोग इसको कहेंगे लेकिन जैसी डुबकी लगा पाया हूँ, जैसा हृदय में गीता को अनुभव करता हूँ उसे वैसा ही आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

मैं निवेदन करुँगा आपसे संसार को जोड़ने की चीज़ है – त्याग; संसार को तोड़ने की चीज़ है – स्वार्थ। अपना अपना स्वार्थ लेकर चलोगे सम्बन्ध टूटेंगे, जीवन बिखरेगा; एक दूसरे के प्रति त्याग करके देखिये।

जिस समय ब्रिटिश हुकूमत थी भारत देश में, बंगाल में, एक ऑफिसर ने अपने गवर्नर को पत्र लिखा कि यहाँ के ऑफिसर मेरा आदर नहीं करते, मेरा कहा नहीं मानते, प्यार नहीं करते, यह लोग मेरे साथ ठीक नहीं रहते, इनका बर्ताव मेरे साथ बड़ा गलत है, आप कृपया इन लोगों को ठीक कीजिए, कृपया करके कुछ ऐसा कार्य कीजिए कि इन लोगों को धमकाओ – थोड़ा बहुत आदर करना सीखें, मान करें, प्यार से रहें हमारे साथ, इनका सलूक अच्छा हो, इन लोगों के अन्दर प्यार ही नहीं है, बड़े निर्दयी लोग हैं।

गवर्नर ने अपना पत्र उसको लिखा और जो कुछ लिखा उसमें, वह पंक्तियां अखबारों में छपीं। उन्होंने लिखा कि प्यार ऐसी चीज़ है कि जिसको हम किसी को तनख़्वाह देकर नहीं खरीद सकते; तुम अगर किसी को पैसा देकर उसका प्यार लेना चाहो कि वह तुम्हारा आदर करे तो यह मुमकिन नहीं; अगर यह चीज़ तुम्हें चाहिए तो यह चीज़ किसी की सिफारिश से तुम्हें मिलने वाली नहीं है, इसे खुद कमाने की कोशिश करो; थोड़ी गर्दन झुकाओ, अपने आपको हो सके तो थोड़ा छोटा करने की कोशिश कर लो, दूसरों के मान को भी मान समझने की कोशिश करो और हो सकता है तुम्हें यह चीज़ फ्री में मिल जाए, पैसा ख़र्च करना ही न पड़े।

थोड़ा-सा झुकना, दूसरे के मान की रक्षा करना, इसमें अपना मान है थोड़े से कडुवे शब्द न जाने कितने कडुवे शब्दों को निमन्त्रण देते हैं, छोटी-सी आलोचना न जाने कितनी बड़ी आलोचना बनकर आपके सामने आयेगी और थोड़ी-सी किसी की निन्दा करके देखिये, कितनी निन्दा के पात्र आप बन जायेंगे। थोड़े प्रशंसा के अच्छे शब्द भी कहकर देखिये उनसे आपको कितना लाभ होगा; आपके जीवन में जितनी भी विशेषतायें हैं उन विशेषताओं को सम्भालिये।

जीवन को व्यवस्थित करने का नाम योग है और योग गीता का सन्देश है।

इब्राहिम लिंकन अमेरिका के राष्ट्रपति बने। एक मित्र ने उनको सलाह दी कि एक बात ध्यान से सुनना और समझना कि जिनकी आदत बुरी है, सर्प का स्वभाव है जिनका, वह डंक मारते ही रहेंगे; बुरा करते ही रहेंगे आप दुश्मनों के साथ बहुत प्यार से पेश आते हो, इन दुश्मनों को अगर आप अपने इर्द-गिर्द रखोगे तो यह जीने नहीं देंगे आपको।

लिंकन ने कहा – तो फिर क्या करना चाहिए ?

बोले – बिल्कुल ख़त्म कर दो इनको। सामने दिखाई नहीं देना चाहिए, कोई भी दुश्मन हो। इतना मीठा व्यवहार नहीं करो उनके साथ।

लिंकन मुस्कुराए और मुस्कुरा कर बोले – तुम यही चाहते हो न कि दुश्मन ख़त्म हो जायें? तुम्हारा तरीका दूसरा था मेरा तरीका ज़रा मेरे ढंग का है; मैं भी दुश्मनों को ख़त्म करना चाहता हूँ लेकिन इस तरह से नहीं, प्यार से उनकी दुश्मनी ख़त्म करना चाहता हूँ, उनको अपना मित्र बनाकर के दुश्मनी को सदा के लिए समाप्त करना चाहता हूँ इसीलिए मेरे हथियार थोड़े अलग तरह के हैं।

दुर्योधन का ढंग ऐसा ही है कि वह दुश्मनों को खत्म करके दुश्मनी ख़त्म करना चाहता है; युधिष्ठिर दुश्मनी को मिटा कर के दुश्मन को मिटाना चाहते हैं, कि दुश्मनी ख़त्म कर दो, दुश्मन दोस्त हो जाए, हम एक हो जायें।

इसीलिए सन्धि के प्रस्ताव अनेक बार भेजे गए, विनम्रता के साथ प्रार्थनाऐं की गईं, परिणाम अच्छा नहीं निकला।

अब इस प्रसंग पर अगर हम आयें तो उससे पहले मैं आपसे फिर कहना चाहूँगा क्योंकि गीता जहाँ से शुरू हुई है उस स्रोत को भी हम ज़रूर समझें और उससे पहले जो संदर्भ है उस को भी जानना ज़रूरी है।

बहुत लोग ऐसा सोचते हैं कि भगवान कृष्ण युद्ध को रोक सकते थे, उन्होंने उसे रोका क्यों नहीं? लड़ाई तो हल नहीं था, युद्ध किसी चीज़ का हल नहीं है, समाधान नहीं है। अगर हम लड़ने पर उतर आऐं इससे तो कुछ हल होगा नहीं। अनेक लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है – भगवान कृष्ण युद्ध को रोक सकते थे, उन्होंने रोका क्यों नहीं?

पर चिन्तन करके देखिये, क्या परिस्थितियाँ रहीं–दुर्योधन ईर्ष्या से भरा हुआ है, भीम के बल को देखकर उसे दबाने की कोशिश उसने लगातार की। खीर में विष मिला करके खिला दिया भीम को और उठाकर के पानी में फिंकवा दिया।

यह तो काका विदुर का चमत्कार था कि बीच में आते रहे और कहते रहे कुन्ती से कि बच्चों की बात को ज़्यादा आगे नहीं आने देना नहीं तो वैर पनप जायेगा और इस बात को किसी से कहना भी नहीं तुम्हारा बेटा, जिसको ढूँढते फिर रहे हैं–भीम को, बच्चों के साथ खेलने गया था वापिस आ जायेगा। विदुर ने ढुँढवाया, वापिस बुलवाया, ठीक ठाक कर दिया, कुन्ती माँ से कह दिया किसी को कहना नहीं।

विदुर टालते रहे युद्ध को। वह भी समय आया, लाक्षागृह में पांचों पाण्डवों को जलाने की कोशिश की गई, यहाँ पर फिर विदुर आगे आ गया। मारने वाला हाथ मारने को कोशिश कर रहा है और भगवान का प्यारा, भगवान की कृपा अपने हृदय में समेट कर बचाने वाला हाथ आगे बढ़ रहा है–विदुर बचाते रहे। विदुर ने वहाँ भी प्रबन्ध कर दिया कि सुंरग से कैसे निकल कर भागना है और सुंरग बनवा दी और यह चमत्कार था विदुर का–युधिष्ठिर को जाते समय समझा दिया – जिस समय लाक्षाग्रह के लिए जा रहे थे, आमोद-प्रमोद करने के लिए व्यवस्था की गई, लाक्षाग्रह बनाया गया इतना सुन्दर – दुर्योधन ने कहा कि आप लोग बहुत आराम करेंगे, आनन्द मनायेंगे, हम लोगों के बीच से शत्रुता ख़त्म हो जाएगी। वह दुश्मनी को ख़त्म करने के लिए दुश्मन को ही ख़त्म करना चाहता था।

लेकिन विदुर ने उस समय युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि बताओ तो सही वन में जिस समय आग लगती है, युधिष्ठिर, उस समय कौन जीव है जो बच जाता है ?

युधिष्ठिर ने कहा–अभी भी हमें बच्चों जैसा समझ रहे हैं आप, बच्चों जैसा प्रश्न आपने हमारे लिए किया है, चलो आप बड़े हैं इसीलिए हम आपको इसका उत्तर देते हैं। वन में आग लगने के बाद सब जीव-जन्तु घिर जाते हैं और जल करके मर जाते हैं किन्तु एक ही जीव ऐसा है जो बच जाता है और वह है चूहा क्योंकि वह बिल बना लेता है और उसके अन्दर में घुस जाता है। उसके बिल में कई द्वार होते हैं;

एक तरफ से धुआँ भी अगर प्रवेश करे तो दूसरी तरफ से निकल जाता है।

उत्तर तो दे दिया युधिष्ठिर ने लेकिन जब पांचों भाई चलने लगे तो आपस में विचार करते हैं कि बिना किसी संदर्भ को या प्रसंग को ध्यान में रखकर आज तक हमारे काका श्री ने कोई चर्चा हमसे नहीं की, कुछ मतलब होता है उनकी हर बात का; आज भी इस तरह की जो बात की है उन्होंने क्योंकि चलते समय आशीर्वाद संदेश देते वह तो बात थी लेकिन उन्होंने हमसे सवाल किया है, इसका मतलब इसमें कोई संदेश दे रहे थे।

संदेश शायद यह है कि आग लगेगी और चूहे की तरह बिल हमें बनाना पड़ेगा और द्वार ऐसा भी रखना पड़ेगा कि एक तरफ से घुसें और दूसरी तरफ से निकल जाएं। बचाने वाले हाथ लाक्षाग्रह में जैसे ही पँहुचे विदुर का भेजा हुआ व्यक्ति वहाँ खड़ा मिलता है, युधिष्ठिर के कान में कहता है काका श्री ने आशीर्वाद भेजा है, मैं यंत्र लेकर आया हूँ, चूहे का बिल बनाना है; (यह कोड वाली भाषा थी)। इस भाषा का परिणाम हुआ कि वह समझ गए इस जगह आग नहीं जलानी; हल्की-सी भी आग जलाई तो यह आग पकड़ सकता है, यह लाख का बना हुआ भवन है।

लेकिन मैं आपको इन संदर्भों में उलझाना नहीं चाहता, क्योंकि मैं गीता की तरफ ले जा रहा हूँ आपको।

लाक्षाग्रह में ईर्ष्या ने मारने की कोशिश की; जब देखा इनको मारा नहीं जा सकता क्योंकि पांडव फिर और भी बलशाली होकर प्रकट हुए।

फिर वह भी समय आया, शकुनि को आगे करके कहा गया कि हम लोग हथियारों से नहीं मार सकते, दूसरी तरह का षड्यंत्र रचो, इनका राज्य छीन लिया जाए, इनको भिखारी बना कर के रख दिया गया।

जुए के माध्यम से इनको भिखारी बनाने की योजनाएं बनी और यह सरल मन वाला युधिष्ठिर जुए के खेल में खेलने बैठ गया।

एक बात ध्यान रखना जुआरी के मन में हमेशा एक बात हुआ करती है कि शायद इस बार जीत जाऊँ, एक दाव और, एक दाव और, और इस एक दाव और के चक्कर में वह सब कुछ लुटा बैठता है।

वेदों में ऐसा उपदेश है कि जुआ नहीं खेलना –

अक्षैमा दीव्य कृषिमित् कृषस्व।

दाव पर कोई भी चीज़ लगाना ग़लत है, विनाश है यह। जुए के तरह-तरह के रूप प्रचलित हैं-यह चाहे तो कैसीनों में जायें, ताश के माध्यम से खेलें, सट्टा लगाऐं और आप सब जानते हैं कि सारी दुनिया भर में सब को तबाह करने के लिए जुआ है क्योंकि आदमी सोचता है कि बिना मेहनत किए एक दाव में ही हम जीत जायेंगे, अमीर हो जायेंगे लेकिन किसी जुआरी के महल बने हुए किसी ने नहीं देखे, तबाह होते हुए बहुत लोगों ने देखे हैं।

भले ही एक बार थोड़ी देर के लिए इस लत की तरफ खींचने के लिए लक्ष्मी अपना आकर्षक रूप दिखा भी देती है। पर आगे वह सब कुछ समेटकर फिर जो दाव पर लगाता है, फिर सब नष्ट हो जाता है।

धर्मराज ने भी जब जुआ खेला तो बचा कुछ नहीं और तबाह हो गए और जब यह बारह वर्षों तक वन में रहे, कोई दिन ऐसा नहीं गया जिस दिन भीम ने गुस्सा करके यह न कहा हो कि इतने प्यार से माँ ने हमको पाला-पोसा, बड़ा किया, बुद्धि है, बल है हमारे पास लेकिन इस आदत को देखो, इस आदत ने हमें भिखारी बना करके वन में लाकर खड़ा कर दिया। सीधे ढंग से वह यह समझाना चाहता है कि युधिष्ठिर तुम्हारे कारण आज हम यहाँ हैं।

कई बार ऐसा हुआ कि प्रायश्चित करने की स्थिति में युधिष्ठिर बैठे हैं, बहुत परेशान हुए, हृदय रोने लगा लेकिन सब के पीछे दुर्योधन की ईर्ष्या काम करती रही है और जैसे कूढ़ा कहीं पड़ा हुआ हो तो वह कूढ़ा थोड़े दिनों तक थोड़ा-सा नहीं रह जाता; दो-चार किलो कूढ़ा हो तो कुछ ही दिनों के बाद वह कूढ़े का ढेर बन जाता है दस-बीस किलो कूढ़ा मिलता है; इसी तरह से बुरे आदमी के साथ बुरे लोग मिलते चले जाऐं बुराई बढ़ती चली जाती है।

इसीलिए यह निवेदन करूँगा आप सबसे कि वैर का बीज अगर कहीं जाग गया ज़िन्दगी को तबाह कर देता है।

दुर्योधन कोशिश करता रहा पाण्डु पुत्रों को दबाने की। किसी तरह से भी इनको दबा के रखा जाए, इनका सब छीन लिया जाए और उसने राज्य भी छीन लिया।

ज़रा सोचकर के देखिए संदर्भ क्या रहा – बड़ों को जब यह पता लगा कि यह लोग इकट्ठे रहने वाले नहीं हैं, तो इस नतीजे पर पहुँचे कि इनको

अलग-अलग साम्राज्य बाँटकर के दे दिया जाए। भीष्म ने यही किया-बँटवारा कर दिया और बँटवारा क्या किया? हस्तिनापुर का साम्राज्य दुर्योधन के हाथ में पकड़ा दिया और खाण्डव वन, जो केवल जंगल ही था और उसके आस पास जितनी भी बस्तियां लगती थीं, नगर लगते थे, उन सबको मिलाकर के युधिष्ठिर के हाथ में थमा दिया गया कि तुम अब यहाँ नया नगर बसा लो और अपने पुरुषार्थ से उन लोगों ने उस उजाड़ जंगल को भी समाप्त करके वहाँ एक नगर बसाया, जिसका नाम इन्द्रप्रस्थ था और पाण्डवों द्वारा बनाये गये इन्द्रप्रस्थ नगर में ही, दिल्ली में ही, आप लोग बैठे हुए हैं। यह यमुना नदी आज भी इस बात की गवाह है।

भगवान कृष्ण का रथ-किंकणीक, हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ के बीच में ही चलता था। अपने चार घोड़ों के साथ भगवान कृष्ण न जाने कितनी बार यहाँ आए। यह धरती वह धरती है जिस पर भगवान कृष्ण के पग पड़े हुए हैं।

लेकिन जुए के माध्यम से शकुनि ने युधिष्ठिर का सारा साम्राज्य छीन लिया, बारह वर्ष के लिए उनको वन में भेज दिया और एक वर्ष अज्ञातवास में बिताने की शर्त रखी और कहा कि यदि इस एक वर्ष में पकड़े गए तो फिर बारह वर्ष के लिए वापिस वन जाओगे।

युद्ध नहीं चाहते थे पाण्डु पुत्र इसीलिए उन्हें क्या करना पड़ा – युधिष्ठिर ने विराट के महल में जुआ खेलने का कार्य, चौपड़ खेलने का ही कार्य लिया। अर्जुन, इतना वीर, बलशाली रहकर भी ब्रिहन्ला बनकर के नृत्य करता रहा, नाचता गाता रहा। आप सोचिए पूरा एक वर्ष इस तरह से बीता। भीम, रसोई घर में रह रसोईये का काम करने लगे। क़िस्मत क्या-क्या खेल दिखाती है; एक गलती कहाँ लेकर चली गई। नकुल सहदेव इतने प्यारे राजकुमार थे, बड़े सुन्दर, बड़े प्यार से पाले गए, उनका काम घुड़साल में घोड़ों की देख-देख करने का रह गया। जिस द्रौपदी को चारों तरफ बन्दियाँ, दासियाँ, घेरे रखती थीं, बनाव श्रृंगार करती रहती थी, अब वही दासी बनकर रानी का श्रृंगार करने का कार्य सहरेन्द्री बनकर कर रही है।

यह सारी पीढ़ा भोग करके जब यह वापिस लौटे और इन्होंने कहा कि अब हमें हमारा राज्य वापिस दे दो तो दुर्योधन ने कहा कि बिना लड़े तो सुई की नोक के बराबर भी ज़मीन देने वाला नहीं हूँ, हिम्मत है तो लड़ कर ले लो।

'सुच्यग्रम नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशवः'

कृष्ण भगवान के सामने भी दुर्योधन ने ऐसा बोल दिया। जब भगवान कृष्ण ने यह समझाया कि किसी तरह से पांच गांव ही अपने भाईयों को देकर इस होने वाला रक्त पात से तुम बच सकते हो, खून ख़राबा हो, दुनिया देखेगी कि भाई आपस में लड़ रहे हैं, यह अच्छी बात नहीं; दुर्योधन ने उसके बाद भी यही जवाब भेजा कि लड़े बिना तो सुई की नोक के बराबर भी ज़मीन नहीं दूँगा।

अब ऐसी स्थिति में क्या होता? युद्ध रोकने की बहुत कोशिश की गई। भगवान कृष्ण ने भी समझ लिया कि दुर्योधन के सिर पर पाप आकर बैठ गया है और वह उसको दण्डित करना चाहता है; माध्यम बनेगा अर्जुन, निर्देशन होगा हमारा, पाप संताप देगा।

दुर्भाग्यजनक बात यह भी थी कि इस पापी की बेल को सींचने वाले न जाने कितने-कितने राजा इकट्ठे हो गए थे, अधर्म का साम्राज्य चारों तरफ फैल गया और भगवान कृष्ण का तो अवतार ही इस रूप में हुआ-

परित्रणाय साधूनां विनाशचय च दुष्कृतां ।
धार्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

सज्जनों की रक्षा के लिए, दुष्टों के नाश के लिए, धर्म की संस्थापना के लिए भगवान कहते हैं कि हर युग में भी मुझे आना पड़ा तो मैं आऊँगा – यह उनका निश्चय है, संकल्प है। इस तरह से युद्ध की परिस्थितियां तैयार हुईं।

अब ज़रा सोचकर के देखिए-इन लोगों ने यहाँ तक कहा कि यदि हमें पांच गांव भी मिल जायें तो हम संतुष्ट हो जायेंगे, भीम के साथ क्या किया गया, द्रौपदी का अपमान, लाक्षाग्रह की पीड़ा, द्यूत के द्वारा सब कुछ छीनना, यह सब कुछ भुला देंगे, फिर से मिलकर के रहेंगे, पाँच गांव दे दो। दुर्योधन नहीं मानता, वह हठी बन गया। उसे जब बोला गया कि क्या तुम्हें समझ नहीं है, अच्छाई और बुराई का ज्ञान नहीं है, तो उसने कहा था –

जानामि धार्म न च मे प्रवृत्तिः ।
जानाम्यधार्म न च मे निवृत्तिः ॥

मुझे पता है धर्म क्या है, अच्छाई क्या है, ठीक बात क्या है, सही रास्ता क्या है, *न च मे प्रवृत्ति* – मेरी इसमें कोई प्रवृत्ति नहीं है, रुचि नहीं है, *जानामिऽधर्मः* मैं जानता हूँ अधर्म क्या है लेकिन मेरा मन नहीं है उस सब से हटने के लिए। पूछा गया-ऐसा क्यों करते हो? कहता है:

केनापि देवेन् हृदिस्थितेन यथ नियुक्तोस्मि तेम तथैव करोमि – कोई मेरे हृदय के अन्दर संस्कार ऐसा बैठा हुआ है वह जिधर मुझे धकेलता है उधर मैं जा रहा हूँ, इसीलिए मेरे अन्दर जो भी कुछ बात है मैंने तो वैसे ही चलना है, मुझे समझाने की ज़रूरत नहीं किसी को, कोई मुझे समझाए नहीं, कोई मुझे मनाये नहीं, कोई मुझे बताए नहीं, किसी की मुझे ज़रूरत नहीं है।

दुष्टता, धृष्टता बनकर दुर्योधन के अन्दर से प्रकट होने लगी। आखिर में कुरुक्षेत्र की भूमि में दोनों ओर की सेनाऐं सजीं, इकट्ठी हुईं। दुर्योधन को पहले ही पता था कि मैं लड़ाई लड़ूँगा इसीलिए उसने जग़ह-जग़ह से तैयारी करते हुए ग्यारह अक्षोहिणी सेना इकट्ठी कर ली।

पाप का पलड़ा हमेशा ही बहुत बड़ा दिखाई देता है, पूज्य धर्म हमेशा ही कमज़ोर दिखाई देता है। लेकिन ध्यान रखना सत्य-चिंगारी की तरह से है; एक सत्य की चिंगारी जाग्रत हो जाए तो बहुत बड़े पाप के ईंधन को जलाकर राख कर देती है लेकिन उस चिंगारी को जागना चाहिए और हमें उसे जगाना चाहिए। वह चिंगारी हम सब के हृदय में कहीं न कहीं बैठी हुई है लेकिन हम उसको जागने नहीं देते, उसे बार-बार सुलाने की कोशिश करते हैं; इसे सोने नहीं दो; अगर हर सज्जन के अन्दर सत्य और धर्म की चिंगारी जागृत रहे इस दुनिया में कभी भी दुष्टता का अन्धेरा बढ़ नहीं सकता, उस चिंगारी को जगाने की कोशिश करो; हमें जागने की कोशिश करनी चाहिए, प्रयत्नशील होना चाहिए और फिर वह चिंगारियां जलती रहनी चाहिएं।

दोनों तरफ की सेनायें आकर खड़ी हो गई हैं-ग्यारह अक्षोहिणी सेना कौरव पक्ष में है और सात अक्षोहिणी सेना युधिष्ठिर के पक्ष में है। इससे भी ज़्यादा विचित्र बात - सात महारथी कौरवों के हैं, सात अक्षोहिणी सेना लेकर पाण्डव लोग युद्ध की भूमि में आए पर इनके जो महारथी हैं, कमाण्डर जो हैं, वह ग्यारह हैं।

यहाँ लाकर व्यास ऋषि ने एक और चमत्कार किया। उन्होंने कहा कि यह ग्यारह अक्षोहिणी सेना क्या है? यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियां और एक मन है। और यह जो सात महारथी हैं कौरवों के यह कौन हैं?

कहा गया कि यह कोई और नहीं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मद और मत्सर।

काम से काम वासना; क्रोध अर्थात् आवेश; लोभ=लालच, मोह=मोह–ममता, किसी के पक्ष में हो जाना, मोह में अन्धा होकर अपना बेटा, अपने लोग, कितना भी ग़लत कर रहे हों उनकी बात सुनने को तैयार न होना, यह मोह ही तो है; अहंकार=अहंकार में व्यक्ति दूसरे को दबाने की कोशिश करता है, विनम्र होता ही नहीं कभी; मद=किसी चीज़ का नशा होना, सत्ता आ गई तो सत्ता का मद, धन आ गया धन का मद, पद आ गया पद का मद, यौवन आ गया यौवन का मद, सुन्दरता आ गई तो सुन्दरता का मद और ऊँचे कुल में पैदा हुए तो ऊँचे कुल का मद। बाईस प्रकार का मद होता है; सातवीं चीज़ जो है – मत्सर, ईर्ष्या, जो आज सर्वत्र फैली हुई है, इन्सान के व्यक्तित्व को खा रही है। तो यह सात महारथी हैं जो निर्देश दे रहे हैं इस ग्यारह अक्षोहिणी सेना को।

ऐसा समझिये, जिस आदमी के मन को, उसकी इन्द्रियों को काम, क्रोध, मोह, अहंकार, मद और मत्सर चलाने लग जाएं तो समझ लेना कि वह कौरव पक्ष में जाकर खड़ा हो गया, दुर्योधन के पक्ष का आदमी है वह।

यह अनोखी चीज़ है, याद रखना; इस पूँजी को हाथ में रखकर और फिर गीता की तरफ शुरू होना।

लेकिन पाण्डव पक्ष में थोड़ा उल्टा हिसाब किताब है। पाण्डव पक्ष में सेना सात अक्षोहिणी है लेकिन कमाण्डर ग्यारह हैं–तो सात अक्षोहिणी सेना तो वहाँ पर भी वही है–काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मद और मत्सर लेकिन उनको हाँकने वाले ग्यारह लोग हो गए।

याद रखना यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मद और मत्सर यह कोई हमनें अपने अन्दर पैदा नहीं किए, यह होते हैं; क्रोध अन्दर होता है, लोभ अन्दर होता है, काम अन्दर होता है पर इसको हाँकने वाला कौन है यह देखने की बात है। हाँकने वाले लोग अगर सही हैं, इनको चलाने वाले, निर्देशित करने वाले सही हैं, तो फिर यह जो चीज़ आज तक विनाश कर रही थी यही

कल्याण करेगी। फिर इन्सान लोभ करेगा तो सद्गुणों का, क्रोध करेगा तो दुष्ट प्रवृत्तियों पर और मोह करेगा अपने सन्तों का, अपने ग्रन्थों का, अपने संस्कारों का जिनके द्वारा मानव कल्याण होता रहा। उन्हें बचाएगा क्योंकि हम जिनसे मोह रखते हैं उन्हें अपने पास सुरक्षित रखने की कोशिश करते हैं। फिर अगर अभिमान आयेगा, अहंकार आयेगा इस बात पर कि हम पिता परमात्मा के बेटे हैं। इस दुनिया के कीचड़ में पड़ने वाले नहीं, वहीं तक हमने अपने आपको पहुँचाना है और अगर ईर्ष्या होगी तो अच्छाई में जो आगे निकल गए हैं उनको देख देखकर अपने मन से यह ईर्ष्या आयेगी कि हमें भी इनसे ज़्यादा अच्छा बनना है; और ध्यान रखना और अगर नशा आयेगा, मद्, परमात्मा की भक्ति की खुमारी चढ़ेगी, *"नाम खुमारी नानक चढ़ी रहत दिन रात"* वह नशा आने लग जायेगा।

गीता में प्रवेश करने से पहले एक चीज़ और बताना चाहूँगा कि चुनाव करने में दुर्योधन से चूक हुई, उससे गलती हुई, अर्जुन की विशेषता यही रही कि उसने चुनने में कसर नहीं छोड़ी।

भगवान कृष्ण ने सहायता माँगने के लिए आये हुए दुर्योधन और अर्जुन दोनों को देखकर के कहा था कि एक तरफ़ मेरी नारायणी सेना है, अस्त्र-शस्त्र हैं और दूसरी तरफ बिना लड़ने वाला मैं, जो लड़ूँगा नहीं, दोनों में से एक चुनो।

दुर्योधन ने चुनाव किया सेना का, अस्त्र और शस्त्र बल का; अर्जुन ने चुनाव किया कृष्ण भगवान का।

भगवान कृष्ण कहते हैं अपने भाग्य से तुम स्वयं लड़ोगे मैं लड़ने नहीं आऊँगा। अर्जुन हाथ जोड़कर कहता है – बस, इतना ही करना मेरे रथ के सारथी बनना; यह मेरी बुद्धि रथ है और इसको ले जाने वाले आप बनना। मेरी बुद्धि को जिधर जाना चाहिए, जिधर मुझे सोचना चाहिए, जिधर चलना चाहिए, जिधर मुझे मुड़ना चाहिए उधर के लिए निर्देशन आपने करना है, मैंने अपने आपको आपके हवाले कर दिया है।

जिसने पकड़ लिया है भगवान के नाम का सहारा, उसे तो कभी कमी नहीं रहेगी; जिसने अपनी "मैं" को पकड़ लिया है वह कभी रह नहीं पायेगा।

इसीलिए दुर्योधन के पक्ष में यह सात महारथी – चाहे दुर्योधन है, कर्ण है, भीष्म है, शकुनि है, अश्वत्थामा है, द्रोणाचार्य है या दुशासन है – यह सारे इन चीज़ों के प्रतीक हैं-सोचिए, दुर्योधन लोभ का प्रतीक है – राज्य मेरे हाथ में रहना चाहिए; उसका लोभ खत्म नहीं होता, अपने राज्य से काम नहीं चला भाईयों का भी हड़पने के लिए तैयार बैठा है।

कर्ण–मुझसे बढ़कर कोई नहीं है-अहंकार का प्रतीक, बस, मुझे लड़ने का मौका मिले और फिर देखना एक दिन में ही अर्जुन को हरा दूँगा। कर्ण के साथ है अहंकार।

भीष्म मोह का प्रतीक है – मोह ममता में आकर बैठे हुए हैं, राजगद्दी, उसको दिए हुए वचन, उससे ऐसे बंध गए हैं कि उससे ऊपर उठकर सोच ही नहीं रहे हैं।

हालांकि मोह का समस्त पेड़ देखना हो तो धृतराष्ट्र मोह का समस्त पेड़ हैं; मोह व्यक्ति को अन्धा कर देता है इसीलिए धृतराष्ट्र अन्धे हैं-मोह से भी अन्धे हैं; आंखों से भी अन्धे हैं, अन्दर और बाहर दोनों तरफ से अन्धे हैं।

आश्चर्यजनक बात यह है कि यह इतिहास की घटी हुई एक घटना है लेकिन यह भी एक आश्चर्यजनक बात है कि यह चीज़ हमारे जीवन में भी एक इतिहास बनकर घट रही है, क्योंकि हम लोग कहीं ऐसे ही मोह ग्रस्त हो जाते हैं।

शकुनि मत्सर अर्थात् ईर्ष्या का प्रतीक है;

अश्वत्थामा–क्रोध से भरा हुआ है, मेरे पिता को मारा गया है इसीलिए मैं भी नहीं छोड़ूँगा किसी को।

द्रोणाचार्य मद का प्रतीक – जिनका अन्न खाया; अब गुरु भी मद में भूल गए कि सही और गलत क्या है, दुर्योधन का पक्ष लेकर खड़े हो गए और दुशासन–आंचल खींचने वाला दुःशासन वह काम का प्रतीक है।

तो यह सात महारथी–काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मद और मत्सर उधर जाकर खड़े हो गए; इधर सरल मन वाला अर्जुन है, सारथी हैं कृष्ण भगवान, कुरुक्षेत्र की भूमि में आकर खड़े हुए हैं।

यहाँ एक बात और विचारणीय है – गीता की शुरुवात हुई धृतराष्ट्र के संजय से प्रश्न करने पर, संजय से जिज्ञासा करते हैं धृतराष्ट्र कि बताओ ज़रा युद्ध की भूमि में क्या हुआ? मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने जो युद्ध लड़ा उसमें क्या हुआ? क्योंकि युद्ध चलते-चलते दस दिन हो चुके थे। दसवें दिन भीष्म

धराशायी हो गए थे। उस समय में पूछने की कोशिश की है संजय से धृतराष्ट्र ने कि ज़रा बताओ तो सही वहाँ क्या हुआ?

और संजय के पास दिव्य दृष्टि थी, उसने सब कुछ दिव्य दृष्टि से देखा और उसके बाद उत्तर देना शुरू किए। यहाँ से गीता का प्रारम्भ होता है लेकिन यह शुरू करने से भी पहले, क्योंकि, अभी इस भूमिका में कुछ और चीज़ें याद रखने वाली हैं।

पूछा जाये धृतराष्ट्र कौन है? तो "धृत" कहते हैं पकड़ने को और "राष्ट्र" का मतलब है 'राष्ट्र', जिसने राष्ट्र को पकड़ लिया, मतलब, जो मालिक है नहीं लेकिन मालिक रहा है-तो ऐसी चीज़ क्या है?

यह जो मन है न हमारा यह धृतराष्ट्र है-मालिक तो आत्मा होता है न लेकिन यह मन जो है यह हर चीज़ का मालिक बनने की कोशिश करता है, हर चीज़ को पकड़ने की कोशिश करता है –यह मेरा, वह मेरा, इधर चला जाऊँ, उधर चला जाऊँ, ऐसा मोह से ग्रस्त मन जो भी होगा वह धृतराष्ट्र ही कहलायेगा।

लेकिन हमें होना चाहिए युधिष्ठिर – युद्ध में, संघर्ष में, स्थिर होने वाला, भागने वाला नहीं।

जीवन के संघर्ष का सामना करने की कोशिश करें, चुनौतियों का सामना करें।

युधिष्ठिर में एक विशेषता है-युद्ध शुरू हुआ नहीं, युधिष्ठिर भगवान कृष्ण के निर्देशन में अपने चारों भाईयों को साथ लेता है, भीष्म के पास जाकर के प्रणाम करता है।

भीष्म पूछते हैं-युधिष्ठिर, युद्ध से डर गए हो जो हाथ जोड़ने आए हो?

युधिष्ठिर कहते हैं-दादाजी, युद्ध की बात तो युद्ध में हो ही जायेगी लेकिन हम तो आपको प्रणाम करने आये हैं और क्षमा माँगने आये हैं। हम बच्चे आपकी गोद में खेलते रहे लेकिन युद्ध में न जाने इन्सान क्या-क्या कर बैठता है, अपनी होश नहीं रहती इन्सान को। हमसे भी न जाने कितनी गलतियां हो सकती हैं लेकिन दादाजी यदि आप फिर भी पहले हमें माफ कर दें। हम नहीं चाहते थे कि ऐसा हो लेकिन अब ऐसा होने लगा है इसीलिए हम पहले ही आपके चरणों में क्षमा माँगने के लिए आ गए हैं।

जिस भाव से पाँचों पाण्डवों ने भीष्म पितामह के चरणों को छूकर प्रणाम किया, भीष्म के हृदय से क्या निकला होगा उस समय 'विजयी भव'-सफल हो।

दुर्योधन ने कहा भी – दादाजी, अगर आपने इनकी सफलता की कामना ही करनी है तो फिर हमारे पक्ष में क्यों, इनके पक्ष में जाकर खड़े हो जाओ?

भीष्म कहते हैं दुर्योधन से–यह आशीर्वाद मन के बस में नहीं। जब कोई किसी के चरणों को छूता है तो हृदय से अपने आप ही आशीर्वाद निकलता है। कोई तुम्हारे चरण छूएगा, तुम्हारे भी हृदय पर तुम्हारा काबू नहीं रह जायेगा, तुम्हारे अन्दर से अपने आप आशीर्वाद निकलेगा।

द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के पास भी गए यह लोग, बड़ों को प्रणाम किया और सबके हृदय में एक ही बात थी, भले ही किसी ने मुख से नहीं बोला, कि युधिष्ठिर तू धर्म के साथ है और धर्म तेरे साथ है; हम भले ही तेरे पक्ष में न खड़े हों हमारा शरीर भले ही इधर खड़ा है लेकिन हमारा हृदय तो तेरे साथ ही खड़ा हुआ है।

यह प्रणाम का चमत्कार है, यह शिष्टता का चमत्कार है।

व्यास ऋषि ने तो यहाँ तक कहा कि युधिष्ठिर ने आधा युद्ध तो आशीर्वाद से ही जीत लिया था।

और देखिए, युद्ध शुरू होने से पहले युधिष्ठिर घोषणा करता है, दोनों हाथ ऊपर आसमान की तरफ उठाकर कहता है-दोनों पक्षों के भाई सुनें कि अगर मेरा पक्ष गलत है और मैं गलत खड़ा हुआ हूँ, मैं गलत काम करने लगा हूँ तो जो भाई मेरे पक्ष में खड़े हुए हैं और उन्हें मैं गलत नजर आता हूँ, तो ठीक समझें तो भाई दुर्योधन के पक्ष में जाकर खड़े हो जाओ और अगर मेरा पक्ष ठीक है, मैं कौरव पक्ष में भी खड़े हुए योद्धाओं से भी कहूँगा कि यह समय है अपनी अन्तर्रात्मा की आवाज़ को सुनने का, मेरा दल बाहें फैलाकर स्वागत करने के लिए तैयार खड़ा हुआ है, जो भी धर्म के पक्ष में आना चाहे उसका मैं स्वागत करता हूँ अगर मैं अपनी जगह सही हूँ तो।

इसका परिणाम हुआ कि दुर्योधन का एक भाई था, जिसका नाम था विकर्ण, और विकर्ण वह व्यक्ति था जिसने भरी सभा में द्रौपदी के अपमान होते समय दुर्योधन और दुशासन दोनों को धिक्कारा, ललकारा था कि शर्म

आनी चाहिए तुम लोगों को, अपने घर के सम्मान का अपमान कर रहे हो तुम, घर की इज्ज़त की बेइज्ज़ती कर रहे हो तुम।

उस विकर्ण ने युधिष्ठिर से आवाज़ दे करके कहा—युधिष्ठिर ठहरो, मैं आ रहा हूँ इन लोगों की आत्माएं सो गई हैं मेरी आत्मा सोई हुई नहीं है, मैं जागा हुआ व्यक्ति हूँ, मैं आता हूँ तुम्हारे पास और जब हाथ बढ़ाकर वह आगे आया तो भगवान कृष्ण ने मुस्कुराते हुए अर्जुन की तरफ देखकर कहा था कि यह बच जायेगा, यह सुरक्षित रह जायेगा क्योंकि इसने धर्म की शरण ले ली है और जिन्होंने धर्म की शरण नहीं ली वह नहीं सुरक्षित रहने वाले, वह नहीं बच सकते। यह स्थितियां थीं।

यद्यपि यह एक आश्चर्यजनक बात है कि यदि पूरी गीता आप पढ़ें तो वहाँ कहीं युद्ध की बात है ही नहीं, पहले अध्याय में ही थोड़ा सा वर्णन है, हल्का सा वर्णन है, महारथियों का वर्णन है; आगे कहीं कोई युद्ध की बात नहीं है, आगे तो जीवन जीने की कला ही दिखाई गई है।

लेकिन किन परिस्थितियों में युद्ध की बात ठहरी, उनको सामने रखना बहुत ज़रूरी था। इसलिए मैंने आपसे कहा यह परिस्थितियाँ बनीं जिसमें भगवान कृष्ण ने यह समझा कि शरीर का फोड़ा इतना ज़हरीला हो गया कि शल्य क्रिया करनी ही पड़ेगी, सर्जरी की ज़रूरत है। लेकिन उन्होंने कोशिश तो यह की कि पूरे शरीर को न काटकर केवल उतना अंग काट दिया जाये कि जिससे पूरा शरीर सुरक्षित रह जाए।

ऑप्रेशन थ्रियेटर में ऑप्रेशन की टेबल पर पड़ा हुआ मरीज़ डॉक्टर को पैसे देता है अपने शरीर के अंग को कटवाने के लिए और हाथ जोड़ता हुआ कहता है कि साहब जी, नम्बर लगाओ हमारा, जो काटना है काटो और डॉक्टर भी ऑप्रेशन करने के बाद—(जब किसी चाहे वो अपैंडिक्स का ऑप्रेशन करता है, वह चाहे कोई छोटी-सी आंत को काटकर के बाहर आए – तो आने के बाद) बोलता है ऑप्रेशन सफल हुआ, मतलब हमने जो काटना था वह काट दिया, बधाई हो, और रिश्तेदार कहते हैं – डॉक्टर साहब बड़ी कृपा। तो काटने पर बधाई दे रहे हैं, धन्यवाद दे रहे हैं।

भगवान कृष्ण भी ऐसे सर्जन बनकर के खड़ हुऐ हैं कि उस ज़हरीले फोड़े को काट दिया जाए जो समस्त समाज के अन्दर विष पैदा कर रहा है।

इसीलिए उस युद्ध का नाम युद्ध ना रखा जाये-वह धर्मयुद्ध है, वह युद्ध धर्म की संस्थापना के लिए है और यहीं से प्रारम्भ होता है वह स्वरूप जिस माध्यम से गीता हमारे सम्मुख आई।

यह एक भूमिका मैंने आपके सामने रख दी। इस भूमिका को ध्यान में रखकर और गीता के महात्मय को ध्यान में रखकर, गोविन्द की महिमा को हृदय में रखकर और फिर गीता के इस यज्ञ में शामिल होईये। श्रद्धा की आहुतियां देना और समर्पण करना। यही स्वाहा होगा अपनी "मैं" को भूल जाना – इदनमम्:-मेरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ तुम्हारा ही है और फिर जो सुगन्ध उठेगी वह महक आपके जीवन को आपके हृदय को सुगन्धित करती रहेगी, महकाती रहेगी।

पहला अध्याय

मंगलमय गीता
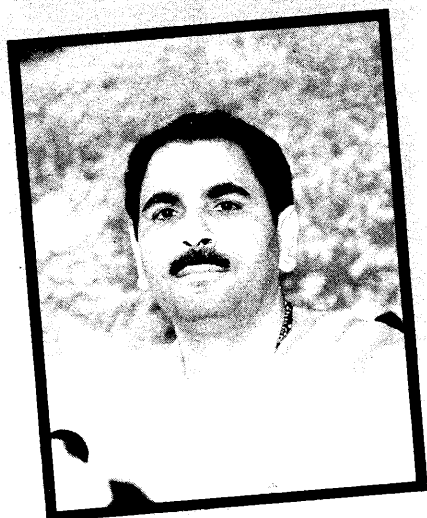
मद्भागवत् गीता जिसके प्रति करोड़ों हृदयों का ध्यान सदैव श्रद्धा से झुकता रहा, बंधता रहा, एक ऐसी संजीवनी जिसको पाने के बाद एक सुप्त आत्मा जागृत होती है, आइये गीता का आरम्भ करते हैं। गीता युद्ध का गीत ही नहीं, जीवन है का संगीत भी है।

प्रथम अध्याय का अर्थ ही समझते-समझते, इस अध्याय की उस संज्ञा को भी हम समझें जिसमें कहा गया है कि – यह अध्याय विषाद योग है। विषाद का अर्थ होता है निराशा और कहना चाहिए कि विषाद से, 'निराशा' से प्रसाद, प्रसन्नता की ओर हमारी यात्रा है।

पानी कितना भी गर्म किया जाये वह अपने स्वभाव में आयेगा ही, उसे शीतल होना ही पड़ेगा। हम कितने भी निराश क्यों न हो लेकिन प्रसन्नता हमारा स्वभाव है, उस स्वभाव में हमें उतरना ही पड़ेगा क्योंकि उसके बिना हम जी नहीं सकते; जो हमारा स्वभाव है उससे बाहर जा ही नहीं सकते, और अगर चले भी गये तो वापिस लौटना होगा। पानी गर्म दिया जाये तो जला सकता है वह लेकिन अगर आग पर डाल दिया जाये तो बुझायेगा ज़रूर क्योंकि आग बुझाने का कार्य उसका स्वभाव है।

तो अगर हमारे जीवन में कहीं निराशा आती भी है तो यह मान करके चलिए कि निराशा हमारा स्वभाव नहीं है। यह तो संयोग जन्य स्थिति है- किसी के साथ बैठने से, किन्हीं लोगों से संसर्ग से, किन्हीं बातों के प्रभाव से हम थोड़ी देर के लिए प्रभावित होते हैं लेकिन फिर जब हम अपने स्वरूप में लौटेंगे, फिर प्रसन्नता उभरेगी।

बच्चा वास्तव में जीवन का एक ऐसा प्रतीक है जिसमें हमें दिखाई देता है उत्साह, उमंग, प्रसन्नता, उल्लास। इसीलिए बच्चे कभी निराश होकर नहीं बैठते हैं, और अगर थोड़ी देर के लिए किसी बात से नाराज़ हो भी गये तो जल्दी अपने रूप में फिर से आ जाते हैं। लेकिन जैसे-जैसे हम लोग समाज में घुलते-मिलते जाते हैं, दूसरों के विचारों की धूल हमारे मन पर आती जाती है, हम लोग निराश होने लग जात्ते हैं। इसलिए इस अध्याय का नाम "विषादयोग" है।

निराशा से प्रसन्नता की ओर बढ़ना जीवन के लिए एक लक्ष्य है।

भगवान कृष्ण ने भी इस विषाद से भरे हुए अर्जुन को प्रसाद की ओर ले जाने का सुन्दर प्रयास किया।

यह भी चिन्तन करना कि अर्जुन का अर्थ है – सरल, अर्जुन का अर्थ है – श्वेत; भक्त सरल होना चाहिए, श्वेत होना चाहिए। कृष्ण का अर्थ है आकर्षण वाला, कृष्ण का अर्थ है काला। तो सफ़ेद के ऊपर कोई भी रंग चढ़ सकता है।

अगर आपका मन स्वच्छ है तो उस पर कोई भी रंग चढ़ सकता है, इसीलिए दुनिया में नियम है कि किसी भी वस्त्र को रंगना हो तो पहले उसे स्वच्छ करना होगा, उसका पहला रंग उतारना होगा और उसे श्वेत स्थिति में लाना होगा। जितना आप उसे निर्मल कर लेंगे निश्चित बात है उतना ही उसमें अच्छा रंग चढ़ सकेगा।

कृष्ण गुरु हैं, अर्जुन शिष्य है; अर्जुन अगर सरल होकर कृष्ण के सम्मुख बैठा है तो इसका मतलब है कि प्रत्येक शिष्य को, जिज्ञासु को, सरल होकर अपने गुरु के सम्मुख जाना चाहिए।

सरल मन वाला व्यक्ति जायेगा तो उसके ऊपर रंग चढ़ेगा और गहरा रंग चढ़ेगा; ऐसा रंग जो उतर न सके, रंग पक्का होगा। इसीलिए पहले हमें अपने आपको सरल बनाना बहुत आवश्यक है, स्वच्छ करना बहुत आवश्यक है।

रंग रोगन अग़र कोई व्यक्ति अपने घर कराये तो रंग रोगन करने वाले व्यक्ति सबसे पहले दीवारों की पपड़ियां उतारना शुरु करते हैं, दीवार को साफ करेंगे और अगर साफ नहीं किया या अगर गाड़ी पर पेंट किया जाये तो पहले रेगमार्क लगा-लगाकर उसे साफ करना पड़ेगा। अगर आप भी अपने जीवन में रंग चढ़ाना चाहते हैं तो रोज़ धोईये अपने आपको, निर्मल कीजिए। इसीलिए धर्मस्थलों में व्यक्ति जब प्रवेश करता है तो जूते बाहर उतरवाये जाते हैं और कहा जाता है कि स्वच्छ वस्त्र पहन करके आना, स्नान करके आना, तन की शुद्धि, वस्त्रों की शुद्धि, कोई भी गन्दगी वहाँ प्रवेश नहीं करनी चाहिए और यहाँ तक कि अपने मन को भी आप स्वच्छ करके आओ-ईर्ष्या, द्वेष, वैर, विरोध लेकर किसी पवित्र स्थान में जाओगे तो आपकी दुर्गन्ध से उस पवित्र स्थान की पवित्रता भी भंग होगी।

जिस स्थान पर मनुष्य जितना शांत होकर के आयेगा उतनी ही अधिक गहरी शांति लेकर के वहाँ से वापिस लौटता है। धर्म स्थल में अगर वैर भाव लेकर के आओगे तो निश्चित बात है कि वह वैर भाव भी फिर गहरा ही लेकर के वापिस जाओगे क्योंकि जो आप लेकर के आये वही आपके अन्दर प्रतिबिम्बित होगा।

सरल मन लेकर के आओ, बात बनेगी; मन अगर सरल है तो सब प्राप्ति होगी।

यह जो कहा जाता है कि टेढ़ा बनना अच्छा क्योंकि जंगल में जो टेढ़े पेड़ होते हैं वह नहीं काटे जाते, सरल पेड़ काटे जाते हैं; टेढ़े लोगों से दुनिया डरती है सीधे आदमी को तो दुनिया सताती है, सरल बनने में नुकसान, टेढ़ा बनने में फ़ायदा लेकिन ऐसा नहीं है।

दुनिया में जितने भी टेढ़े लोग हैं उनसे कभी सृजन नहीं हुआ, निर्माण नहीं हुआ। अगर जंगल में सीधा पेड़ काटा जायेगा निश्चित बात है कि उसी से इमारत की लकड़ी बनेगी, वही किसी भवन का श्रृंगार बनेगा, टेढ़े पेड़ अगर काटे भी जायेंगे (क्योंकि लोग काटने को तो उनको भी काटते हैं), तो टेढ़ा पेड़ केवल जलाने के ही काम आयेगा, उससे कोई निर्माण नहीं होने वाला। इसीलिए दुनिया में टेढ़े व्यक्ति को जलाया ही जायेगा, उससे कोई निर्माण होने वाला नहीं, उसकी कोई स्मृति नहीं रहेगी, वह दुनिया में याद नहीं रखा जायेगा।

सरल बनो इसीलिए कि निर्माण हो सके तुम्हारे अन्दर-निर्माण हो सके अच्छे समाज का, निर्माण हो सके अच्छे राष्ट्र का, निर्माण हो सके अच्छे विश्व का।

यद्यपि यह केवल एक उदाहरण है क्योंकि पेड़ काटना अपने आप में ही एक ग़लत काम है, पेड़ तो काटने ही नहीं चाहिएं। जितने पेड़ लगाओ उतना ही अच्छा, हरियाली जितनी हो उतनी ही अच्छी।

जहाँ-जहाँ मनुष्य बसता है, उसके आस-पास उसकी जो आबादी है, उसमें से तीस प्रतिशत तो केवल हरियाली होनी चाहिए। अगर तीस प्रतिशत हरियाली आस-पास है तो निश्चित बात है कि जीवन जीने में आनन्द ही कुछ और होता है।

दुर्भाग्य यह है कि हमारे देश में पेड़ जितने कटते हैं उस हिसाब से हम लोग ग्यारह प्रतिशत ही या तेरह प्रतिशत ही हमारे आस-पास पेड़ों का जो प्रतिशत रह गया है, वनों का जो प्रतिशत रह गया है वह केवल ग्यारह से लेकर तेरह प्रतिशत ही रह गया है। इसीलिए पर्यावरण बिगड़ रहा है, सन्तुलन बिगड़ रहा है, मौसम बिगड़ रहा है, रोग बढ़ रहे हैं, जीवनी शक्ति घट रही है, तनाव बढ़ता जा रहा है, सन्तुलन बिगड़ रहा है –प्रकृति का, ब्रह्माण्ड का, कहीं सन्तुलन बिगड़े तो-कहा जाता है न *यथा पिण्डे तथा ब्राह्मण्डे, यथा ब्राह्मण्डे तथा पिण्डे*-जैसा हमारे पिण्ड में, शरीर में है वैसा ही ब्रह्माण्ड में है और जैसा हमारे ब्रह्माण्ड में है वैसा ही हमारे इस शरीर में, पिण्ड में है। पूरे ब्रह्माण्ड का असर हमारे ऊपर पड़ता है लेकिन आपको कहना क्या चाह रहा हूँ कि सरलता से निर्माण होगा। अर्जुन सरल है। लेकिन एक विचित्र बात।

कृष्ण का अर्थ काला और कृष्ण का एक नाम है **बांकेबिहारी,** बांका पन-किसी को बांका कहने का मतलब क्या है? अर्जुन सीधा, कृष्ण टेढ़े। अब यहाँ टेढ़े से मतलब कुटिलता से नहीं है; यहाँ तो प्यार ने, प्रेम ने, आदर और श्रद्धा ने उनके स्वरूप का यह नाम दिया।

यद्यपि राम जी के स्वरूप को याद करें तो राम नाम सरल है, आसानी से मुँह से निकलता है, लिखने में भी सीधा। कृष्ण नाम लिखना हो तो लिखने में भी सीधा नहीं है, कृष्ण नाम लिखने में भी टेढ़ा और अग़र बोला जाये तो बोलने वाले के होंठ भी टेढ़े हो जाते हैं। रामजी का स्वरूप या उनकी जीवन झाँकी पढ़ें, सरलता से समझ में आयेगी; कृष्ण भगवान की जीवन झाँकी पढ़िए आसानी से समझ में आने वाली नहीं है आपको इसीलिए कि वह परम रहस्य है।

यहाँ टेढ़े पन का अर्थ है कि – जो रहस्य है, जिसे आसानी से नहीं जाना जा सकता, जिसमें पहुँचना आसान नहीं है लेकिन अगर पहुँच गये तो फिर बिल्कुल ऐसा ही है जैसे काँटा थोड़ा टेढ़ा होता है, तो पानी में अग़र कोई चीज़ गिर जाती है, कुएँ में अग़र किसी का बर्तन गिर जाता है, तो पानी में अग़र कांटा डाला जाये तो वह निकाल कर लाता है उस चीज़ को पानी से बाहर। कहा है कि अग़र तुम्हारे हृदय के अन्दर कहीं पाप का कोई भी बर्तन गिरा हुआ है जो तुम्हें दबा रहा है, दुःखी करता है तो कृष्ण नाम के टेढ़े कांटे

को उसमें डालिए, सब निकल करके बाहर आ जायेगा; सीधे से बाहर निकलने वाला नहीं; इसीलिए कृष्ण नाम जपना पड़ेगा। इसीलिए कृष्ण शब्द का अर्थ काला भी है, अर्जुन का अर्थ श्वेत है।

यहाँ एक बात और याद रखने योग्य है कि सफेद रंग पर तो कोई भी रंग चढ़ जायेगा लेकिन काला रंग जहाँ पहुँच गया तो सारे ही रंग फिर उसमें मिल जायेंगे और काला काला ही बना रह जायेगा अर्थात् कृष्ण रंग अगर किसी पर चढ़ गया तो फिर दूसरा रंग चढ़ने वाला नहीं, यह अपने आपे में पक्का रंग है, यह अपने जैसा कर ही लेता है।

भारत में जितनी भी कोट कचहरी लगती है वकीलों के कोट का रंग काला रखा गया है। उसका मतलब है कि दूसरे पक्ष का क्या, किसी भी पक्ष का रंग नहीं चढ़ना चाहिए। काले कोट पहनने का मतलब ही यही है कि तुम न्याय की आवाज़ बन जाओ और तुम्हारे ऊपर दूसरे पक्ष का रंग नहीं चढ़ना चाहिए। वह एक प्रतीक दिया गया है।

एक और चीज़ पर ध्यान करें आप कि जादूगर काला रंग रखते हैं सामने। कृष्ण भी एक सम्मोहन है, एक जादू है, बड़ा प्यारा आकर्षण है।

और तो और परमात्मा की व्यवस्था ही ऐसी है कि थके हारे इन्सान के ऊपर रोज़ परमात्मा अपना काला कपड़ा डालते हैं जिसके कारण उसको शान्ति मिलती है, रात जब भी आती है अन्धेरे की काली चादर लेकर के आती है जिससे इन्सान को शान्ति मिलती है।

तो वास्तव में देखा जाये तो कृष्ण नाम ही एक ऐसी आकर्षण और सम्मोहन की शक्ति का है जिससे हमारे जीवन में शान्ति आती है। जितना जितना इस चादर को ओढ़ते चले जाओगे थके हारे जीव को शान्ति मिलेगी। जीवन की अमूल्य निधि पाने का सीधा-सादा मार्ग है कृष्ण नाम।

इस अर्जुन और कृष्ण के नाम के बाद आईये अब गीता के उस स्वरूप में हम प्रवेश करें जहाँ राजभवन में धृतराष्ट्र और संजय बैठे हुए हैं।

संजय से धृतराष्ट्र पूछ रहे हैं-अपने दिव्य चक्षुओं द्वारा कुरुक्षेत्र की भूमि में ध्यान करो और बताओ कि वहाँ क्या हुआ? धृतराष्ट्र जिज्ञासा करता है अर्थात् **एक अन्धे व्यक्ति की जिज्ञासा से गीता का प्रारम्भ होता है।**

यह भी ध्यान रखना कि अगर ज्ञान के गीत जीवन में हम जागृत करना चाहते हैं, जिज्ञासा अपने अन्दर प्रकट करनी होगी, बिना जिज्ञासा के कुछ बात बनती नहीं और हम दुनिया में जब आते हैं, होश सम्भालते हैं, बोलना सीखते हैं, तो हमारे समस्त बोलने में जिज्ञासा अधिक होती है, हम जिज्ञासा लेकर आते हैं संसार में; वह जिज्ञासा ही हमें संसार को जानने में और समझने में सहायक बनती है।

इसीलिए याद रखना, जब तक संसार में जियोगे अपने अन्दर की जिज्ञासा को मरने मत देना, अपने विद्यार्थीकाल को समाप्त नहीं होने देना, जानते रहो, सीखते रहो, पूछते रहो, पूछना जानना जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है, **हमारा विकास ही तभी सम्भव है जब हमारे अन्दर जिज्ञासा जागृत होगी** –प्रश्न करना, जिज्ञासु मन, जानने की इच्छा वाला। हमारी इच्छाऐं कितनी भी तरह की हो सकती हैं लेकिन जिज्ञासा बहुत प्यारी शक्ति है, बहुत प्यारी इच्छा है, जानने की इच्छा है। लेकिन जानना क्या? परम तत्त्व। पर यह धृतराष्ट्र नेत्र विहीन तो है ही लेकिन अन्दर से अन्तः प्रज्ञा भी उसकी नहीं है, जानना चाहता है तो कोई ज्ञान नहीं जानना चाहता है, युद्ध की बात जानना चाहता है, राज्य पर कब्ज़ा करना चाहता है।

याद रखना जो भी व्यक्ति संसार में कब्जा जमाने की कोशिश करता रहा उसकी दशा सदैव धृतराष्ट्र जैसी रही। राष्ट्र को धृत पकड़ने की कोशिश कर रहा है, धारण कर रहा है, पकड़ रहा है।

जो भी इस दुनिया में कुछ भी पकड़ने की कोशिश करता रहा, संसार के पदार्थों को, भौतिक चीज़ों को, उसकी पकड़ में कुछ आया नहीं।

इसीलिए नियम है कि शुरुआत में तो हर कोई धृतराष्ट्र जैसी स्थिति में होता है, हर चीज़ को पकड़ने की कोशिश करता है; बच्चे की आदत होती है, हर चीज़ को पकड़ेगा। आपने देखा है कि बच्चे, चाहे अच्छी चीज़ है या बुरी चीज़ है, हर चीज़ को पकड़ने के लिए भागते हैं पर यह भी विचित्र नियम है कि जब जाने लगता है इन्सान, संसार से विदाई लेता है, हाथ खुल जाते हैं, स्वाभाविक रूप से हाथ खुलने का मतलब है कि पकड़ने की कोशिश तो बहुत की लेकिन पकड़ में कुछ आया नहीं, सब यहीं छूटता जा रहा है, सब यहीं छोड़कर जा रहा है।

धृतराष्ट्र की जिज्ञासा से गीता का प्रारम्भ हुआ और प्रारम्भ में धृतराष्ट्र कहते हैं:-

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवश्चैव किमकुर्वत संजय ॥

"हे संजय! धर्म के क्षेत्र कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा वाले मेरे और पाण्डु के पुत्र जो इकट्ठे हुए थे उन्होंने क्या किया?"

सबसे पहला शब्द कहा गया है "धर्मक्षेत्रे"। व्याकरण का एक सूत्र है आदिरंतेन संहिता- आदि और अन्त को जोड़ दिया जाए तो संगीता बनती है, मतलब संगीता का यह नियम है, स्वरूप समझ में आता है। गीता का पहला अक्षर 'ध' और गीता का अन्तिम अक्षर 'र्म' दोनों को जोड़िये, तो बनेगा धर्म। पता लगा गीता में जो कुछ धर्म है, धर्म के सम्बन्ध में बताया गया। मानव धर्म क्या है, गृहस्थ धर्म क्या है वह है, सामाजिक धर्म क्या है, क्षत्रिय धर्म क्या है, वैश्य का धर्म क्या है, ब्राह्मण का धर्म क्या है, संन्यासी का धर्म क्या है - धर्म की व्याख्या है। इसीलिए गीता का प्रारम्भ धर्म से हुआ, *धर्मक्षेत्र* – धर्म के उस क्षेत्र में, धर्म की भूमि में, *कुरुक्षेत्रे* कुरुक्षेत्र में, उस कुरुक्षेत्र नाम के स्थान में-कहा जाता है कि कुरुक्षेत्र वह स्थान रहा है जहाँ कभी ब्रह्मा, इन्द्र और अनेक ऋषियों ने तपस्या की। इसीलिए उसे धर्मक्षेत्र कहा गया है, वह साधारण स्थल नहीं था।

शायद वह स्थान इसीलिए चुना गया हो कि अन्याय करने वाले लोग कम से क़म उस स्थान पर जाकर धर्म तो याद कर लें, समझ में तो आ जाए कि चलते-चलते ज़िन्दगी तुम्हें युद्ध की भूमि में लेकर आ गई और अधर्म करते-करते तुम कहाँ तक पहुँच गए हो, कुछ तो धर्म याद करो।

लेकिन जिसके सिर पर विनाश बैठ जाता है वह कभी धर्म को याद नहीं करता, धर्म वाली बातें उसे अच्छी नहीं लगतीं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने यह कहा-

तुलसी पिछले पाप से हरि चर्चा ना सुहाए
जैसे ज्वर के वेग से भूख विदा हो जाए

बुखार आने से भूख भागती है, पानी पियो तो कड़ुवा लगता है, स्वाद बिगड़ जाता है, भूख बिगड़ जाती है, स्वभाव चिढ़चिढ़ा हो जाता है; बुखार

आने से ऐसा हुआ। कहते हैं पाप का बुखार जब चढ़ता है तो भी आदमी उद्‍दत हो जायेगा, उद्‍श्रृंखल हो जायेगा, दूसरे को दबाने में लगा रहेगा, दूसरे को सताने में खुश होगा, ईर्ष्या, वैर उसका स्वभाव बन जायेगा और प्रभु की चर्चा अगर उसे सुनाओ तो इसको सबसे गलत चीज़ समझेगा, उसके कल्याण की बात उसके कानों में डालोगे वह सुनना नहीं चाहेगा। दुर्योधन ऐसा ही मन है।

याद रखना कि जब आकाश में मेघ घिर आते हैं और रिम-झिम वर्षा होनी शुरू हो जाती है, तो वर्षा तो भले ही उपजाऊ भूमि में और बंजर भूमि में दोनों में एक जैसी होती है लेकिन कमाल यह है कि उपजाऊ भूमि में या तो अन्न उगेगा या सुन्दर फूल खिलेंगे; बंज़र ज़मीन में भी वही जल गिरता है लेकिन वहाँ केवल कंटीली झाड़ियाँ उगा करती हैं।

परमात्मा की कृपा तो सब पर एक जैसी बरसती है लेकिन जिसकी ज़मीन बंज़र है, जिसका मन ही बंज़र भूमि है वहाँ कंटीली झाड़ियों के सिवाय कुछ उगने वाला नहीं; लेकिन जिसका हृदय उपजाऊ भूमि है, परमात्मा की कृपा के थोड़े से भी बीज़ गिरेंगे, थोड़ी-सी भी वर्षा होगी, सुगन्धि फैलाने वाले फूल खिलेंगे।

द्रोणाचार्य भी कौरवों और पाण्डवों को अस्त्र और शस्त्र चलाने की विद्या देने के लिए तत्पर रहे, उन्होंने भी दोनों तरह के शिष्यों को एक ही तरह का ज्ञान दिया-सुनाया जाता है तो सबको एक जैसा ही सुनाया जाता है, बादल बरसता है तो सबके आंगन में एक जैसा ही बरसता है लेकिन हुआ कुछ ऐसा जैसे नीम के पौधे में अगर जल बरसता है तो उसके अन्दर कड़वाहट पहले होती है, तो, वर्षा से उसके अन्दर की कड़वाहट और बढ़ जाती है; गन्ने के खेत में जाकर जल बरसेगा तो उसकी मिठास और बढ़ जाती है, नींबू के पौधे में जाकर के अगर वही जल बरसेगा तो उसकी खटास को और बढ़ा देगा, और मिर्ची के पौधे में जाकर के वही जल गिरा तो उसके तीखेपन को और तीखा कर देगा। इसीलिए अच्छा यही है कि अन्दर ज़हर रखो ही नहीं; कुछ पुरुषार्थ करके थोड़ा अमृत अपने अन्दर रखने को कोशिश करो और तब प्रार्थना करो अपने परमात्मा से, उसकी कृपा की वर्षा होगी तो आपका अमृत हज़ार गुणा

बढ़कर आपका कल्याण करेगा। दुर्योधन, कटीले स्वभाव वाला व्यक्ति है। महाभारत कार ने उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विचित्र वर्णन किया है–

कहा है कि दुर्योधन जब पैदा हुआ, दिन में सियार बोलने लगे, गीदड़ बोलने लगे, आकाश में चील, कौए मँडराने लगे। व्यास ऋषि ऐसा समझाते हैं कि जैसे एक विनाश का बीज अंकुरित हुआ, न जाने कितनी कितनी मनुष्य जाति को नष्ट करेगा।

संसार में कुछ ऐसे तानाशाह लोग हुए जिनकी स्मृति तो लोगों के हृदय में है लेकिन जब भी उनका नाम आता है व्यक्ति के चेहरे का रंग बदल जाता है, खीझ पैदा होती है, घृणा आती है, दाँत पीसने लग जाता है आदमी, मुटिठयां बन्द हो जाती हैं; लाखों लोगों को जिन लोगों ने मरवाया, न जाने कितने तानाशाह हुए। अभी कुछ समय पहले, जो इस समय लापता व्यक्ति है, युगान्डा में राष्ट्रपति रहा, जिसके सम्बन्ध में अनेक लेखकों ने लिखा कि मनुष्य के मांस को भी खाने की जिसकी आदत थी, चार लाख लोगों को जिसने मरवाया। कुछ लोग संसार में ऐसे नराधम बनकर के आते हैं जिनकी कोशिश केवल यह रहती है कि अपनी "मैं" को विस्तार देने के लिए वह सबको मिटाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

आप जानते हैं कि जो आदमी निर्माण की तरफ लगते हैं, वह सृजन करते चले जाते हैं-कभी किसी के ऐब देखने की फुर्सत ही नहीं होती और जो आदमी जीवन में कुछ नहीं कर पाता उसके पास में और कुछ भी नहीं तो कम से कम जो सफल लोग हैं उनके ऐब ही निकालता रहता है, उनके दोष ही निकालता रहता है और अगर कुछ भी नहीं बन सके तो जो बहुत आगे बढ़ गया है उसके बारे में कुछ न कुछ इधर-उधर की बात जोड़कर उसको गिराने के लिए प्रयास करता रहे, अपने आप दौड़कर आगे न बढ़ सके तो टाँग अड़ाकर दूसरे को गिराने की कोशिश तो करेगी ही। दुर्योधन ऐसा मन है।

द्रोणाचार्य ने तो, युधिष्ठिर को और दुर्योधन को, दोनों को एक जैसा पढ़ाया लेकिन दोनों में एक जैसा जल गिरने के बाद भी एक जैसी बात पैदा नहीं कर पाया वह। इसीलिए महाभारत में ऐसा विचित्र वर्णन भी है –

द्रोणाचार्य ने परीक्षा लेने के लिए अपने दोनों शिष्यों को – युधिष्ठिर को और दुर्योधन को भेजा। दोनों से ही कहा कि जाओ संसार भर में जितने-जितने बुरे लोग हैं और जितने अच्छे लोग हैं उनकी सूचि तैयार करके लेकर आओ।

दोनों ही चल पड़े और दोनों ही खाली हाथ लौट आए। कागज़ कोरा। द्रोणाचार्य कहते हैं कि क्या लगता है मेरी विद्या का कोई चमत्कार ही घट गया दोनों एक जैसे ही दिखाई देते हैं।

दुर्योधन से पूछा-दुनिया में अच्छे आदमी मिले? उनका नाम नोट किया?

दुर्योधन ने कहा- हर मन में झाँका, हर इन्सान को देखने की कोशिश की लेकिन मैंने तो यह पाया कि किसी के अन्दर भी कोई अच्छाई नहीं, बुराई ही बुराई दिखाई दी। अपने से तो हज़ार बुरा हमने दुनिया को देखा इसीलिए अगर नाम अच्छे आदमी के लिखने की बात हो तो एक हम ही हैं, अब अपना नाम खुद ही लिखें तो वह भी ठीक नहीं है, इसीलिए अच्छे तो हो सकते हैं केवल हम और अगर बुरा देखें तो दुनिया बुरे से भी बुरी भरी पड़ी है।

युधिष्ठिर से पूछा कि तुमने कोई नाम नहीं लिखा?

हाथ जोड़कर के युधिष्ठिर कहन लगे – अच्छे लोग तो संसार में इतने हैं कि यह कागज़ तो क्या यह धरती भी कम पड़ जाए उनका नाम लिखते-लिखते क्योंकि हर आदमी में हज़ार-हज़ार अच्छाईयाँ हैं और अगर बुरा नाम लिखने की बात हो तो इस कागज़ को भी क्या काला करना, यह सामने व्यक्ति खड़ा हुआ है न, मुझसे बढ़कर के बुरा इन्सान कौन हो सकता है, मैं ही सबसे बढ़कर ही बुरा हूँ और जितने भी दुनिया में लोग हैं वह मुझसे बढ़कर भी अच्छे लोग हैं, मुझे तो उन सब में बहुत-बहुत अच्छाई दिखाई दी है इसीलिए नाम लिखने की ज़रूरत नहीं पड़ी, कोरा कागज़ लेकर के आ गया और अगर बुराई की बात है तो बुरा इन्सान मैं खड़ा हुआ हूँ, मैं अभी भी वह नहीं हो पाया जो हो सकता था मैं अभी भी वहाँ तक नहीं पहुँच पाया जहाँ पहुँच सकता था, अभी भी बहुत उम्मीदें हैं, गुरुदेव। नाम लिखने की बात नहीं है, नाम सामने प्रकट है-बुरा इन्सान सामने है और अच्छे लोग सारी दुनिया में फैले हुए हैं।

द्रोणाचार्य यह सुनने के बाद युधिष्ठिर को अपने गले से लगाकर, सिर पर हाथ फेरते हुए कहते हैं कि युधिष्ठिर तुझ जैसे शिष्य को पाकर मैं भी धन्य हो गया हूँ।

याद रखिए – किसी की बहुत सारी सन्तान हो लेकिन लायक एक बेटा भी हो तो ऐसा जैसे हज़ारों करोड़ों सितारों के बीच एक चाँद उग आया। एक चाँद, एक चन्द्रमा, ज़्यादा अच्छा, करोड़ों सितारे अच्छे नहीं; ऐसे ही किसी के शिष्य भले ही करोड़ों की संख्या में क्यों न हों लेकिन अगर एक भी लायक निकल आया चन्द्रमा बनकर के, तो समझ लेना वह ऐसा है जैसे चन्द्रमा पूरी रात्रि की शोभा होता है, वह सारे ब्रह्माण्ड की शोभा बन जायेगा, एक योग्य शिष्य हो तो।

द्रोणाचार्य ने भी कहा – कभी न कभी समय आयेगा कि मेरी स्मृति को संसार में जीवित रखने का कार्य तुम्हारे ही द्वारा होगा।

अत: चिन्तनीय विषय यह है-अपने शिष्य होने में हम कितनी विशेषता रखते हैं: ज़्यादातर लोग गुरु की विशेषता देखने में लगे रह जाते हैं, वह कुछ चमत्कार कर दे और स्वयं अपना पात्र नहीं तैयार करते ठीक करने का; निश्चित बात है हर पात्र में चमत्कार घट सकता है लेकिन वह पात्र पात्र तो बने।

अपनी पात्रता को सिद्ध करो और उसके बाद देखो गुरु का चमत्कार।

अर्जुन-सरल मन वाला शिष्य है, कृष्ण-गुरु और सखा। गुरु को मित्र बनना होता है। याद रखिये कि जो बात इन्सान अपने माता-पिता को भी नहीं कह सकता, कोई इन्सान अपने माता-पिता को भी जो बात न कह पाए वह अपने मित्र को कह देता है और अगर गुरु मित्र बन जाए तो उसके सम्मुख अपना हृदय खोलने में संकोच नहीं होगा और फिर गुरु चिकित्सक भी हो तो बहुत अच्छी चिकित्सा कर सकता है।

कृष्ण सखा भी है, कृष्ण गुरु भी है और कृष्ण प्रभु भी हैं। सारे रूप लेकर के अपने गुरु की तरफ देखें, सब कुछ मिलता है।

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की भूमि है, जिसके सम्बन्ध में धृतराष्ट्र ने जिज्ञासा की कि हे संजय! बताओ –

'मामका: पाण्डवाश्चैव' – मेरे और पाण्डु के पुत्र, पाण्डव लोग, *किमऽकुर्वत:* – क्या उन लोगों ने किया यह मुझे बताओ संजय। यहाँ शब्द है *मामका:* – मेरे, और दूसरों के लिए उसने कहा – *'पाण्डुपुत्र'* – अपने भाई का नाम लेकर उसके बच्चों की तरफ इशारा किया, मेरे बेटों ने और पाण्डु के बेटों ने क्या किया, यह मुझे बताओ।

अब यहाँ बोलने में एक बात है कि उससे झलक रहा है कि उसकी अर्थात् धृतराष्ट्र की मन की स्थिति क्या थी। बड़ा सुन्दर विश्लेषण है, इसीलिए शब्द व्यक्ति के व्यक्तित्व को दर्शाते हैं – शब्द कहते समय यह पता चलता है कि किस चीज़ पर ज्यादा ज़ोर दिया गया है; यहाँ *मामका:* शब्द पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है – मेरे बच्चों ने।

आदमी कहता है न मैं, मैं हूँ, और तू, तू है; जब दूसरे को तू को और तू कहने लग जाए और अपनी मैं को मैं कहने लग जाये तो फिर उसी का नाम लड़ाई है-तू-तू, मैं-मैं हो गई। लड़ाई के शब्द ही यहीं से शुरु हो जाते हैं।

धृतराष्ट्र का पुत्र है न दुर्योधन, पिता में जो कुछ है तो बेटे में दिखाई देगा। यह अलग बात है कि बेटे में ज़रा विस्तृत दिखाई दे रहा है। कहा – मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया? पता लगता है कि कितना मोह था, कितनी आसक्ति थी धृतराष्ट्र के मन में, मैं रहूँ, मेरा रहे बाकी कोई न रहे; मैं बचना चाहिए, मेरे बचना चाहिए, मेरा सब कुछ बचना चाहिए और किसी का कुछ नहीं बचना चाहिए – यह स्वार्थ वाली भाषा को बोलने वाला व्यक्तित्व है धृतराष्ट्र और कहा जाता है –

अस्वमेव वसनमेव जायावेह बन्धुवर्धस्य

–नीतिकारों ने श्लोक लिखा है, जो कहता है-यह मेरे वस्त्र, यह मेरा निवास-स्थान, यह मेरे आभूषण, यह मेरे खाने के पदार्थ, यह मेरी आराम गाह, यह जो मैं मैं कहने वाला है।

कालोन्ति ब्रकोऽइयमीव

ऐसा मैं-मैं कहने वाले को काल-रूपी भेड़िया ऐसे उठाकर ले जाता है, ऐसे नष्ट कर देता है, जैसे मैं-मैं कहती हुई बकरी को भेड़िया उठाकर ले जाता है। बहुत मैं-मैं, मेरा-मेरा, मन कहने वाले को काल तोड़ने में देर नहीं लगायेगा।

कुछ लोगों ने बड़े सुन्दर ढंग से डैस लगाकर बड़ी प्यारी बात कह दी-कहने का ढंग है इसीलिए उस बात को कहा जा रहा है; किसी सन्त की वाणी नहीं कह रहा हूँ, किसी तुक जोड़ने वाले की, किसी दोहे वाले की बात कह रहा हूँ, जिसने कहा –

"बकरी जो मैं-मैं कहे (में-में, मैं-मैं)
गले छुरी फिरवाए
और मैना, जो मैं ना कहे
सबके मन को भाए"

बड़ी प्यारी बात कही है। मैना अच्छी लगती है-"मैं–ना" कहती है, मैं हूँ ही नहीं, सबके मन को भा रही है, इन्सान अगर तू अपने मन को कहे, समझाए, कि मैं कुछ भी नहीं हूँ और अपने प्रभु के सम्मुख बोले मैं तुच्छ हूँ, नाचीज़ हूँ, अकिञ्चन हूँ, तो दुनिया को तो भायेगा ही दुनिया के मालिक को भी भायेगा।

धृतराष्ट्र यहाँ मेरे-मेरे की बात बहुत कर रहे हैं, यद्यपि गीता के श्लोक ऐसे हैं कि एक श्लोक की व्याख्या करें तो कम से कम चार दिन तो चाहिएं, इस हिसाब से अगर सात सौ श्लोक हैं तो चार साल तो लग ही जाने चाहिएं और ऐसा सम्भव नहीं है कि एक ही स्थान पर बैठकर चार साल तक इसकी व्याख्या की जा सके, तो इसीलिए व्याख्या को समेटते हुए आपको आगे लेकर चलना चाहता हूँ।

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि दर्शाती है कि यह जीवन कर्मक्षेत्र है। इस कर्मक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बनाओ, कर्तव्य का क्षेत्र बनाओ, कर्तव्य करने के लिए संसार में आए हो और जब तक संसार में रहोगे तब तक कुछ न कुछ संसार में काम करते रहना पड़ेगा, खाली बैठना ही नहीं।

महाभारत में युद्धभूमि में जो लोग खड़े हुए हैं उनमें बहुत-बहुत बूढ़े लोग भी हैं और बहुत छोटी आयु वाले भी हैं – जैसे अभिमन्यु, जिसकी उम्र सोलह वर्ष की बतायी जाती है; तो कहाँ तो भीष्म जैसे वृद्ध लोग और कहाँ अभिमन्यु जैसे सोलह वर्ष का युवक। युद्ध में सब आकर के खड़े हो गए।

युद्ध नाम है संघर्ष का। कहना चाहिए कि इस ज़िन्दगी में चाहे कोई बच्चा है या बूढ़ा, संघर्ष तो करना ही पड़ेगा, सांस का सफर जब तक चलता रहेगा संघर्ष जारी रहेगा, यह कहीं रुकने वाला नहीं।

आपके शरीर में सदैव रोग के कीटाणु भी रहते हैं और आपको स्वास्थ्य देने वाले कीटाणु भी रहते हैं लेकिन जिस समय तक आपके अपने स्वास्थ्यवर्धन वाले कीटाणु जीतते रहते हैं तब तक आपकी सेहत ठीक रहती है। बहुत-बहुत

रोग ऐसे होते हैं जो सदा ही रहते हैं – टी.बी. के कीटाणु सदा हैं लेकिन जागृत किसके होते हैं? जिसके अन्दर की संजीवनी शक्ति ख़त्म होती जायेगी। निश्चित बात है जीवनी शक्ति जैसे-जैसे खत्म होती जायेगी वैसे-वैसे दूसरे कीटाणु आगे बढ़ते जायेंगे और अपना काम कर जायेंगे।

इसीलिए ध्यान रखना कि अपनी जीवनी-शक्ति को जितना प्रबल रखोगे उतना ही ढंग से जी भी पाओगे। कहा जाता है कि जो लोग बहुत लम्बे और गहरे श्वास लेते हैं और बहुत खुलकर के हँसते हैं खोखली हँसी नहीं, गहरे सांस लेकर के सोते हैं उनकी आयु लम्बी होती है। अपनी जीवनी-शक्ति को प्रबल रखना है तो अपने श्वासों को गहरा बनाओ, खुलकर हँसों और ध्यान रखो कि शरीर से पसीना बहना चाहिए, कर्मरत रहो क्योंकि संसार में कर्म करने के लिए आए हो।

इसीलिए शास्त्रों में इस जीव को "कृतु" कहा, कर्मशील, और इस शरीर को कृतु कहने के साथ साथ यह बता दिया कि यह जो शरीर में तुम्हारे कर्म करने के लिए तुम्हारे-अंग प्रत्यंग हैं ख़ास तौर से तुम्हारे हाथ, तो उनको "कर" कहा गया- करों से करो 'इस कर से कुछ काम कर'। और यह भूमि जिस पर हम खड़े हैं यह कर्मभूमि है। इस कर्मभूमि में अपने करों से हम कर्म करने के लिए आए क्योंकि हमारा नाम "कृतु" है, कर्मशील जीव है। कुछ न कुछ करते रहना पड़ेगा।

इसीलिए जितने भी हमारे आश्रम हैं, चाहे ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम या फिर संन्यास आश्रम सबके साथ 'श्रम' शब्द जुड़ा हुआ है जो इस बात का प्रतीक है कि परिश्रम से जी नहीं चुराना है, श्रम करते रहना है, परिश्रम करते रहना है, खाली नहीं बैठना है, सदैव कर्म करते हुए जीने की कामना रखो।

पता लगा कुरुक्षेत्र हर किसी के सम्मुख है, हर किसी के जीवन में संघर्ष है और वह ही लोग संसार में जीवित रहे, वह जातियाँ ही जीवित रही जो कर्म शील रहीं।

हर इतिहास को पढ़िये, किसी भी जाति का इतिहास क्यों न हो, जब तक कर्मशील और बहादुर बनकर के जिस क़ौम ने अनुशासन से अपने आपको आगे बढ़ाया, वह कौम, वह जाति, संसार में राज करती रही। जैसे-जैसे

आलसी हो गए, भोगी विलासी हो गए, आराम पसन्द हो गए, वैसे-वैसे उन्नति की गेंद नीचे आती चली गई और एक समय ऐसा आया जब अपने ऊपर शासन नहीं कर पाये तो दूसरों के ऊपर तो शासन क्या कर पायेगा इन्सान? साम्राज्य उखड़ गये।

ध्यान रखना, जब तक आप परिश्रम करते रहोगे, संघर्ष करते रहोगे, जीवनी-शक्ति आपकी प्रबल रहेगी, आगे बढ़ते रहोगे।

महात्मा बुद्ध के जीवन में एक बात आती है –

आनन्द के साथ महात्मा बुद्ध किसी वन के प्रान्त से गुज़र रहे थे। एक स्थान पर उन्होंने देखा, एक बहुत सुन्दर-सा पौधा, चिकने पत्तों के द्वारा लहलहा रहा है। महात्मा बुद्ध ने उसकी हरितिमा को देखकर, हरियाली को देखकर आनन्द की तरफ मुख़ातिब होकर कहा-आनन्द, यह पौधा जितना हरा भरा है, पता लगता है कि इसके अन्दर जीवनी शक्ति बहुत है, जिजीविषा है, जीने की इच्छा बहुत है, यह जीवित रहेगा, बड़ा होगा, विस्तार पायेगा।

आनन्द ने पीछे मुड़कर पौधे को पकड़ा और उखाड़कर फैंक दिया।

महात्मा बुद्ध ने पीछे मुड़कर देखा, मुस्कुराकर बोले-अच्छा इसकी परीक्षा लेना चाहते हो?

वहीं मिट्टी में डालकर आनन्द आगे चल पड़ा।

दस दिन, बीस दिन के बाद महात्मा बुद्ध जब लौटे उन्होंने ईशारा किया कि देखना उस पौधे को अब जाकर।

वह पौधा वैसे पड़ा-पड़ा टेढ़ा पड़ा हुआ है, वैसे ही उसने अपनी जड़ें ज़मीन के अन्दर घुसानी शुरू कर दीं और वहीं से फिर लहलहाने लग गया।

महात्मा बुद्ध कहने लगे जिसके अन्दर जीवनी शक्ति बहुत होती है, भले ही दुनिया उठाकर के उसे नीचे भी गिरा दे, वह जहाँ भी गिरेगा वहीं से फिर से उठना शुरू हो जायेगा; अपनी जीवनी शक्ति को प्रबल रखना चाहिए।

यह बात हमेशा याद रखना। आग की लपट को उठाकर कितना भी नीचे कर दिया जाए, नीचे करने के बाद भी वह हमेशा ऊपर उठेगी क्योंकि ऊपर उठने का स्वभाव है उसका। एक बार अपने मन में यह भावना बनाओ कि हमने बहुत ऊँचाई पर जाना है, जाओगे।

इसीलिए कहा-

उद्यानम् ते पुरुष नवयानम्

मनुष्य तेरा जन्म इसीलिए हुआ है कि तू ऊपर उठे *न अव्यानम्* नीचे गिरने के लिए जन्म नहीं हुआ।

आरोह तमसो ज्योति ऋग्वेद का यह वचन है

– अन्धेरे से प्रकाश की ओर बढ़ना, यह तेरे जीवन का लक्ष्य है, अपने अन्धेरों से बाहर निकलो; हार कर मत बैठ जाओ।

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में दोनों तरफ की सेनाऐं पहुँच गईं। धृतराष्ट्र जिज्ञासा कर रहे हैं – संजय, मेरे पुत्रों ने, पाण्डु के पुत्रों ने, क्या किया? संजय फिर कहने लगे; उन्होंने बताना शुरू किया कि दोनों तरफ की सेनाऐं एकत्रित हैं और श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने हुए हैं, उनका रथ आगे खड़ा हुआ है और अर्जुन कह रहे हैं–हे कृष्ण! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो, थोड़ा और निकट ले चलो, मैं देखूँ तो सही कि यह युद्ध किन-किन लोगों के बीच में हो रहा है।

स्वार्थ जब सामने आते हैं और व्यक्ति स्वार्थ में तत्पर हो जाए बड़ी अजीब चीज़ है कि स्वार्थ जब सामने आता है तो आपके जो अपने सगे सम्बन्धी हैं वह भी आपके विरोध में आकर खड़े हो जाते हैं।

जब कभी संकट की बेला हो तो एक बात याद रखना कि आप हमेशा अपने आपको अकेला अनुभव करोगे। सारथी बनाना उस समय अपने भगवान को; और किसी को सारथी नहीं बनाना।

अकेली स्थिति में अर्जुन के सारथी कृष्ण हैं। अर्जुन ने देखा कि सामने जितने भी लोग हैं उनमें वह भी लोग हैं जिनकी गोद में बैठकर वह खेला था। अर्जुन ने कई बार भीम की खीर उठाकर खाई और फिर बचने के लिए दादा भीष्म पितामह की गोद में आकर वह बैठ गया और कहा कि मुझे भीम भईया से बचाओ और अपनी गोद में बैठाकर भीष्म ने प्यार से सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "शरारत तू करता है, बचाऊँ मैं?" सारी स्मृतियां अर्जुन के मन में हैं।

गुरु द्रोणाचार्य भी उस पक्ष में खड़े हो गए। जिनके पास घड़े पानी के भरकर अर्जुन लेकर के आया करता था, आँगन को धोता था, उनके चरणों को

धोता था, उनके पास बैठता था, पसीने से लथ-पथ होकर जल्दी आकर के बैठता था कि जिससे कि सारी विद्या मैं सीख लूँ; द्रोणाचार्य भी कितने प्यार से कहते थे – 'अर्जुन, लगता है तू मेरे पास कुछ भी बाकी छोड़ेगा नहीं।' स्मृतियां सामने वह भी हैं।

कृपाचार्य, कुल गुरु हैं, कुल में उत्तम संस्कार देने के लिए; कुन्ती माँ को न जाने कितनी बार सांत्वना देने के लिए आए, उनकी स्मृतियां भी मन पर हैं।

और तो और भद्र, देश के राजा, शल्य, उनके मामा-अर्जुन के मामा वह भी उस पक्ष में हैं। जो भाई लगते थे, चाचा लगते थे, मामा लगते थे, ताया लगते थे, जो दादा की उम्र वाले हैं-वह सारे रिश्ते वाले लोग दूसरे पक्ष में खड़े हुए देखे उसने।

अर्जुन सोच रहा है – सिंहासन के लिए सब विरोध में आकर खड़े हो गए। सभी इस धरती के मालिक बनने की कोशिश कर रहे हैं, अग्निपुराण में एक सम्बोधन है – कि यह धरती कब रोती है और हवा कब हँसती है?

कहते हैं कि जब इन्सान का अभिमान आसमान को छूने लगता है हवा तब हँसती है और कहती है कि हवा में उड़ रहे हो, न जाने कब उठकर के गिरोगे नीचे और जब इन्सान ज़मीन को नापता हुआ कहता है कि इतनी ज़मीन का मालिक मैं हो गया, तब ज़मीन रोया करती है और कहती है-मुझे नापने वाले मेरे बेटे, तू ग़लत नाप रहा है; असली नापना तो तेरा तब होगा, जितनी ज़मीन पर तेरा शव लेटा होगा उतनी ही ज़मीन तू नाप पायेगा, ज़्यादा को नाप नहीं पायेगा। और मेरा मालिक बनने वाले, मेरा मालिक तो आज तक कोई नहीं बना; मेरा मालिक वही है जिसने मेरा निर्माण किया है-मेरा भगवान।

अर्जुन के मन में भी यह बात आई, इस भूमि के लिए, राज सिंहासन के लिए, सुख सुविधाओं के लिए, यह लोग हत्या करने के लिए, लड़ने-मरने के लिए, सिर काटने के लिए तैयार हो गए- कैसा समाज है? सब रिश्ते भूल गए हैं? जो कहते थे कि हम तुम्हें प्राणों से भी ज़्यादा प्यारा मानते हैं आज उनको क्या हो गया है? सबकी आँखें बदल गईं?

स्वार्थ सामने आ जाए सब विपरीत आकर खड़े हो जाते हैं।

ऐसी दशा में जाकर अर्जुन का मन टूटने लगा और उसको कहना पड़ा–

"सीदन्ति मम गात्राणी मुखं च परिशुष्यति

मेरा शरीर काँप रहा है और मेरा मुख सूखने लगा है।

वेपथुश्च शरीरे में रोमहर्षश्च जायते

मेरे शरीर के रोएं-रोएं सिहरन में आ गए हैं, रोमहर्षण हो गया है, रोआं रोआं इस समय हर्षित है, रोआं रोआं काँप रहा है; यह सब क्या हो रहा है? कितने, कैसे-कैसे लोग सामने आ गए? इन सबके लिए लड़ना पड़ेगा? अर्जुन फिर कहता है –

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च

हे कृष्ण! राज्य नहीं चाहिए। एक ऐसी मनोदशा हो गई है; उसने अपने मन को जैसे धिक्कारा हो और कहा हो कि धिक्कार है इस जीवन को, धिक्कार है इस मन को, धिक्कार है इस दुनिया को और धिक्कार है इस राज्य को, धिक्कार है इस ज़मीन को जिसके लिए लोग लड़ने के लिए आ गए हैं।

ऐसा सम्बोधन देता हुआ कह रहा है अर्जुन –

न कांङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।

हे गोविन्द! राज्य से क्या? अपनों को मारकर के अगर भोग और सुख मिल भी गए तो क्या लाभ?

प्रथम अध्याय का यह श्लोक भी अर्जुन की मनोदशा को बता रहा है कि – हे कृष्ण! मुझे विजय नहीं चाहिए, मैं सफलता नहीं पाना चाहता – *न राज्यम्* – मुझे राज्य नहीं चाहिए, *सुखानि च*, सुख भी नहीं चाहिए। यह सुख सुविधा जिसके पीछे यह दुनिया भाग रही है मुझे नहीं चाहिए, मुझे राज्य भी नहीं चाहिए, न मैं सफल होना चाहता हूँ। अपनों को मारकर यदि सफलता मिलती हो, ऐसी सफलता मुझे नहीं चाहिए, *किं नो राज्येन* इस राज्य से भी क्या होगा? क्योंकि – अगले श्लोक में समझाया :

येषामर्थे काङ्क्षि नो राज्यं भोगाः सुखानि च

जिसके लिए इन्सान धन चाहता है, राज्य चाहता है जब वही लड़ने-मरने के लिए सामने आ जाए; इन्सान अपने बच्चों के लिए कमाना चाहता है, अपनों के लिए धन चाहता है, कमाता है अपनों के लिए कमाता है; जब वही

लड़ने-मरने के लिए सामने आ गए तो अब मैं इस राज्य का क्या करूँगा? इस सुख का, इस सफलता का क्या करूँगा? कृष्ण मुझे सफलता नहीं चाहिए, न धन चाहिए।

याद रखना, हमारी जैसी भावनाएं बन जाती हैं, जैसे मन के अन्दर भाव बनते हैं हम वैसे-वैसे तर्क़ भी देने लग जाते हैं। अगर हम कुछ कर नहीं पा रहे हों तो हम क्या बोलते हैं: किस्मत ही कुछ ऐसी है, अब होने वाला कुछ भी नहीं है; और कुछ हो भी नहीं पायेगा, सब्र कर लेना ठीक है, क्योंकि कुछ बन नहीं पा रहा न तो वैसे तर्क़ देने लगते हैं। कुछ सफल न हो पा रहे हों, उस समय अपने आपको समझाने लग जायेंगे – जितना है वह क्या कम है, ठीक है; अँगूर खट्टे; मतलब जैसा-जैसा हमारा मन का भाव होता है हम वैसे-वैसे तर्क़ देते हैं। अगर किसी को नग्न रहने की आदत पड़ जाए, आदिवासी भाव वाला व्यक्ति हो, वह सिद्ध करेगा ऐसे ही संसार में आए थे, नकलीपना अपनाने से क्या फायदा? कोई अलग तरह का वेश धारण करने की, कोई भी तरह का वेश अगर कोई धारण करने लग जाए तो व्यक्ति उसे सिद्ध करने लग जाता है-ऐसा ही रहना चाहिए। मतलब जैसी-जैसी हमारी भावनायें बनती हैं हम वैसे अपने आपको सिद्ध करने लग जायें कि हम ऐसे ही ठीक हैं, ऐसे ही अच्छा होता है।

लेकिन एक बात याद रखना-यह थोड़ी देर के लिए ही ऐसा होगा आखिर में सोच समझकर हम असलीयत पर आ ही जाते हैं कि जो मैं कह रहा था दूसरे का मन रखने के लिए, दूसरे को समझाने के लिए ज़रूर कह दिया लेकिन अपने आपे से भाग नहीं सकता इन्सान।

अर्जुन की भी स्थिति ऐसी है – कृष्ण उसकी इस स्थिति को जानते हैं कि यह बाद में अपने स्वभाव में आयेगा ज़रूर, अभी भले ही यह कह रहा हो कि नहीं चाहिए कुछ भी, इसे पिछला अन्याय याद आयेगा, एक-एक दिन याद आयेगा, वन में बिताये हुए दिन याद आयेंगे, अज्ञातवास की पीड़ा याद आयेगी, द्रौपदी का अपमान याद आयेगा, लाक्षाग्रह की बात याद आयेगी, फिर इसके शरीर के अन्दर जोश आयेगा।

आप सोचिये, कि अगर कोई ऑप्रेशन थ्रीयेटर में पहुँचने के बाद डॉक्टर कहे-खून बहाने से क्या फ़ायदा, ऑप्रेशन करने से भी क्या होगा, किसी का

शरीर काटना तो अच्छी बात नहीं है; उसको आप क्या कहेंगे? आप कहेंगे, डॉक्टर साहब अपनी सही स्थिति में आओ कि जिससे कम से कम यह रोग कटे; आपसे शरीर काटने के लिए नहीं कहा जा रहा है, आपसे रोग काटने के लिए कहा जा रहा है।

वास्तविकता वही है। अर्जुन के माध्यम से भगवान कृष्ण उसे डॉक्टर बनाकर, सर्जन बनाकर, समाज के जर्जरित अंग को काट करके फेंक देना चाहते हैं कि जिससे समाज फिर से स्वस्थ हो सके; उसमें उगे हुए कुछ काँटों को काट देना चाहते हैं; माली भी तो काटता है न-माली जब अपने बगीचे को और सुन्दर बनाना चाहता है तो उसे काटता है, दर्ज़ी अगर किसी कपड़े को सुन्दर ढंग से सिलना चाहता है तो सिलेगा बाद में, काटेगा पहले; पुराने भवन के स्थान पर नया बनाना हो तो पुराने को पहले तोड़ना ही पड़ेगा; समाज में कोई परिवर्तन करना है तो फिर थोड़ी-सी लहर पैदा करनी ही होगी, कुछ थोड़ा कुछ काँट-छाँट करनी ही होगी, जिससे कि कुछ नया सृजन हो सके, प्रकृति भी तो करती है-पुराने पीले पत्ते झड़ते हैं तभी तो नयी कोपलें फूटा करती हैं, पुराने जब तक जायेंगे नहीं तो नये आयेंगे कहाँ से? समाज के वातावरण को नया रूप देने की कोशिश तो करनी ही होती है।

जब कोई और इलाज बाकी नहीं रहा, शल्य क्रिया हमारे यहाँ आपात स्थित में उठाया जाने वाला कर्म है, जब कुछ न बन सके तो फिर शल्य, फिर सर्जरी, फिर काँट-छाँट; सारे प्रयोग करके देख लिए गए – मनाया गया, हाथ जोड़े गए, पाँच गाँव माँगने की बात भी कही गयी कि केवल पाँच गाँव दे दो बस झगड़ा खत्म-सब प्रयोग करके देख लिए और जब समझ में आया कि अब ऑप्रेशन से ही रोग ठीक होगा तो भगवान कृष्ण ने फिर उस तरफ का उपदेश देना शुरू किया-किसलिए युद्ध करो? किसलिए संघर्ष करो? किसलिए इस तरफ जाओ?

लेकिन इससे पहले हम एक चीज़ ज़रूर समझेंगे-निराश मन क्या करता है? अर्जुन का मन विषाद है, निराश अवस्था में पहुँच गया है, यहाँ तक कि कर्त्तव्य के रथ से उतरकर भागना चाहता है। जहाँ खड़े होकर उसे लड़ना था वहाँ की बजाए पीछे जाकर बैठ गया रथ में।

कई बार ऐसा होता है कि हम भी अपनी समस्याओं से भागने की कोशिश में लगे रहते हैं। कई बार देखा है न कि घर के अन्दर पत्नी घर की समस्याऐं बता रही होती है, अब पति भोजन कर रहा है, हूँ-हूँ करता जायेगा और मुँह मोड़ता ही जायेगा, इधर उधर देखता जायेगा, बात सुनना ही नहीं चाहेगा, बात की तरफ तो बिल्कुल ध्यान देगा ही नहीं, और नहीं तो यह कह देगा कि फिर बात करना, फिर बात करेंगे हर समय जब भी बैठो तभी यही बात, तैयार हो रहे हैं सोने के लिए तो उस समय भी घर की यह बातें; आदमी अपनी समस्याओं से भागना चाहता है और पत्नी, जो समस्याओं का सामना कर रही है वह जोड़-जोड़ के मौका देख रही है कि कब बताऊँ? वह बताना चाहती है। अब देखा जाए तो समस्याऐं आपके सामने हैं, आप उनसे मुँह मोड़ने की कोशिश करते हैं।

हम सबकी आदत वही है जैसे कबूतर की आदत- बिल्ली को देखकर और तो कुछ कर नहीं पा रहा आँखें बन्द कर लेता है। कबूतर आँखें इसीलिए बन्द कर लेता है अपने आपको यह समझा लेता है कि बिल्ली ध्यान मत दे, ध्यान मत दे। लेकिन ऐसा कर लेने से बात थोड़े ही बन जायेगी।

चिन्ता की बिल्ली सबके सामने बैठी हुई है, और हम मुँह मोड़ने की कोशिश कर रहे हैं, हम भागने की कोशिश करते हैं लेकिन कभी भी चिन्ता की बिल्ली पीछा छोड़ने वाली नहीं है। हाँ, भागने से नहीं, जागने से बात बनेगी। उसको जगाना पड़ेगा, कबूतर को बताना पड़ेगा कि ठीक है बिल्ली में ताकत बहुत है वह तुझे पकड़ सकती है, मार सकती है लेकिन भगवान ने तुझे भी एक ताक़त दी है-और वह तेरी ताकत है तेरे पंखों के अन्दर, जाग और अपने पंखों से उड़, बिल्ली कुछ नहीं कर पायेगी, नीचे रह जायेगी, तू उड़कर ऊपर पहुँच जायेगा, ऊँचा हो जायेगा।

भगवान कृष्ण इसीलिए भागने को नहीं कहते, जागने को कह रहे हैं।

अपनी समस्याओं से मुँह मोड़कर भागने की कोशिश करोगे तो समस्याऐं कभी ख़त्म होने वाली नहीं हैं; शराब का सहारा लेकर, नशे का सहारा लेकर इन्सान ग़म ग़लत करता है असल में ग़लत ग़म नहीं होता ग़लत तो इन्सान स्वयं होता है और जब जागता है और उसको पता लगता है कि समस्याएं फिर हैं

तो फिर पीने की कोशिश करता है-होश न रह जाये। पशुओं का जगत बेहोशी वाला जगत है, हम उधर लौटने की कोशिश करते हैं नशा करके, समस्याओं का सामना नहीं करना चाहते।

बड़ी अजीब चीज़ है कि काँटे लगे हैं पाँव में और हम उन्हें निकाले बिना ऊपर से मरहम पट्टी करने में लगे हुए हैं। बिल्कुल विचित्र चीज़ होती है हमारी।

बूढ़ी माँ की सुई खो गई घर में। अन्धेरा था तो वह उसे ढूँढने के लिए सड़क पर खड़ी हुई। सड़क पर लाईट थी और घर में अन्धेरा। अब सब कहें क्या ढूँढ रही हो। बूढ़ी माँ कहें – सुई ढूँढ रही हूँ। "कहाँ खो गई थी?" "घर के अन्दर" "ढूँढ कहाँ रही हो?" "बाहर"। "बाहर क्यों ढूँढ रही हो?" बूढ़ी माँ कहती है घर में अन्धेरा है न वहाँ कहाँ ढूँढूंगी, यहाँ लाइट है इसीलिए यहाँ बाहर ढूँढ रही हूँ।" आप कहेंगे ऐसा विचित्र इन्सान भी होता है?

देखा जाए तो हम सब ऐसे ही विचित्र लोग हैं, जहाँ समस्या है वहाँ तो सुलझाने की कोशिश नहीं करते बाहर इलाज ढूँढ रहे हैं। अपना कर्म करेंगे नहीं, किसी न किसी के आगे हाथ फैलायेंगे कि देखना ज़रा भाग्य में क्या लिखा है? खुद पुरुषार्थ करके कमाना नहीं चाहते, लॉटरी का टिकट खरीद करके या कोई जुए का दांव चलकर लेकर के सोचते हैं शायद इस बहाने से, इस तरीके से एकाएक हमें बहुत सारा पैसा मिल जाए।

समस्याओं का सामना करना सीख जायें, काँटा निकाल दो। काँटा निकालते समय थोड़ी पीड़ा होगी, मुसीबतों का सामना करते हुए थोड़ी पीड़ा होगी लेकिन अगर चिन्ता के काँटे को निकाल दिया फिर निश्चिन्त होकर के सो जाओ।

इसीलिए भगवान कृष्ण जागने के लिए कहते हैं भागने के लिए नहीं।

भगवान कृष्ण ऐसे गुरु हैं जो संसार छोड़ने के लिए नहीं कहते, संसार में रहकर संसार को समझने के लिए कहते हैं – इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि *संसार में बसो लेकिन संसार में फँसो नहीं, बसना ठीक है फँसना ठीक नहीं है;* भागना ठीक नहीं है, जागना ठीक है, जागने से बात अपने आप बन जाती है, इलाज सम्भव है जागने से। इसीलिए शुरुआत यहीं से करना, समस्याओं को

अच्छी तरह से समझो, अपने सामर्थ्य को समझो, कहाँ समस्या है? चिन्ता का बीज कहाँ है? और जब समझ में आ जाए कि यहाँ चिन्ता बैठी हुई है फिर कुरेदो सुई से, पुरुषार्थ से। बुद्धिपूर्वक निकालने की कोशिश करो उसे।

ऐसे नहीं समझ में आए तो ऐसे समझिये-धागे उलझ जायें तो ताकत लगाने की ज़रूरत नहीं, उन्हें खींचने की ज़रूरत नहीं, अगर ताकत से खींचोगे तो गाँठें और ज्यादा मज़बूत हो जायेंगी। सबसे पहले तो उसे सामने रखकर ध्यान से देखो– कहाँ उलझा हुआ है? और जहाँ ज़्यादा उलझा हुआ है वहीं से थोड़ा-थोड़ा ढीला करना शुरू करो।

पहले *अपने आपको अच्छी तरह से परखने की कोशिश करो कि तुम कहाँ उलझे हुए हो और उलझन का कारण क्या है?* फिर वहाँ से धीरे-धीरे छेड़ना शुरू करो, धीरे-धीरे ढीला करना शुरू करोगे, गांठ जहाँ से लगी होती है वहीं से ढीला शुरू करना होता है, जहाँ आप उलझे हुए हैं वहीं से सुलझना होगा; सुलझने के लिए कोई और जगह जाने की ज़रूरत नहीं है, इसी दुनिया में अगर फँसे हो तो यहीं से आपने अपने आपको उबारना है, जहाँ समस्याओं में उलझे हुए हो वहीं व्यवस्था बनानी है, बात बनेगी, निकल आओगे बाहर, लेकिन निराश मन लेकर आप कुछ नहीं कर सकोगे।

आज के दौर में सबसे बड़ी समस्या यही है, निराशा वाली समस्या इसको आप रोग कहते हैं-इस रोग का नाम है-*डिप्रेशन* जब आदमी को पूरी तरह नींद न आए और यदि आए भी तो बीच में खुलती जाए, शाम हो और निराशा बढ़ने लग जाए, ज़्यादा गुस्सा आए, ज़्यादा खीज आए, दिल में निराशा जागे, अकेले में बैठकर या तो मन घबराए या फिर रोना आए, किसी की बात अच्छी न लगे, एकान्त में रहना पसन्द करे, इस अवस्था का नाम है विषाद-ग्रस्त होना, इसको डॉक्टरी भाषा में *डिप्रेशन* कहते हैं। जब यह बढ़ जाता है तो इसका लक्षण है, मैडिकल साईन्स में इसको समझाया है कि जब बहुत बढ़ जाता है और पुराना हो जाता है तब इसकी पहचान है कि सवेरे उठते ही घबराहट शुरू हो जाती है और मन निराशा से भरा रहता है; (लोग सवेरे उठते हैं तो ताज़गी-सी महसूस होती है न) सवेरे से ही जी उचटने लगता है तो इसका मतलब पुराना हो गया है डिप्रेशन। अब पूछेंगे इलाज क्या है?

भगवान कृष्ण ने चिकित्सा की, तो वैसे तो चिकित्सा का माध्यम यही है कि जैसे किसी आदमी को चोट लग जाए तो उसके लिए चिकित्सा करनी बहुत ज़रूरी है, ऐसे ही थोड़ा-सा डॉक्टरी प्रयोग तो करना ही चाहिए, थोड़ी-सी मैडिसन, दवाई, का सहयोग तो लेना ही चाहिए लेकिन उससे बहुत थोड़ा लाभ होगा-दस प्रतिशत डॉक्टर की दवाई काम करेगी, नब्बे प्रतिशत आपको कुछ व्यवस्था बनानी पड़ेगी।

ऐसे आदमी को जो डिप्रेशन में रहता है उसे अकेला नहीं छोड़ना चाहिए; दूसरा, उसको अकेला बैठने नहीं दो; ऐसे आदमी को ज़्यादातर गम भरे, दुःख से भरे हुए गीत सुनने पसन्द आते हैं, रोने वाली चीजें अच्छी लगती हैं, उसको अगर आप हँसी खुशी की बात सुनाओ तो वह सुनना पसन्द नहीं करेगा-तो ऐसे आदमी को आप अकेला नहीं छोड़िये, व्यस्त रखिये, बच्चों में बैठाइए, हँसने की बात करिए, किसी काम में लगा दीजिए, प्रकृति के बीच ले चलिए और उस व्यक्ति को पानी ज़्यादा पीना चाहिए, सलाद खाना चाहिए, सैर अधिक करनी चाहिए और जिन चीज़ों में ज़्यादा रुचि हो, उसकी पसन्द के काम उसे दिए जाने चाहिए और जो आस-पास वाले लोग हैं उन्हें समझना चाहिए कि यह मरीज़ है, रोगी है, इस व्यक्ति के साथ हमदर्दी की ज़रूरत है। तो हमदर्दी करते हुए उसको सम्भाला जा सकता है; इस आधार पर चिकित्सा हो सकती है।

ध्यान, मैडिटेशन, इसके लिए बहुत बड़ी दवाई है, इसीलिए 'ध्यान' ज़रूर सीखना चाहिए।

लेकिन मैं आपको आज के अर्जुन का विषाद योग समझ रहा हूँ लेकिन पाँच हजार दो सौ बाईस वर्ष पहले के अर्जुन की स्थिति भी बता देना चाहूँगा कि वह थोड़ी देरे के लिए विषाद में पहुँच गया था। भगवान कृष्ण ने उसको फिर से जगाया और उसे जगाने को जो प्रारम्भ हुआ, जहाँ से, उसको हम सांख्य-योग के रूप में जानते हैं गीता का जो दूसरा अध्याय है वह सांख्य-योग है और इस सांख्य-योग में शुरुआत की गई है जगाने की और समझ लीजिए कि केवल अर्जुन को ही जगाने की बात नहीं है मानव मात्र को जगाने का रास्ता भगवान कृष्ण ने दिया।

इसीलिए एक बात याद रखना-आत्मा की अमरता को व्यक्ति समझ सके इसीलिए ज़्यादातर लोग मरने वाले व्यक्ति को गीता सुनाने लगते हैं और इतना पवित्र ग्रन्थ है जिसके लिए कहा गया है कि यह पाप हरने वाला, पुण्य देने वाला, जितने प्रकार के दुःख हैं उन्हें दूर करने के लिए गीता का पाठ करना आवश्यक है। तो यह मांगलिक ग्रन्थ है इसीलिए गीता को आप संजीवनी ग्रन्थ कहिए, इसीलिए गीता के प्रति श्रद्धा रखिए, इस मांगलिक ग्रन्थ का पाठ कीजिए।

अध्याय-एक

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा :

हे सजय, जब मेरे पुत्र और पाण्डु के पुत्र धर्म के क्षेत्र पर कुरुक्षेत्र में युद्ध करने की इच्छा से एकत्र हुए, तब उन्होंने क्या किया?

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

संजय ने कहा :

तब राजा दुर्योधन पांडवों की सेना को व्यूहरचना में खड़े देखकर अपने आचार्य के पास पहुँचा और बोला :

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

आचार्य, पाण्डु के पुत्रों की इस विशाल सेना को देखिए, जिसकी व्यूहरचना आपके बुद्धिमान शिष्य धृष्टद्युम्न (द्रुपद के पुत्र) ने की है।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदच महारथः ॥४॥

यहाँ पर बड़े-बड़े धनुर्धारी योद्धा खड़े हैं, जो युद्ध में भीम और अर्जुन के समान हैं—युयुधान, विराट् और महारथी द्रुपद।

धृष्टकेतुचेकितानः काशिराजच वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजच शैब्यच नरपुङ्गवः ॥५॥

धृष्टकेतु, चेकितान और वीर काशिराज, इनके साथ ही पुरुजित्, कुन्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य है।

युधामन्युच विक्रान्त उत्तमौजाच वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाच सर्व एव महारथाः ॥६॥

पराक्रमी, युधामन्यु और वीर उत्तमौजा, सुभद्रा का पुत्र, द्रौपदी के पुत्र, यह सबके सब महारथी हैं।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, अब हमारी सेना में जो प्रमुख नायक हैं, उनको भी जान लीजिए। आपकी सूचना के लिए मैं उनके नाम बताता हूँ।

भवान्भीष्मच कर्णच कृपच समितिज्यः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥

आप, भीष्म और कर्ण और युद्ध में विजयी होने वाला कृप, अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

और भी अनेक योद्धा हैं, जिन्होंने मेरे लिए अपने प्राणों को संकट में डाल दिया है। वे तरह-तरह के शस्त्रों से सज्जित हैं और सबके सब युद्ध में प्रवीण हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

हमारी यह सेना, जिसकी रक्षा भीष्म कर रहे हैं, अपार है, जबकि पांडवों की सेना, जिसकी रक्षा भीम कर रहा है, बहुत सीमित है।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

इसलिए आप सब लोग अपने-अपने स्थानों पर रहते हुए सब मोर्चों पर दृढ़ता से जमकर सब ओर से भीष्म की ही रक्षा करें।

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

उसे आनन्दित करने के लिए वयोवृद्ध कुरु, प्रतापी पितामह, ने सिंह की भांति ज़ोर की गर्जना की ओर अपना शंख बजाया।

ततः शंङ्खश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

उसके बाद शंख, भेरिया, ढोल, नगाड़े और सिंगी बाजे एकाएक बज उठे और उनके कारण बड़े जोर का शोर होने लगा।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंङ्खौ प्रदध्मुतुः ॥१४॥

तब अपने विशाल रथ में, जिसमें सफेद घोड़े जुते हुए थे, बैठे हुए कृष्ण और अर्जुन ने अपने दिव्य शंख बजाए।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

कृष्ण ने अपना पाँचजन्य और अर्जुन ने अपना देवदत्त शंङ्ख बजाया और भयंकर कार्य करने वाले और बहुत खाने वाले भीम ने अपना महान शङ्‌ख पौंड बजाया।

अनन्तविजयं राजाकुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

कुन्ती के पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अपना अनन्तविजय शङ्‌ख बजाया और नकुल तथा सहदेव ने अपने सुघोष और मणिपुष्पक नाम के शंख बजाये।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥

और महान धनुर्धारी काशीराज ने, और महारथी शिखंडी ने, धृष्टद्युम्न और विराट् ने और अजेय सात्यकि ने।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

हे पृथ्वी के स्वामी, द्रुपद ने और द्रौपदी के पुत्रों और महाबाहु अभिमन्यु ने सब ओर अपने-अपने शंख बजाये।

स घोषो धार्त्राष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलोऽभ्यनुनादयन् ॥१९॥

वह तमुल शब्द पृथ्वी और आकाश को गुंजाता हुआ धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदयो को विदीर्ण करने लगा।

अथ व्यस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।

तब अर्जुन ने जिसकी ध्वजा पर हनुमान की मूर्ति अंकित थी, व्यूहरचना में खड़े हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों को देखा और जब शास्त्रास्त्र लगभग चलने शुरू हो गए, तब उसने अपना धनुष उठाया।

अर्जुन उवाच

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥२०॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥

हे पृथ्वी के स्वामी, तब उसने हृषीकेष (कृष्ण) से ये शब्द कहे: हे अच्युत (कृष्ण) मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर खड़ा करो;

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

जिससे मैं इन लोगों को देख सकूँ, जो युद्ध के लिए उत्सुक खड़े हैं और जिनके साथ मुझे इस युद्ध में लड़ना है।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

मैं उन सबको देखना चाहता हूँ, जो यहाँ लड़ने के लिए उद्यत होकर इकट्ठे हुए हैं और जो दुष्ट बुद्धिवाले दुर्योधन का युद्ध में भला करने की इच्छा से आए हैं।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥

हे भारत (धृतराष्ट्र), गुडाकेश (अर्जुन) के ऐसा कहने पर हृषीकेश (कृष्ण) ने उस श्रेष्ठ रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर खड़ा कर दिया।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

उसने भीष्म, द्रोण और सब राजाओं के सम्मुख खड़े होकर कहा: "हे पार्थ (अर्जुन), इन सब इकट्ठे खड़े हुए कुरुओं को देखो।"

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।

वहाँ अर्जुन ने देखा कि उसके पिता, दादा, गुरु, मामा, भाई, पुत्र और पौत्र तथा मित्र भी खड़े हुए थे।

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥२६॥
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।

और उन दोनों सेनाओं में श्वशुर और मित्र भी खड़े थे। जब कुन्ती के पुत्र अर्जुन ने इन सब इष्ट-बन्धुओं को इस प्रकार खड़े देखा तो,

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥२७॥
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।

उसका हृदय दया से भर आया और उसने उदास होकर कहा;

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥२८॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥

मेरे अंग ढीले पड़ रहे हैं। मेरा मुंह सूख रहा है और रोंगटे खड़े हो रहे हैं।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।

गांडीव धनुष मेरे हाथ से फिसला जा रहा है और मेरी सारी त्वचा में जलन हो रही है। मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता और मेरा मन चकरा सा रहा है।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥३०॥
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।

और हे केशव, मुझे अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं। इस युद्ध में अपने सम्बन्धियों को मारने से मुझे कोई भलाई होती दिखाई नहीं पड़ती।

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥३१॥
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।

हे कृष्ण, मुझे विजय नहीं चाहिए और न राज्य चाहिए और न सुख ही चाहिए। हमें राज्य से, सुख-भोग से, यहाँ तक कि जीवित रहकर भी क्या करना है?

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥३२॥
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।

जिनके लिए हम राज्य, भोग और सुख चाहते थे, वे लोग तो अपने प्राणों और धन का मोह त्याग कर यहाँ युद्ध में आ खड़े हुए हैं।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥३३॥
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ।

गुरु, पिता, पुत्र और दादा, मामा, श्वसुर, पौत्र और साले तथा अन्य सम्बन्धी (यहाँ खड़े हैं)।

तकान्न हन्तुमिच्छामि घन्तोऽपि मधुसूदन ॥३४॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ।

तीनों लोकों के राज्य के लिए भी, हे कृष्ण, मैं इन्हें मारने को तैयार नहीं हूँ। फिर भी इस पृथ्वी के राज्य के लिए तो कहना ही क्या। भले ही ये लोग मुझे क्यों न मार डालें।

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनाद्रन ॥३५॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।

हे कृष्ण, धृतराष्ट्र के इन पुत्रों को मारने से हमें क्या सुख प्राप्त हो सकता है? इन दुष्ट लोगों को मारने से हमें केवल पाप ही लगेगा।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्सबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३६॥

इसलिए अपने सम्बन्धी इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारना हमारे लिए उचित नहीं है। हे माधव (कृष्ण), अपने इष्ट-बन्धुओं को मारकर हम किस प्रकार सुखी हो सकते हैं ?

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३७॥

भले ही मन में लोभ भरा होने के कारण ये सब परिवार के विनाश की बुराई और मित्रों के प्रति द्रोह करने के पाप को देख नहीं पा रहे;

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनाद्रन ॥३८॥

परन्तु हमें तो कुल के विनाश के कारण होने वाला दोष भली भाँति दिखाई पड़ रहा है। इसलिए हे जनाद्रन (कृष्ण) हमें इस पाप से दूर रहने की समझ होनी चाहिए।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥३९॥

कुल का विनाश हो जाने पर पुराने चले आ रहे कुल के धर्म अर्थात विधान नष्ट हो जाते हैं और इन धर्मों के नष्ट हो जाने पर सारे परिवार में अधर्म फैल जाता है।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंङ्करः ॥४०॥

और जब अधर्म फैल जाता है, तब हे वार्ष्णेय (कृष्ण), परिवारों की स्त्रियां भ्रष्ट हो जाती हैं। और जब स्त्रियाँ भ्रष्ट हो जाती हैं, तब वर्णसंकर अर्थात् विभिन्न जातियों का मिश्रण, हो जाता है।

संङ्करो नरकायैव कुलघन्‌नां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४१॥

और यह वर्णसंकर सारे परिवार को और उस परिवार को नष्ट करने वाले लोगों को नरक में पहुँचा देता है, क्योंकि उनके पिंजरों अर्थात् पूर्वजों की आत्माएं अन्न और जल से वंचित होकर गिर पड़ती हैं।

दोषैरतैः कुलघन्‌नां वर्णसंङ्क.रकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४२॥

कुल का विनाश करने वाले लोगों के इन दुष्कर्मों के कारण, जिनसे वर्णसंकर अर्थात् जातियों का मिश्रण उत्पन्न होता है, सदा से चले आ रहे जातिधर्म और कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्द्रन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४३॥

हे जनार्द्रन (कृष्ण) हम यह सुनते आये हैं कि जिन लोगों के पारिवारिक धर्म नष्ट हो जाते हैं, उन्हे अवश्य ही नरक में रहना पड़ता है।

अहो बत महत्पापं कुर्तं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४४॥

अरे, हम तो यह बड़ा भारी पाप करने लगे हैं, जो राज्य का आनन्द पाने के लोभ से अपने इष्ट-बन्धुओं को मारने के लिए तैयार हो गए हैं।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणय: ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४५॥

यदि धृतराष्ट्र के पुत्र शस्त्र हाथ में लेकर मुझे मार डालें और मैं बिना शस्त्र उठाए, बिना उनका मुकाबला किए युद्ध में मारा जाऊँ, तो वह मेरे लिए कहीं अधिक भला होगा।

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४६॥

यह कहकर अर्जुन रणभूमि में अपना धनुष-बाण छोड़कर शोक से व्याकुलचित्त होकर अपने रथ में बैठ गया।

दूसरा अध्याय

गीता अमृत
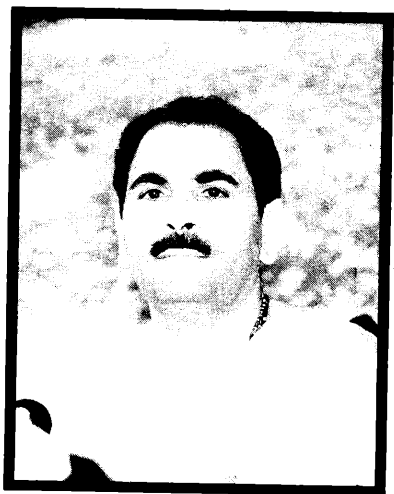
षाद योग से सांख्य योग की ओर आज की प्रवृष्टि है। जब भी मनुष्य अपने जीवन में अपनी परिस्थितियों से, अपने दुर्भाग्य से, अपनी मजबूरियों से, बँध जाये तो निराशा का जन्म होता है; जो वह चाहे वह न मिल पाए, जिसकी कामना करे वह कामनाएं पूरी न हो पाएं, जितना लाभ चाहा वह नहीं मिला, जितना मान चाहा वह प्राप्त नहीं हुआ, जितनी जीत चाही वह जीत न मिली, जितने संयोग की कामना की वह संयोग संयोग नहीं रहा वियोग हो गया-यह परिस्थितियां जब भी मनुष्य के सामने आती हैं निराशा का जन्म होता है।

निराशा हमारे सामर्थ्य को तोड़ती है, निराशा हमारी वीरता को ललकारती है। निराशा जब भी आयेगी हमारी ऊर्जा शक्ति काम नहीं करेगी, निराशा का प्रभाव सदैव हमारी बुद्धि पर होता है, हमारी समझ काम नहीं कर पाती कि क्या करें, क्या न करें। निराशा जब भी आयेगी दिग-भ्रमित करेगी, हम चौराहे पर खड़े हो जायेंगे-हमें यही नहीं समझ आयेगा किधर जाएं-आगे या पीछे, दाँये या बाँये।

अर्जुन की दशा भी ऐसी ही दशा है। निराशा से ग्रस्त अर्जुन तरह-तरह के तर्क देता हुआ भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख तर्कों का एक विषद जाल बिछाता है – युद्ध होगा, वीर मरेंगे, न जाने कितनी महिलाएं विधवा होंगी, समाज की मर्यादाएं टूटेंगी, आने वाली संतानों में विशेषता नहीं रहेगी, वर्णसंकर सन्तानें उत्पन्न होंगी, वर्णाश्रम की मर्यादाएं गिरेंगी, युद्ध भयंकर है, युद्ध न किया जाये तो अच्छा – अनेक प्रकार के तर्क अर्जुन सामने रखता है और यह कहने का प्रयास करता है कि इस रक्त पात को, खून से सने हुए इस सिंहासन को, मैं अपने सिर पर नहीं ढोना चाहता, इस सिंहासन पर बैठना नहीं चाहता। यहाँ तक कहा कि अगर चाहें तो कुरुपुत्र मेरा वध कर दें, मैं वन में भिक्षा माँगकर रहने में भी अपनी संतुष्टी अनुभव करूँगा, युद्ध नहीं चाहता।

यह तात्कालिक प्रभाव था अर्जुन के मन में और व्यक्ति हमेशा ही कभी न कभी जब निराशा के विचार मन में आते हैं अपने कर्त्तव्य के पथ से दूर भागने की कोशिश करता है, जैसी उसकी भावनाएं बन जाती हैं फिर वैसे ही तर्क़ वह देने लगता है।

भगवान कृष्ण उत्तर देने लगे हैं, समझाने लगे हैं, अन्धेरे के बीच ज्ञान का दीपक जलाते हैं, मन के अन्दर भरी हुई निराशाओं में आशाओं की एक चिन्गारी फूँकते हैं, कर्त्तव्य बोध कराते हैं। भगवान ने जो सम्बोधन दिया-

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्ति करमर्जुन।।

हे अर्जुन! कहाँ से तुम्हारे अन्दर यह कश्मल विषम परिस्थिति में उपस्थित हुआ है? *अनार्यजुष्टम्* यह श्रेष्ठ लोगों के योग्य कार्य नहीं है *अस्वर्ग्यम्* यह तुम्हें स्वर्ग की तरफ़ ले जाने वाला कार्य नहीं है, *अकीर्तिकरम* तुम्हारी कीर्ति को मिटाने वाला कार्य है यह।

भगवान कृष्ण ने कहा कि यह कार्य न तो तुम्हें स्वर्ग में ले जायेगा और न इससे तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी और यह तुम श्रेष्ठ आर्य व्यक्ति के योग्य कार्य नहीं है क्योंकि तुम्हें कायर कहा जायेगा। युद्ध की भूमि में पहुँचने के बाद भी जो सेनाओं को देखकर भागने लगा है, पूरा समाज तुम्हारे साथ इस समय तैयार खड़ा है, सबकी आशायें टिकी हुई हैं कि तुम जाओ और अन्धेरे के बीच वीरता का चिराग़ जलाओ, जिससे दुष्ट शक्तियाँ जो सिर उठाकर खड़ी हुई हैं वह दबें और आप लोग जानते हैं कि किसान अगर अपने खेत में महत्त्वपूर्ण पौधों को बढ़ने के लिए आस-पास खड़ी हुई खरपतवार और घास-फूस को उखाड़कर नहीं फेंकता, वह घास जिसकी कोई औक़ात नहीं होती, वह महत्त्वपूर्ण पौधों को दबा ले जाती है, फिर फसल नहीं हो पाती। माली को भी तराशना पड़ता है अपने पौधों को।

इसीलिए जीवन में यह महत्त्वपूर्ण चीज़ है-कहीं न कहीं हमें संघर्ष के लिए उद्वित होना पड़ता है क्योंकि जीवन अपने आप में एक संग्राम है, उससे भागा नहीं जा सकता और जो भी भागने की कोशिश करता रहा-इन्सान किसी से भी भागे अपने आपे से कभी भी नहीं भाग सकता-थोड़ी देर के लिए सही, आप अपने आप को शांत कर सकते हो लेकिन अन्दर से फिर सवाल उठेंगे क्योंकि मन के अन्दर संकल्प और विकल्प का युद्ध है।

शरीर में रोग और स्वास्थ्यवर्धक शक्तियों की लड़ाई लगातार चल रही है और निरन्तर आप देखते हैं अन्धेरे और प्रकाश के बीच लड़ाई है। जीवन में आप देखते हैं कि आप पाना चाहते हैं लेकिन हानि साथ खड़ी होती है; थोड़ा सा मान पाने के लिए न जाने कितने अपमान के काँटों के बीच से निकलकर मान की तरफ जाना पड़ता है, थोड़ी-सी सफलता के पीछे न जाने कितनी बार हार करके आदमी वहाँ पहुँचता है।

संघर्ष कहीं खत्म नहीं होता। जब तक सांस का सफर जारी रहता है तब तक वह संघर्ष भी साथ-साथ चलता रहता है, इससे बचा नहीं जा सकता, इसमें उतरना भी पड़ता है और जिसमें जितनी ज़्यादा जीवनी-शक्ति होती है वही ठहरता है, कमज़ोर को दबना पड़ेगा, शक्तिशाली और योग्य उभरेगा, इसीलिए अपने आप को शक्तिवान बनाना चाहिए, अपने सामने की चुनौतियों का सामना करने के लिए अपने को मज़बूत करना चाहिए।

परमात्मा ने हर किसी मनुष्य के अन्दर एक अलग तरह की शक्ति दी है। बहुत दबने के बाद व्यक्ति के अन्दर उसकी सारी ऊर्जा शक्ति एक साथ संग्रहित होती है और विस्फोट होता है। वह विस्फोट विरोध के रूप में उभरता है सामने।

रावण की शक्तियाँ बहुत थीं, कोई भी हिम्मत नहीं कर पा रहा था कि उसके सामने कुछ कह सके, और कोई नहीं उसके सामने आया तो कम से कम उसका भाई उसके सामने आ गया।

विभीषण से भरे दरबार में कहा कि यह कार्य आपका आपको कीर्ति देने वाला नहीं है, पितरों को भी कष्ट देने वाला है और अगर इस समय आप अपने आपको नहीं समझा पाए क्योंकि आपके आस-पास चाटूकार लोग आपको समझाने में और आपकी तारीफ करने में लगे हुए हैं, केवल मैं ही ऐसा हूँ जो सच को सच कह रहा हूँ बल्कि सच कहने की बात भी इतनी नहीं है जितनी कि आपका हित और आपके प्रति प्रेम मुझे मजबूर करता है कि मैं आपके सामने खड़ा होकर कहूँ।

विभीषण ने लात खाई रावण की, भरे दरबार से उसको निकाला गया, देश निकाला तक हो गया लेकिन एक बार सब लोगों को झिंझोड़ कर उसने मजबूर तो कर दिया कि रावण के द्वारा उठाया गया कदम अच्छा नहीं है।

दुर्योधन के पक्ष में भी विकर्ण एक ऐसा ही भाई था दुर्योधन को जिसने ललकारा था और उसे कहा था कि दुर्योधन, विनाश के बीज बो रहे हो तुम, यह फसल बोना आसान है लेकिन इसका फल काटने में बड़ी मुश्किल पड़ेगी, यह फसल तुम काट नहीं पाओगे।

तो इतनी शक्ति अपने अन्दर होनी चाहिए कि अन्याय का प्रतिकार कर सको। अगर आप ब्राह्मण वृत्ति के व्यक्ति हैं, ज्ञान की दिशा में जुड़े हुए हैं, तो अज्ञान का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। और अगर आप बलशाली हैं, क्षत्रिय स्वभाव के व्यक्ति हैं, तो अन्याय का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए औरँ अगर आप वणिक वृत्ति वाले व्यक्ति हैं, कमाने का काम करते हैं, तो अभाव से लड़ने को कोशिश करो और अगर आप चौथे वर्ग में आते हैं, तो समाज के आलस्य से लड़ो।

कुछ लोग लापरवाही करते हैं, आप आगे आ करके समाज का उत्थान कीजिए। अज्ञान से हमारी लड़ाई होनी चाहिए, अन्याय से हमारी लड़ाई होनी चाहिए, अभाव से हमारी लड़ाई होनी चाहिए, आलस्य से हमारी लड़ाई होनी चाहिए, हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिए।

इसीलिए भगवान कृष्ण ने कहा –

क्लेब्यम् मा स्मः गमः पार्थ नैतत्त्वरयुपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोतिष्ठ परन्तपः ।।

शत्रुओं को दबा देने वाले परम्तप, *क्लेब्यं मा स्मः* तुम्हारे अन्दर यह क्लैब्यं, यह कायरता कहाँ से आ गयी, नपुंसकता कहाँ से आ गई? अपने स्वरूप को पहचानो; *क्षुद्रं हृदय दौबल्यं* यह तुम्हारे हृदय में जो क्षुद्रता आई है, दुर्बलता आई है, छोटापन आया है, जो हृदय की तुम्हारी कमज़ोरी आई है, उसको छोड़कर हे परंतप! हे वीर उठो, खड़े हो। बड़ा प्यारा सम्बोधन है।

रामायण में हनुमान जी को जगाया जाता है। लंका भेजने के लिए उत्सुक सभी लोग हनुमान की प्रशस्ति में शब्द कहते हैं –

हे हनुमान, अग्नि ने तुम्हारे अन्दर तेज दिया है, सूरज जैसी दीप्ति तुम्हारे अन्दर है, धरती का धैर्य तुम्हारे अन्दर है और जल की शीतलता तुम्हारे अन्दर है, पवन का वेग और गति तुम्हारे अन्दर है। तुम साधारण नहीं हो, समस्त देवी-देवताओं की शक्तियाँ तुम्हारे साथ हैं, अपने स्वरूप को पहचानो।

हे भारतिनन्दन, जागो, क्योंकि इस समय तुम्हारी आवश्यकता है। बाद में तुम्हारा इतिहास संसार को सदैव आनन्दित करता रहेगा, यह क्षण हैं जागने के।

और जैसे-जैसे कहा गया शक्तियाँ बढ़ती चली गयीं, हुनमान अपने स्वरूप में उपस्थित हो गए; लगायी छलांग और पार कर गए समुद्र को।

देखा जाए तो हर जीव के अन्दर शक्तियाँ सोयी पड़ी हैं, उसे कोई जगाने वाला चाहिए और फिर भव सागर पार करना कोई कठिन नहीं है-एक छलांग में आप पार कर जाओगे, बस एक बार जागने की ज़रूरत है। अपने स्वरूप को पहचानने की आवश्यकता है, फिर तो छलांग लगा जाओगे।

भगवान कृष्ण ने कहा – *'उतिष्ठ पर तप:'* – हे परम तप महान तपस्वी, उठ जाओ। खड़े हो जाओ।

यही, इसी तरह का उद्बोधन, कठोपनिषद् में यम ने नचिकेता को दिया था – *उतिष्ठत: जाग्रत: प्राप्य वसन् निबोधत*

उठो, जागो, प्राप्त करो जो तुम्हारे लिए प्राप्त करर्णीय है।

शुरस्य धारा निशिधादुरतया:

यह जीवन छुरे की धार है, इस पर बड़ा सम्भल कर चलना पड़ता है। इसमें आलस्य का कोई काम नहीं है, इसमें बड़ी कर्मठता की आवश्यकता है।

जहाँ भी आप कोई प्यारा उद्बोधन देखें वहाँ एक बात ज़रूर कही जायेगी-उठो, जागो, प्राप्त करो, जिसके लिए तुम संसार में आए हो।

वेदों को पढ़िये वहाँ, भी उद्बोधन है –

यो जागार तमच: कामयन्ते या जागार तमु सामानि यन्ति

संसार का ज्ञान उसी को लाभ देगा, जो जाग गया है जिसने जागृत होने की कोशिश की है उसी के अन्दर सौम्यता, साम का संगीत पैदा हो जाता है, वही महानता को प्राप्त होगा, पहली कोशिश जागने की होनी चाहिए।

इसी तरह का उपदेश आप एतरीय ब्राह्मण में-हमारे जो पुराने ग्रन्थ हैं चार वेद, चार उपवेद, चार उपवेद के बाद चार ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं और इन ग्रन्थों तक पहुँचना आसान नहीं है, बहुत गहराई और बड़ी विद्वता चाहिए। ब्राह्मण ग्रन्थों में जितना सुन्दर उपदेश है आगे चलकर वही प्रकट हुआ-आरण्यक, आरण्यकों में से कुछ भाग चुन-चुन कर उपनिषदों में ले जाया गया। ज्ञान के महान ग्रन्थ हैं वह वही एक उपदेश है –

इन्द्र रोहिताश्व को उपदेश देते हुए कहते हैं –

कलिः शयानो भवति

सजिहानस्तु द्वापरः उत्तिष्ठन् त्रेता भवति,

कृतं वै सम्पद्यते चरन्

अगर तुम आलसी, लापरवाह होकर, कर्त्तव्य से विमुख होकर सो गये हो तुम्हारा कलयुग शुरू हो गया है। *संजिहानहस्तु द्वापरः* – और अगर तुमने थोड़ा-थोड़ा हिलना डुलना शुरू कर दिया कि नहीं अब मुझे उठना चाहिए, सोचना शुरू कर दिया – बहुत हो गया जो अब तक बीता है, यह जीवन जैसा-जैसा अब तक बीता वह ठीक नहीं बीत पाया, मैं इन उलझनों में उलझने के लिए नहीं आया, आसक्ति, मोह, ममता की दलदल से बाहर निकलना ही होगा अगर मैं कुछ होना चाहता हूँ – यह जो थोड़ा-थोड़ा मन में विचार जागने लगा और आप करवट बदलने लगे हो, हिलने-डुलने लगे हो – कहा बस इतने से ही समझ लेना कि कलयुग भाग गया, द्वापर शुरू हो गया।

'उतिष्ठन त्रेता भवति' उठके बैठ गये हो, मन में संकल्प जगा लिया है, आज से सब नियम बदल गये, आप ने मन में सोच लिया अब हर दिन ठीक ढंग से व्यतीत करूँगा, निरर्थक समय नहीं जायेगा, बेकार की बातों में अपने समय को गवाँऊगा नहीं – जो समय धन कमाने का है धन कमाने के लिए लगाऊँगा, जो सेहत कमाने का है उसमें सेहत कमाऊँगा, जो स्वास्थ्य के लिए मैंने समय रखा है उसमें स्वास्थ्य को ही ध्यान में रखूँगा, भोजन के लिए बैठूँगा तो पहले यह सोचूँगा कि वह स्वास्थ्य वर्धक है या स्वाद वर्धक है? स्वाद नहीं चाहिए; अगर ज़िन्दगी का सही स्वाद लेना है तो स्वास्थ्य वर्धक भोजन को ग्रहण करूँगा जिससे कि पूरा स्वाद ले सकूँ, जीभ को ही स्वाद में क्यों रखूँ। अब यह जो मन में विचार आने लगा है तो समझिए अब आप उठकर बैठ गए तो त्रेतायुग शुरू हो गया है।

'कृतं वै सम्पद्यते चरन्' और उठकर के जैसे ही अपने काम में लग गए हैं तो कहते हैं कलियुग, द्वापर, त्रैता सब भाग गया और सतयुग तुम्हारा शुरू हो गया इसलिए उस सतयुग की ओर प्रवेश करो क्योंकि जागना ज़रूरी है।

भगवान कृष्ण इसलिए कह रहे हैं –

उतिष्ठ=उठो, समझना ज़रूरी है, उठना ज़रूरी है, सम्भलना ज़रूरी है।

उद्बोधन बड़ा महत्व रखता है। हम किसी को किस तरह से पुकारते हैं।

अपने बच्चों को आप जगाते समय कैसे बोलते हैं? माताएं पहले सिहराने बैठकर बच्चे के सिर पर हाथ फेरती रहतीं थी, प्यार से कह रही होती थी, 'उठो बेटा,' जैसे-जैसे थोड़ा सा हिलने-डुलने के साथ बोलने के लिए तैयार हुआ तो अपने आप ही अभिवादन के शब्द बोल दिये, 'नमस्ते कहो बेटा' या 'राम-राम कहो बेटा' वह जगाना और जैसे प्यार से सिर पर हाथ फेरकर सहलाया, प्रभात का प्रारम्भ बहुत सुन्दर ढंग से होगा, वह सम्बोधन प्रेम को जन्म देगा।

हमारा सम्बोधन, हम जिसे भी पुकारते हैं, जिस ढंग से पुकारते हैं, उसका बड़ा महत्व होता है।

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को 'परंतप' कहकर पुकारा।

आततायी जिसके नाम से थराते हैं, जो तपा दे शत्रुओं को और जिसने अपने जीवन को तपाकर निख़ारा हो क्योंकि अर्जुन अनेक प्रकार की तपस्या करके आया था, लेकिन जैसे सूरज के सामने बादल आ जाए तो थोड़ी देर के लिए तो लगता है कि जैसे सूरज है ही नहीं, निराशा का बादल भी अर्जुन के मन में थोड़ी देर के लिए आया, भगवान कृष्ण उस बादल को हटा देना चाहते हैं।

आपके अन्दर का कृष्ण भी रोज़ यह बोलता है, कब तक ऐसे सोते रहोगे। कब तक यह खुमारी तुम्हारे अन्दर रहेगी? कब तक तुम अपनी परिस्थितियों का नाम ले लेकर अपने आपको बाँधते रहोगे? कोई बड़े से बड़ा हाथ तुम्हें ऊँचा उठाने के लिए नहीं आयेगा, तुम्हें खुद ही कोशिश करनी होगी। आपका कृष्ण आपको रोज़ बोलता है लेकिन हम अपने अन्दर से उस आवाज़ को सुनते नहीं, दबा देते हैं और अगर कोई हमें खरी बात कहे भी सही तो हम उधर सुनना नहीं चाहते, गुस्सा करते हैं, अच्छा लगता है कोई चाटुकारिता की भाषा बोले, राग दरबारी गाए, लोग उसे पसन्द करना चाहते हैं और वह अपने आपको सुलाने की तरकीब है, उस तरकीब से बाहर निकलना चाहिए।

किसी वीर व्यक्ति को अग़र नपुंसक या नामर्द कहकर बोल दिया जाए, एक बार तो उसके तार झिनझिना जाते हैं; भगवान कृष्ण ने भी ऐसा ही

कहा-नपुंसकता को प्राप्त मत हो जाओ, नामर्दी की तरफ़ मत जाओ; वीर हो, वीरता की बात करो, क़ायरता की बात नहीं होनी चाहिए।

कभी-कभी हिलाना पड़ता है, झिंझोड़ना पड़ता है, झटका देना पड़ता है; बल्कि मैं तो कहूँगा कि आप जितना दोष दूसरे के निकालने में अपनी शक्ति लगाते हैं, दूसरों को बुरा भला करने में अपनी सारी ऊर्जा शक्ति गँवाते हैं, कभी कभी आप अपने को फटकार लिया करें, अपने को बुरा भला कह लिया करें, थोड़ा डांट लिया करें, अपने साथ लड़ लिया करें, दूसरों के साथ लड़ने में वह बात नहीं मिलने वाली जो अपने साथ लड़ने में आनन्द आता है, खूब अच्छी तरह से डाँट-फटकार करें, बाद में पुचकारना भी ज़रूरी है, पीठ थपथपाना भी ज़रूरी हैं, समझाना भी ज़रूरी हैं – चलो जो हो गया ठीक है अब वह सब नहीं होना चाहिए, एक नई ज़िन्दगी, नया दिन, नया प्रारम्भ, परमात्मा तो हर दिन हमारे सामने नया रूप लाता है, इसलिए हमारी कोशिश होनी चाहिए रोज़ ही नए स्वरूप की तरफ़ हम चल सकें।

भगवान कृष्ण आगे फिर समझाने लगे-तुम जिनका शोक मनाने लगे हो उन सबका शोक नहीं करो अर्जुन, – यह नहीं रहेंगे, फलाँ व्यक्ति मिट जायेगा, यह सब छोड़ो क्योंकि, संसार में परिवर्तन तो होता है।

देखा जाए तो हर व्यक्ति को अग़र कोई मारता है तो उसका कर्म ही उसको चलाता है और कर्म ही उसको मारता है। विचित्र चीज़ है यह।

कहा जाता है न-मृत्यु किसी स्थान पर तप कर रही थी। देवता लोग गए, सबने कहा-आप जाकर इन्सान के सिर पर बैठिए क्योंकि धरती पर इन्सान को पैदा किया जा रहा है, उसको ज़िन्दगी दी जा रही है तो उसको वापिस भेजने का काम तो तुम्हें ही करना है, तुम चलो।

मृत्यु नाम की देवी तैयार नहीं हुई। उसने कहा कि मैं संसार में जाकर लोगों को मारूँ और दूसरों की बद्दुआयें लूँ, यह अच्छा नहीं है।

देवताओं ने समझाया कि तुम्हारा नाम मृत्यु ज़रूर है लेकिन मृत्यु तुम वास्तव में मृत्यु नहीं हो केवल परिर्वतन हो। एक द्वार संसार में आने का है और दूसरा द्वार जाने का है, जो जाने का द्वार है वहाँ तुम हो। तुम बदलाव हो, परिवर्तन हो, तुम निमन्त्रण हो कि पुराना जाए और नए का स्वागत हो, तुम वह

नींद हो जो थके हारे को अपनी गोद में लेकर सुलाओगी, फिर जागने के लिए, कि फिर से वह जागे।

मृत्यु ने कहा – नहीं, यह सब बातें बहुत अच्छी लगती हैं, फिर भी मैं नहीं साथ जाने को तैयार नहीं।

देवताओं ने भगवान से प्रार्थना की।

भगवान ने मृत्यु से कहा कि अच्छा ठीक है तुम्हारे लिए कुछ और सहायक लोग भेजे जा रहे हैं, आदमी उनसे मरेगा और तुम्हारा काम तो यह होगा कि जब वह कहे कि मैं थक गया हूँ तो गोद में लेने के लिए तुम पहुँच जाना।

तो भगवान ने मृत्यु को बताया कि तुम्हारे सहायक कौन-कौन लोग होंगे-कहा *चिन्ता* तुम्हारी बहुत अच्छी सहायिका रहेगी; *निराशा*, वह भी तुम्हारे सहयोग में आयेगी, *क्रोध* को भेजा जायेगा, *लालच* को भेजा जायेगा, *अहंकार* को भेजा जायेगा, व्यक्ति को तोड़ने का कार्य *वासनायें* करेंगी, वह सब भेजी जायेंगी। अनेक शक्तियाँ लाकर खड़ी कर दीं गईं।

साथ में यह भी कहा कि जब यह इन्सान दुनिया में जायेगा और उसकी मृत्यु उसके लिए निश्चित की जायेगी कि कब मौत होगी, उससे पहले ही, जन्म के साथ-साथ यह सारी शक्तियाँ उसके शरीर में डाल दी जायेंगी। मारने वाली ताकतें भी उसके अन्दर हैं उसको जलाने वाली ताकतें भी उसके अन्दर हैं।

मृत्यु ने पूछा "यह शक्तियाँ इन्सान को कब मारेंगी?"

सब देवता एक साथ बोल बैठे-जिस दिन कोई भी मनुष्य अपने नारायण से विमुख होकर, नारायण को कुछ नहीं मानेगा और संसार को सब कुछ मान लेगा और इन वासनाओं की गिरफ्त में आकर खड़ा हो जायेगा तब यह सारी शक्तियाँ उसकी ऊर्जा शक्ति को खत्म करके उसको मारने का प्रयास करेंगी और मृत्यु तेरा कार्य तो सबसे बाद का है, जब व्यक्ति पूरी तरह थक जाए और कहे कि अब जिया नहीं जाता, रोग बहुत हो गए, कष्ट क्लेश बहुत हो गया, बहुत-बहुत माँगने के बाद तुम जाओगी और तब तुम्हारा काम कल्याण करने का ही होगा।

सार में समझाया गया कि मनुष्य को मारने वाले तुम नहीं हो, मनुष्य मारेगा तो स्वयं को और जलायेगा तो भी अपने आपको खुद जलायेगा। तो हर एक के अन्दर उसको मारने वाली चीज़ें मौजूद हैं।

दूसरे शब्दों में कहा जाए-दुर्योधन ने अपने सिर पर पाप इतना भर लिया कि वह पाप उसको मारने के लिए स्वयं तत्पर हो गया; अर्जुन को तो केवल माध्यम बनने का ही कार्य मिला, दण्डित होना था उसे, दुर्योधन को दण्डित होना था और अर्जुन को केवल बीच में माध्यम बनाया गया। भगवान कृष्ण बार-बार यही कह रहे हैं कि तुम माध्यम बनो लेकिन यह मानकर चलो कि परिवर्तन है और यह भी मानकर चलना कि जो मरेगा वह मरेगा भी नहीं, फिर आयेगा लेकिन मरेगा तो इस रूप में वह भी कर्म का फल भोगेगा और मरेगा इसीलिए भी कि और कर्मों के फल इसने भोगने हैं। आगे समझते हैं –

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तर प्राप्ति र्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।

शरीर में जैसे कई अवस्थायें आती हैं-बचपना, कुमारावस्था, यौवनावस्था, बुढ़ापा और यह परिर्वतन, यह अवस्थायें आती हैं और यह अवस्थायें आकर चली जाती हैं। भगवान कहते हैं ऐसा ही एक और परिवर्तन है: देहान्तर प्राप्ति– देह के बाद दूसरी देह की प्राप्ति, इसका नाम मौत है।

बड़ा प्यारा श्लोक है यह। कहा है कि जैसे शरीर में और परिवर्तन मनुष्य सदा ही देखता है – कौन से परिवर्तन? हमें बचपन मिला और एक दिन वह चला गया, उसकी जगह पर कुमारावस्था आ गई, किशोरावस्था आ गई, तो कोई रोया तो नहीं कि मेरा बचपन चला गया, खुश हो गया है कि हम बड़े हुए और इस परिवर्तन को हमने सहज रूप में लिया; फिर परिवर्तन आया-किशोरावस्था यौवन में तब्दील हो गई उसको भी हमने सहज रूप में लिया, बल्कि खुश होते हुए चले गए, हर परिवर्तन से हम प्रसन्न हैं और फिर यौवन भी गया – वार्धक्य-बुढ़ापा आ गया; जो बीत गया उसकी स्मृतियां सामने हैं लेकिन अपने बुढ़ापे में भी व्यक्ति आकर ठहर गया, मान गया है कि हम बड़े हो गए, सहज रूप में परिवर्तन आ रहा है।

भगवान कहते हैं कि बस ऐसा ही एक परिवर्तन और होगा – इस देह से दूसरे देह की प्राप्ति क्योंकि अब तक भी ऐसा ही हुआ है, बचपन से किशोरावस्था की प्राप्ति हुई, किशोरावस्था से यौवन की प्राप्ति हुई है, यौवन से बुढ़ापे की प्राप्ति हुई है और बुढ़ापे से फिर बचपन की प्राप्ति हुई है; इसको देखकर घबराओ नहीं, इस परिवर्तन को स्वीकार करो।

पुराने पीले पत्ते झडेंगे तभी नई कोपलें फूटेंगी।

बुढ़ापा शरीर में आ जाए, मुख में दाँत नहीं रहते, आँखों में मैल आ जाता है, मुँह से लाह टपकने लगती है, खाना खाने बैठा व्यक्ति कपड़ों पर सब्जियाँ गिर गई, हाथ काँप रहा है, बोलना कुछ चाहता है मुँह से कुछ निकल रहा है, स्मृति धूमिल हो गई, याद नहीं रहता और जो याद रहता है उसे बार-बार बोलता जाता है आदमी-एक ही सवाल को हज़ार बार दोहरा रहा है, सब झुंझला रहे हैं, शरीर का आकर्षण चला गया जैसे कोई फल पककर, गलकर एकदम पिलपिला हो जाए ऐसा शरीर हो गया; खड़ा होना चाहता है ठीक से खड़ा नहीं हुआ जाता, हाथ काँपते हैं, जीभ लड़खड़ाती है, पाचन शक्ति कमज़ोर हो गई, हज़्म करने की ताकत, पाचन शक्ति गई, अब हर समय घबराहट होती है – क्या खायें और क्या न खायें और चलते समय भी थोड़ा-सा ऊँचा नीचा दिखाई दे जाये कितनी घबराहट होती है, पाँव रखूँ, ऊँचाई पर पाँव रख दिया तो फिर आगे नीचा है तो फिर घबराहट कि नीचे रखने से कहीं गिर तो नहीं जाऊँगा और अगर गिर गया तो एक बार फिर हड्डी टूट गई तो फिर किसी ने सेवा करनी नहीं है, पड़े रह जायेंगे ऐसे ही और शरीर इतना शिथिल हो गया है कि हर समय दवा की ज़रूरत है। अब दवा चाहिए, समय पर कोई पास आकर खड़ा हो जाए इसीलिए अपनों की पचास गालियाँ सुनकर के भी चुपचाप बैठे हुए हैं, कहीं और जा नहीं सकते, अपनों को तरस आयेगा न, दवाई तो दे ही जायेंगे; ऐसी स्थितियाँ शरीर की, अब माना शरीर बीमारियों का घर है, बुढ़ापा है न –

जो आकर चली गई वह जवानी देखी
जो आकर न गया वह बुढ़ापा देखा

वेदों में ऐसा कहा गया है कि देखो आश्चर्य-बूढ़ा, जवान से लड़ा और जवान को खाकर बैठ गया बूढ़ा (मन्त्र का अनुवाद है यह) जिसका अर्थ है कि जवानी से बुढ़ापा लड़ बैठा और कमाल यह है कि जवानी हार मान बैठ गयी, हर किसी के ऊपर बुढ़ापा होता है तो उसकी जवानी मिट जाती है और बुढ़ापा मज़बूत रहता है – *जो आकर चली गई वह जवानी देखी*- आई और गई – लेकिन *जो आकर न गया वो बुढ़ापा देखा* बुढ़ापा ऐसे जाता ही नहीं लेकर जाता है साथ-साथ। यह परिवर्तन का आखिरी पढ़ाव है-बुढ़ापा और

कितनी आश्चर्यजनक बात है – सहज स्वाभाविक रूप भी धीरे-धीरे आकर खड़ा हो जाता है।

बच्चे खेल रहे हैं, बूढ़ा आदमी कमर झुकाकर जा रहा है, जितना लम्बा था बेचारा उतनी ही ज़्यादा कमर झुकी हुई और कमर झुकाकर के जा रहा है बूढ़ा आदमी, बच्चे खेल रहे हैं; एक बच्चे ने पूछा "क्यों बाबा! तुम्हारा कुछ खो गया है क्या? बड़े ध्यान से रास्ते में खोजते हुए जा रहे हो, ध्यान से देखते हुए जा रहे हो, कुछ खो गया है क्या?"

बूढ़ा आदमी याद करता है मखोल करने की आदत हमारी भी थी, आज इसकी आदत है; वक़्त बदल गये; बच्चों ने फिर कहा, "बाबा, क्या तुम्हारा कोई रुपया खो गया?" बूढ़ा बाबा खाँसता हुआ रुका और हाँफते हुए बोला, "हाँ, खो गया है।"

"क्या खोया है? इस गली में इस सड़क में क्या खो गया है आपका?"

बूढ़ा कहता है – "बेटा, यहाँ घूमते-घूमते मेरी जवानी खो गई है, उसी को ढूँढता फिर रहा हूँ।"

थोड़ा और आगे गया था, कुछ बच्चे खेल रहे थे तीर कमान लेकर;

बच्चों ने मज़ाक करते हुए कहा – "बाबा, यह कमान कितने में खरीदी है?" (कमर कमान की तरह झुकी हुई थी न,) "बाबा, कमान कितने में खरीदी है?" बूढ़ा मुस्कुराता है, कहता है-बेटा, यह मुफ्त में मिली है, मुझे भी मिली है तो तुझे भी मिलेगी, इससे तू बच नहीं सकता।" यह दौर आयेगा, यह स्थितियाँ आयेंगी – वह घड़ी आयेगी जरूर।

किसी दिन देख लेना तुझे ऐसी नींद आयेगी ।
तू सोया जग न पाया तुझे दुनिया जगायेगी ।।

भगवान कृष्ण इसे समझा रहे हैं-जैसे शरीर में और परिवर्तन आये, वैसा ही एक परिवर्तन और तुम्हारे जीवन में आयेगा, सब किसी के जीवन में आयेगा-*देहान्तर प्राप्ति;* बड़ा प्यारा शब्द है यह-इस देह के बाद की देह प्राप्ति या इसके बाद की उपलब्धि, शरीर से शरीर की यात्रा या शरीरों के चक्र से या सफ़र से निकलकर शरीर बनाने वाले परमात्मा के पास जाकर बैठ जाना, मुक्त हो जाना लेकिन इसी द्वार से होकर जाना पड़ेगा।

भगवान कृष्ण समझाना चाहते हैं कि इस रहने वाले तत्व को भी समझो, और जो नहीं रहेगा उसे भी याद करो। इसीलिए कहा जाता है न –

जो व्यथाऐं प्रेरणा दें उन व्यथाओं को दुलारो ।
जूझकर कठिनाइयों से रंग जीवन का निखारो ।।
वृक्ष कट-कट कर बढ़ा है दीप बुझ-बुझ कर जला है ।
मृत्यु से जीवन मिले तो आरती उसकी उतारो।।

अग़र कोई पीड़ा तुम्हें नई प्रेरणा देती हो उस पीड़ा को, उस ठोकर को याद रखना किसी सबक़ की तरह क्योंकि वह नया जन्म देती है, नयी ज़िन्दगी देती है।

महाराष्ट्र के लोगों में एक बात देखी है, आपस में बातचीत करते हुए या जाते हुए कहते हैं-"अच्छा, मैं जाकर आता हूँ;" ऐसा नहीं कहते "मैं जाता हूँ" उत्तर भारत, इधर वाले लोग , ज़्यादातर कहते हैं "अच्छा, मैं जाता हूँ", "अच्छा मैं चलता हूँ" उधर वाले लोग ऐसा नहीं कहते हैं। वह कहते हैं "अच्छा, मैं जाकर आता हूँ" और शब्द बड़ा प्यारा-वास्तव व्यवहार में आना चाहिए-जाऊँगा, जाने के लिए नहीं, जा रहा हूँ आने के लिए।

इसीलिए हमारे यहाँ किसी के मरने के बाद शब्द प्रचलित है-"चल बसा"-यहाँ से चला और कहीं जाकर बसा; यहाँ से उजड़ कर गया है तो कहीं न कहीं आबाद होगा ज़रूर, इसीलिए लोग कहते हैं "चल बसा" और अगर कह दिया 'देहान्त' मतलब क्या हुआ – देह का अन्त हुआ है, जाने वाले का अन्त नहीं हुआ। बहुत प्यारे शब्द हैं यह-उनको हम समझने की कोशिश नहीं करते हैं।

शरीर का अन्त है, आत्मा का नहीं। भगवान समझा रहे हैं –

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टो ऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदार्शिभिः ।।

जो सत् है वह सदा रहेगा, जो असत्य है, मिटने वाला है, अनित्य है वह मिटेगा। जो सच है, सदा रहने वाला है वह पहले भी था, आज भी है, आगे भी रहेगा, और जो मिटने वाला है वह पहले भी मिटा था, आज मिटा तो कल फिर मिटेगा, कल मिटा तो आगे फिर मिटेगा-वह मिलना और बिछुड़ना चलता रहेगा; शरीर मिलेंगे और बिछुड़ेंगे। कैसे?

वांसासि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोपराजि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

जिस प्रकार से जीर्ण वस्त्र हम लोग त्यागकर नवीन वस्त्र धारण कर लेते हैं, पुराने कपड़ों को त्यागकर हम खुश होते हैं और नए को पाकर हम प्रसन्न हो जाते हैं और जो पुराना फेंक देते हैं तो फिर कभी हमारा ध्यान उस तरफ जाता ही नहीं-जिसको फेंक दिया, त्याग दिया, तो त्याग ही दिया।

इसीलिए ऐसा होता है एक शरीर त्यागने के बाद आत्मा तो दूसरे शरीर में चली जाती है; जो शरीर पड़ा रह गया लोग भी उसको सुरक्षित नहीं रखते, जहाँ घर पर शरीर रखा गया था, वहाँ लोग थोड़ा-सा अनाज उसके ऊपर दीपक रख देते हैं; समझाते हैं कि जाने वाला गया ज़रूर परन्तु थोड़ा परिवर्तन हुआ है, लेकिन वह एक प्रकाश बनकर अभी भी हमारे सामने विद्यमान है इस दीपशिखा की तरह; जो दिया जलाया जाता है उसकी जो लपट उठ रही है उसकी तरफ ध्यान दिलाया जाता है कि ऐसे वह प्रकाश बन गया है, गया नहीं है।

वैसे भी यह होता है कि जिस घर में कोई व्यक्ति चला जाता है उस घर में बड़ी विचित्र चीज़ होने लगती है, जाने वाले के शरीर को लोग ले जाकर शमशान भूमि में आग में जला करके वह आ जायेंगे लेकिन घर में फिर भी ऐसा लगता है कि जैसे वह कहीं गया हुआ है, आयेगा ज़रूर। बिल्कुल ऐसा ही लगता है कि जैसे किसी शहर में, किसी गाँव में, बाहर कहीं गाँव में गए हैं, लौट के आयेगे

अब लौट के आयेंगे यह बात तो सच है लेकिन इस घर में आयेंगे या नहीं आयेंगे, कहीं और आयेंगे, कहाँ जाकर के शरीर धारण करेंगे, यह नहीं कहा जा सकता –

पत्ते टूटे पेड़ से ले गयी पवन उड़ाए

टूट गए पत्ते पेड़ से, हवा ले गई उड़ा करके, कहाँ जाकर बिख़ेर दिया? जो इस डाल की शोभा बने हुए थे वह सब पत्ते बिख़रकर दूर-दूर जाकर, गिर गए –

पत्ते टूटे पेड़ से ले गयी पवन उड़ाए ।
अब के बिछड़े ना मिलें दूर पड़ेंगे जाए ।।

अब बिछड़ गए तो फिर दोबारा आकर नहीं मिलने वाले जो गया वह गया, उस परिवार में नहीं लौटेंगे, उन परिस्थितियों में नहीं आयेगा, उस तरह की कहानियों को लेकर के नहीं आये, नई कहानी होगी, नया जीवन होगा, नया संसार होगा, नये लोग होंगे, नए ढंग से फिर शुरुवात होगी।

हम यहाँ बैठे हुए हैं, हम पहले भी थे, आज भी हैं, आगे भी रहेंगे लेकिन यह शरीर, यह शक्लें ऐसी नहीं होंगी, यह रिश्ते नहीं होंगे, दूसरे रिश्तों में मिलेंगे हम लोग, पहले भी कोई रिश्ता था, आज भी कोई अलग तरह का रिश्ता है, आगे भी कोई रिश्ता होगा; कभी जो बहुत प्यारे थे आज के दुश्मन हैं, जो आज दुश्मन हैं हो सकता है कल प्यारे हों, आज जो बेटा बना है हो सकता है पहले कभी वह हमारा पिता रहा हो और आगे जाकर न जाने और कौन-सा रिश्ता लेकर खड़ा हो जाए – यह संसार का आवागमन का चक्र है।

पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए ग्रहण कर लेना जैसे हमारे लिए आसान है ऐसे ही यह आत्मा भी करेगी। भगवान कह रहे हैं –

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही

इसी तरह से जीर्ण शरीर को यह आत्मा छोड़कर नवीन को फिर ग्रहण करती है। चक्र चलता रहेगा, कुछ फूल मुरझा गए, कुछ कलियाँ बनने लगे हैं–

माली आवत देखकर कलियाँ करें पुकार
फूली फूली चुन लई काल हमारी बार

जो फूल गए थे फूल वह चुन लिए गए थे, कलियाँ कह रही हैं – *काल हमारी बार* – बारी हमारी भी कल आने वाली है, कल हमें भी काल का माली आयेगा, चुनकर ले जायेगा।

इसे याद रखो। तुम यहाँ संसार में इसीलिए नहीं हो कि यहाँ सदा रहोगे।

युधिष्ठिर ने यही तो कहा था, यही है दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य–मानता है इन्सान कि एक दिन जाना है लेकिन इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं कि मुझे जाना पड़ेगा; यह तो कहेगा कि एक दिन मैं जाऊँगा लेकिन अपने बारे में इस बात को ढंग से मानने को तैयार नहीं, सोचता है कि अभी तो मैं रहूँगा, अभी तो मैं यहाँ हूँ, जिसने जाना था गया, जिनकी अवधि समाप्त हो गई वह जायेंगे, अपने लिए यह सोचता है अभी तो मैं रहूँगा और कमाल यह है कि जवान कन्धों पर बूढ़ों की लाशें तो होती हैं लेकिन बहुत बार ऐसा होता है बूढ़े

कन्धों पर जवानों की लाशें होती हैं, ढोना बहुत मुश्किल है – वह बोझ हृदय पर होता है, कन्धों पर नहीं,।

कुछ कहा नहीं जा सकता कब क्या घटना घट जाए, इसीलिए लोग अपने-अपने ढंग से यह कह रहे होते हैं कि तुझसे भगवान यह उम्मीद नहीं थी, यह तूने क्या किया? जो फूल अभी खिल नहीं पाया था तूने उसी को तोड़ दिया!

जिन्दगी का कोई भरोसा तो है ही नहीं।

अथर्ववेद में एक अलग ही तरह का उपदेश है-कि किसकी हुकूमत चल रही है संसार में? वहाँ उत्तर दिया – *मृत्युरीशे विपदां मृत्युरीशे चतुस्पदाय*

मौत शासन कर रही है। दो पांव वालों पर भी, चार पांव वालों पर भी, चाहे धरती पर चलने वाले हैं, आकाश में उड़ने वाले हैं या पानी में तैरने वाले जीव हैं, सब पर मौत शासन कर रही है। तुम्हारा आना सच होगा लेकिन उससे भी ज़्यादा सच यह है कि जाना भी ज़रूर पड़ेगा। आने का दिन निश्चित है रोज़ जन्म दिन मनाते हो लेकिन तुम्हें पता हो या न पता हो जाने का दिन भी निश्चित है, तुम्हारे रजिस्टर में लिखा है या नहीं लिखा है भगवान के रजिस्टर में तो लिखा ही हुआ है। इस हकीकत को जान लो, पहचान लो –

सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लात चलेगा बंजारा

कबीर ने लिखा है – *"चलती बरिया हमको उड़ावे चदरिया"*

चलने की बारी आई, परिवार वालों ने क्या किया? कफ़न लेकर के आये, ढ़ाई गज़ कपड़ा लाकर के ओढ़ा दिया। बस, यही था उनके पास देने के लिए, सब आभूषण ले लिए, सब वस्त्र ले लिये, बिना सिला कपड़ा डाल दिया ऊपर, जलाकर के आ गए और जलाकर आये ऐसे कि फिर पीछे मुड़कर के नहीं देखा। कितना प्यार करते थे। परिवार के लोग कहते थे कि तुम्हारे बिना रह नहीं पायेंगे, तुम यह हो, तुम वह हो और तीसरा दिन बीता तो चौथे दिन पिता की गद्दी पर, दुकान पर जाकर बेटा बैठा हुआ है, उसी तरह मोलभाव कर रहा है।

जाने वाला गया लेकिन जाने वालों के साथ कोई नहीं जाता, जायेगा तो उसका पुण्य, उसके कर्म या फिर उसका पाप भी उसके साथ जाता है और अगर साथ निभाती है कोई चीज़ तो उसके जीवन की भक्ति, उसके द्वारा की गई सेवा, उसके द्वारा किए गए महान् कर्म, वह सगे मित्र बनकर उसके साथ चलते रहते हैं नहीं तो संसार कहाँ तक साथ देता है?

परिवार के लोग, महिलाएं, घर से थोड़ी दूर जाकर रुक जाती हैं, मोहल्ले के कुछ लोग अर्थी तक साथ-साथ चल रहे हैं, बेटा गया तो चित्ता के पास तक जाकर खड़ा हो गया, वह भी सिर पर बाँस मारकर क्योंकि परम्परा यह है-चित्ता जल रही है तो एक प्रक्रिया की जाती है कि उठाकर सिर पर बाँस मारा जाता है, जिसे कपाल क्रिया कहते हैं।

इसके साथ में एक और परम्परा होती है-वहाँ एक तिनका हाथ में दिया जाता है और उसको कहते हैं कि तोड़कर फेंक दो वह तिनका-तोड़ने का मतलब यह कि समझाया जाता है कि रिश्ते इतने मज़बूत नहीं थे जैसे यह तिनका है टूट गया तो टूट गया, बस ऐसे ही टूट गया सब, जब तक शरीर था, यह रिश्ता था, अब गया सब।

अर्थी के साथ एक परिक्रमा भी कराई जाती है जब घड़ा लेकर के व्यक्ति परिक्रमा करता है और एक परिक्रमा करते ही कन्धे पर रखे घड़े को नीचे गिरा देता है पीछे की तरफ। मतलब होता है कि यह शरीर भी घट है, (*घट के भीतर जीव बसे हैं*-ऐसी कविता कही जाती है) कि शरीर जो है घट है, घड़ा, इसे फूटने में देर नहीं लगती, एक झटका लगा, ऊपर से गिरा और टूट कर बिखर गया और जैसे घड़ा टूट जाए तो फिर वह जुड़ता नहीं है, तो इन्सान याद रख लेना एक झटका आयेगा, लगेगा और ऐसा टूट के बिखरेगा फिर तू जुड़ने वाला नहीं।

"आदमी का जिस्म है क्या, जिस पर शैदा है जहाँ
एक मिट्टी की इमारत, एक मिट्टी का मकां
खून का गारा बना, ईंट जिसमें हड्डियाँ
चन्द श्वासों पर खड़ा है यह ख़याले आशियाँ
मौत की पुर ज़ोर आँधी जब इससे टकरायेगी
देख लेना यह इमारत खाक में मिल जायेगी"

एक झटका लगेगा, एक झटके में ही यह घड़ा टूट कर बिखर जायेगा। यह जीवन की सच्चाई है, इसको समझ लो, न जाने कब यह घड़ी आ जाए, कब जाना पड़े, इसीलिए भगवान समझा रहे हैं-मिटने वाला तत्त्व तुम जान गए हो लेकिन वह क्या है जो नहीं मिटेगा? – वह है तुम्हारी आत्मा।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
च चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

यह जो तुम्हारी आत्मा है-शस्त्र इसे काट नहीं सकता, आग इसे जला नहीं सकती, हवा इसे सुखा नहीं सकती, पानी इसे गीला नहीं कर पायेगा। जो कटता है वह शरीर है, आत्मा नहीं, आत्मा को समझो! तुम मिटने वाले नहीं हो, कोई भी मिटेगा नहीं, शरीर ही बदला जायेगा।

आज से लगभग सात-आठ साल पहले 1990-1991 में जर्मन डाक्टरों ने चौबीस कैमरे लगाकर ओपन-हार्ट सर्जरी करते समय एक विचित्र चीज़ देखी। वह जो ऑपरेशन कर रहे थे, ऑपरेशन करते हुए उस महिला की डैथ हो गई, मृत्यु हो गई। डॉक्टर लोग बड़े उदास थे।

उसके बाद वह सभी डॉक्टर लोग इकट्ठे बैठे, कैमरा चलाकर देखने लगे कि काम करते समय हम लोगों से गलती कहाँ पर हो गई। कैमरा जैसे ही चलाया, उसकी रील को स्क्रीन पर देखना शुरू किया तो उन्होंने देखा कि शरीर के अन्दर से कोई लपट, आकर कोई, ऊपर उठा है, छोटा बनता गया है और बिन्दु बनता बनता छत तक पहुँच गया। यह सब कहने लगे, "यह क्या हुआ?"

अब उन्होंने दूसरा कैमरा चलाया, उसकी रील निकाली, उसको देखा स्क्रीन पर।

कमाल यह हुआ कि चौबीस के चौबीस कैमरों ने वही चीज़ पकड़ी। और फिर दुनिया भर की पत्र-पत्रिकाओं में तस्वीरें छपीं, कुछ प्रसारण माध्यमों ने भी दिखाया और कहा – 'आत्मा का चित्र ले लिया गया है, उसे पकड़ लिया गया है।' लेकिन उन लोगों ने जो कुछ देखा, क्योंकि एक कैमरे में हो सकता है गलती होती, दूसरे में, तीसरे में सब चौबीस कैमरों में एक जैसी बात।

पर आप लोग जानते हैं कि आत्मा एक वह तत्त्व है जिसको कैमरे से या आँख से देखा नहीं जा सकता।

कभी-कभी ऐसा हुआ है कि सूक्ष्म शरीर का थोड़ा बहुत चित्र किसी ने ले लिया हो या कुछ इस तरह की अनुभूतियाँ आ गई हों; रूस के डॉक्टरों ने भी, वैज्ञानिक लोगों ने भी कोशिश की बहुत बड़े-बड़े कैमरे लगाए हुए हैं,

।।।। कैमरे जो एक मक्खी की टांग को भी मीलों बढ़ा करके दिखा सकें, इस तरह की आकृति दे सकें।

एक चूहे को डाला गया एक सिलिण्डर में, ऊपर से उसको बन्द कर दिया गया और कैमरे वहाँ लगे हुए हैं और स्क्रीन पर वह देख रहे हैं, उन्होंने भी देखा कि उसके अन्दर से एक आकार ऊपर उठा है, छोटा बनता जा रहा है।

लेकिन यह सूक्ष्म शरीर की बात हो सकती है, आत्मा का चित्र नहीं लिया जा सकता; वह पकड़ में नहीं आती।

पर यह भी एक सुखद बात है कि आज दुनिया के लोग किसी न किसी रूप में यह कहने तो लग गए हैं कि कोई तत्व तो है इस शरीर में, जो इस शरीर को संचालित करता है, जो निकल जाए तो फिर इस शरीर की कोई कीमत नहीं रहती और कमाल यह है कि जिन लोगों ने इस पर बहुत खोज की, जैसे डॉक्टर रेमण्ड मूडी ने, मैडम क्यूरी ने, उन लोगों ने बहुत अपने ढंग से विचार किया, कोई लोग जिनकी हस्पताल में मौत हो गई दोबारा फिर ज़िन्दा हो गए, उन लोगों से पूछा गया कि तुमने क्या देखा? उन लोगों से पूछा गया जिनको पिछले जन्म की याद थी, उनसे इंटरव्यू लिए गए जिन लोगों ने अपने किसी प्रियजन को मरते समय कुछ बोलते हुए सुना था, उन डॉक्टरों से भी बातचीत की गई जिन्होंने हस्पताल में ऑप्रेशन के दौरान कोई ख़ास तरह की चीज़ अनुभव की और यह अज्ञात रहस्य विचित्र ढंग से लोगों के सामने आया।

बहुत-बहुत लोगों का यह कहना था कि जब हम मर गए और फिर ज़िन्दा हो गए, मतलब शरीर फिर ठीक हो गया, क्योंकि जैसे कैलिफोरनिया की एक महिला मर गई और मुर्दा घर में उसकी लाश को रख दिया गया वह वहाँ से उठकर के बैठ गई; पूछा गया कि क्या तुम ने अनुभव किया? तो बहुत लोगों से पूछा गया; मूडी ने अपने ढंग से बातें कहीं हैं, बहुत लोगों के अपने वर्णन हैं कि जिसका सार यह निकलता है –

उन्होंने कहा कि जैसे ही शरीर से आत्मा निकली तो हमें यह अनुभव हुआ कि जैसे हम एक बोझ से ऊपर उठ रहे हैं, तरह-तरह की घण्टियां सुनाई दे रही हैं, स्वर सुनाई दे रहे हैं, हम ऊपर उठ रहे हैं और यह अनुभव कर रहे हैं कि हमारे परिवार के लोग हमारे लिए रो रहे हैं, ऊपर उठते-उठते ही घंटियों के स्वर बहुत ही प्यारे मादक हैं, उनका अपना नशा है, ऐसी ध्वनियाँ,

कि कहते हैं हमने संसार में नहीं सुनी, किसी ने घंटियाँ कहा, किसी ने वाद्य यन्त्र कहा, किसी ने अलग़-अलग़ तरह के साज़ की बात कही कि अजीब-अजीब तरह के साज़ की आवाज़ आती है; बहुतों ने बताया कि शरीर से जैसे ही पृथक हो गए तो एक दिव्य प्रकाश, सूरज बहुत सारे उगाए जायें तो भी इतना प्रकाश नहीं हो सकता, लेकिन सूरज का प्रकाश जलाता है लेकिन वह प्रकाश अपनी तरफ खींच रहा था, बड़ा आकर्षण था उसमें, ऐसा लग रहा था कि जैसे न जाने हज़ारों लाखों माँ अपनी ममता लेकर के खड़ी हो गई हों, लाखों गुणा ममता, प्यार, स्नेह, वात्सल्य-चारों तरफ हो, कोई बुला रहा हो- "थके हुए हारे हुए, दुनिया से सताए हुए, आ मेरे पास।" वहाँ बहुत प्यार है।

कुछ ने यह भी कहा अपने कर्मों से डरा हुआ व्यक्ति वहाँ भयंकर रूप देखता है। उन लोगों ने कहा फिर हमें झटका लगा, फिर हम आए वापस शरीर से जुड़ गये।

लेकिन मैं आपसे यह कहना चाहूँगा कि मरने के बाद जीवन है, जीवन का फिर से परिवर्तन है। किसी भी अन्दाज़ से समझें चाहे हम किसी डॉक्टर की भाषा से समझें, वैज्ञानिक की भाषा में समझें, किसी खोजकर्त्ता व्यक्ति के ढंग से समझें, शास्त्र के माध्यम से समझें-बात उतनी ही है कि यह आत्मा रहती है, शरीर नहीं रहता, शरीर मिटता है।

देखने में यह आता है कि शरीर रह गया और आत्मा चली गई, उसे उठाकर हम जलाकर आ गए। पर मृत्यु तो रोज़ आपके सामने इसी तरह से है कि आप उसे अनुभव कर सकें।

देखिए, यह जो आप श्वास लेते हैं- जब आप दुनिया में आए तो सबसे पहला काम क्या किया था? सांस लिया दुनिया में आकर के और जब जाओगे तो सबसे आखिरी काम क्या करोगे? सांस छोड़ोगे। तो सांस छोड़ना-मृत्यु का प्रतीक; सांस लेना-जीवन का प्रतीक लेकिन मज़े की बात देखिये हर पल आप सांस ले भी रहे हैं और हर पल आप छोड़ भी रहे हैं; तो हर पल मृत्यु भी है और हर पल ज़िन्दगी भी है दोनों चीज़ें साथ साथ हैं, दोनों साथ खड़ी हुई हैं।

आती हुई सांस कहती है ज़िन्दगी का भरोसा रख, जाती हुई सांस कहती है-बहुत भरोसा मत कर लेना, यहाँ अमरता का प्रमाण-पत्र लेकर नहीं आया, आने वाले को जाना भी पड़ेगा; हर संयोग का वियोग है; संसार तो रेल का

प्लेटफार्म है, कुछ मुसाफ़िर उतर के आ रहे हैं, शहर देखने के लिए जायेंगे, दिल्ली शहर देखेंगे, कुछ मुसाफिर हैं जो देख चले-ट्रेन में चढ़ने के लिए जा रहे हैं लेकिन रेलवे प्लेटफॉर्म पर आपको दिखाई देगा-आते हुए लोगों के पास भी सामान है जाते हुए लोगों के पास भी सामान है लेकिन यह परमात्मा का प्लेटफॉर्म विचित्र है, यहाँ आते हुए के हाथ मुट्ठी बँधी हुई है, जाते हुए के हाथ खुले हैं। जो आया है वह तो मुट्ठी बन्द करके आया है, यह कहता हुआ कि अपनी क़िस्मत लेकर आया हूँ दुनिया में, सब कुछ मिल जायेगा-कोठी, बंगला, कार, सुख सुविधाऐं, ऐश कराने वाला चैक अपने साथ लेकर के आया हूँ, वह चैक अपना लेकर के आता है और कैश कराता है संसार में, सब चीजें मिल जाती हैं उसे; जाता हुआ ट्रेन में बैठने वाला वह मुसाफिर हाथ खोले हुए है, उससे पूछा-'सामान कहाँ है?' कहता है कि यहाँ सब छोड़ना पड़ता है, खाली हाथ ही जाना पड़ता है इसीलिए हर किसी मरते हुए आदमी के हाथ खुले रह जाते हैं क्योंकि कुछ हम लेकर जा ही नहीं पाते। इसीलिए यह पंक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं:-

दुनिया में खूब कमाया क्या हीरे क्या मोती ।
पर क्या करें यारों कफ़न में जेब नहीं होती ।।

किसी कफ़न में कोई जेब नहीं होती कि कमाया हुआ साथ जा सके। चिन्तन करना- "*आत्मा रहेगी शरीर नहीं*" जितना शरीर को सज़ाने में मेहनत की गई, सजाते-संवारते ज़िन्दगी बीत जाती है लेकिन कमाल यह है जब भगवान सज़ाता है इस शरीर को तो बचपन में कैसा भी कोई लगता हो जवानी में तो हर कोई सुन्दर लगता है क्योंकि सजाया है परमात्मा ने और आदमी कहता है हम अपने को सज़ा रहे हैं और कमाल यह है कि जब वह बिगाड़ने पर आता है (वह बड़ा भारी पेन्टर है), वह चित्रकार अनोखा है उसने चित्र अपना बिगाड़ना शुरू कर दिया तो फिर आप कितने क्रीम, पाऊडर लगाते रहना कोई फ़र्क पड़ने वाला नहीं है, अब तो शक्ल बिगड़ेगी ही; मुख के दांत जायेंगे, सिर के बाल जायेंगे, चेहरे की विकृति होगी, शरीर टेढ़ा मेढ़ा होगा और आखिर की स्थिति-आत्मा जब छोड़ेगी-सोचकर देखिए कि किसी से कोई हाथ मिलाकर कितना खुश होता था; आपसे हाथ मिलाकर कितने-कितने प्यारे आपके लोग आपसे खुश होते थे लेकिन शरीर में आत्मा ना रहे; किसी मित्र

को आप बहुत प्यार करते थे, उससे हाथ भी मिलाते थे, गले भी मिलते थे, अब उसके शरीर में आत्मा नहीं है और उसका शरीर सामने पड़ा हो जिसे आप हाथ मिलाकर खुश होते थे, गले मिलकर खुश होते थे अब अगर उसको छूना पड़ जाए, उस शरीर को छूना पड़ जाए जिसमें अब आत्मा नहीं है, मित्र के शरीर को छुआ, छूने के बाद आदमी क्या करता है हाथ धोकर आता है, इससे पहले तो ऐसा नहीं किया था! जीवित के साथ में हाथ मिलाकर तो आपने यह नहीं कहा कि ज़रा एक मिनट ठहरना, मैं हाथ धोकर के आता हूँ, ऐसा तो कभी नहीं हुआ; गले मिलकर खुश हुए, हाथ पकड़कर खुश हुए लेकिन जब शरीर में आत्मा नहीं रही उससे हाथ छू जाए तो व्यक्ति हाथ धोता है।

आदमी जीवित के साथ बैठने में खुश होता है, मुर्दे के साथ बैठ जाए घबराहट होने लगती है और जब कि डर जीवित से है, मरा हुआ किसी को क्या मारेगा भाई? लेकिन कमाल यह है कि आदमी मरे हुए से डरता है। मुर्दा किसी का क्या बिगाड़ लेगा लेकिन लोगों की मुर्दे को देखकर रुह कांप रही होती है, घबरा रहे होते हैं-नहीं नहीं!

अजीब चीज़ है यह कि किसी की आँखें मरते समय खुली रह जायें, लोग तो कहते हैं कि शायद किसी की प्रतीक्षा करता गया होगा लेकिन लोग उन आँखों को भी बन्द करते हैं-क्यों? खुली हुई आँखें आदमी देख नहीं सकता, मुर्दे की खुली हुई आँखें देख नहीं सकता आदमी, घबराहट होती है। और ज़िन्दा की आँखें बन्द हों तो देख नहीं सकता आदमी; कहेगा – क्या भाई, आँखें बंद करके बैठ गया, आँखें खोलो ना।

सारी बात ही आत्मा की है।

उपनिषदों में, वेदों में, सब स्थानों पर समझाया गया कि तुम अपनी आत्मा को सजाओ, आत्मा का भोजन तैयार करो, तुम्हारी आत्मा भूखी है, अपनी आत्मा के सम्बन्ध में विचारो, जितना सामान शरीर के लिए इकट्ठा कर रहे हो, कुछ सामान आत्मा के लिए भी करो।

किसी देश में आप जायें, अपने देश से दूसरे देश में, तो ऐसा होगा कि यहाँ की करन्सी आप कनवर्ट करोगे वहाँ की में, यहाँ का रुपया वहाँ के डॉलर में बदला जायेगा क्योंकि वहाँ अमेरिका में, हाँग-काँग में, सिंगापोर में, बहुत सारे देशों में जिनमें डॉरल चलेगा, किसी में पाउंड चलेंगे, किसी में यैन चलेगा-तो आपका रुपया वहाँ पहले ही आप बदल लेते हैं।

बड़ी प्यारी बात है – हमारी यह करन्सी यहाँ तो चलेगी नहीं, परलोक में जब जाना पड़ेगा तो अपनी करन्सी को ज़रा पुण्य में बदल लेना, अच्छाईयों की तरफ लगाकर के ज़रा बदल लेना, वहाँ तो करन्सी आपके पुण्य के ही काम आयेगी। सेवा करते हुए किसी व्यक्ति का दुःख हरण करना, पुण्यों की पूंजी है आपकी, आपके पास जमा होती जायेगी; किसी का दुःख हरण करना आपका पुण्य बढ़ेगा, आपके खाते में जमा रहा है, आपका बैंक बैलन्स बढ़ रहा है, आगे जाकर आपके काम आयेगा, परलोक में काम आयेगा अर्थात् आओगे फिर इसी दुनिया में लेकिन एक सुन्दर भाग्य लेकर, सुविधाऐं लेकर, आनन्द लेकर, उत्सव लेकर आओगे, इसीलिए आत्मा के लिए भी कुछ करो, इसके बारे में भी सोचो-किस लिए हम आए? कौन हैं हम? कहाँ हमने जाना है? और यह तो नदी-नाव संयोग है या रेल में बैठे हुए मुसाफिरों के साथ थोड़ी देर की यात्रा है, मेले में मिले हुए लोगों की तरह से हम लोगों से मिल रहे हैं-मेले में (मेले का मतलब ही होता है-जहाँ मेल होता है।) दूर-दूर से लोग आए, थोड़ी देर के लिए मिल लिए , उसके बाद सब अपने अपने रास्ते चले गए, अपने-अपने घर चले गए। दुनिया तो ऐसा ही मेला है-यहाँ मिलेंगे हम लेकिन फिर जायेंगे।

पर एक बात याद रखना-इस दुनिया में कितने ही आयें और कितने ही चले जायें इस दुनिया की रौनक नहीं बिगड़ती, यहाँ इसी तरह फूल खिलेंगे, ऐसे ही नदियाँ बहेंगी, ऐसे ही सुन्दर हवायें चलेंगी, इसी तरह से सूरज उगेगा, ऐसे ही दिन ढलेगा, ऐसे ही चाँद सितारे निकलेंगे इसी तरह से लोग रहेंगे, हम रहें न रहें संसार तो ऐसे ही चलता रहेगा। हाँ, अगर हमने कुछ ऐसी अच्छाईयाँ छोड़ी हैं जो महकती रहें उनकी याद संसार में ज़रूर रहेगी।

हज़ारों महफिलें होंगी हज़ारों कारवाँ होंगे ।
ज़माना हमको ढूँढेगा न जाने हम कहाँ होंगे ।।

अगर हमने कुछ अच्छा छोड़ा है वह महक दुनिया में महकती रहेगी, इसीलिए कोई ऐसी स्थिति जीवन की होनी चाहिए चलते-चलते, कर्म करते-करते, शरीर पूरा हो जाए जैसे कोई फूल डाली पर हँसता मुस्कुराता हुआ, इठलाता हुआ, हवा में हिलता-डुलता हुआ अचानक बिखर जाए हँसता हुआ, ऐसे ही जीवन कर्म करते-करते बिखर जाए तो अच्छा है और जैसे कोई

फूल बिखरते हुए अपनी महक हवा में छोड़ कर जाता है ऐसे दुनिया में बिखरने से पहले अपने कर्मों की सुगन्धि इस दुनिया में छोड़ कर जाना जिससे की महक बनी रह सके।

इसीलिए गीता तो एक संजीवनी देने वाला पवित्र ग्रन्थ है। यह जो ज्ञान है इस ज्ञान का नाम सांख्य है; यह कोई सांख्य दर्शन वाला ज्ञान नहीं है; यहाँ कपिल मुनि की बात नहीं है; सांख्य का अर्थ है-ज्ञान, वह दीप्ति, वह प्रकाश जो हमारे अंधेरे मनों के अन्दर सदा के लिए जागृति पैदा कर देता है इसीलिए पहले हमने विषादयोग पर जो चिन्तन किया था, आज ज्ञान की दिशा में बढ़ रहे हैं कि अपने को जानो, अपने को समझो, अपने को सम्भालो।

हम लोग कहते हुए आनन्दित होते हैं लेकिन कितना आनन्दित हुआ होगा अर्जुन जिसके माध्यम से गीता संसार को मिली है। परमात्मा करे हम भी अर्जुन बन सकें और गीता हमारे लिए अमृत।

गीता का दूसरा अध्याय, जिसे सांख्य योग के नाम से हम जानते हैं, इसके मध्य में पहुँचते हुए भगवान कृष्ण का यह उद्बोधन, अर्जुन के लिए सम्मुख आता है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भू माँ ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।

अर्जुन से भगवान सम्बोधन देते हुए समझाते हैं- *'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु'* –तुम्हारा कर्म करने का ही अधिकार है, फल का नहीं, कर्तव्यपालन करना, कर्म करते रहना यह तुम्हारे हाथ में है, इसके लिए तत्पर हो। फल की आकांक्षा में आसक्ति पैदा होगी, कर्म की दिशा बदलेगी, कर्म करो लेकिन फल की ओर मत देखो क्योंकि फल जिसके हाथ में है उस पर मनुष्य का ज़ोर नहीं चलता, फल तो परमात्मा ने अपने हाथ में रखा हुआ है, कर्म मनुष्य को दिया हुआ है। भगवान ने फल-चाहे वह परीक्षा का फल हो, कोई भी परिणाम, कुछ भी रिज़ल्ट वह हमारे वश में नहीं भगवान के वश में है, हमारे वश में केवल इतना है कि हम कर्म करें और जब तक जीवन रहे तब तक कर्म करते जायें, न खाली बैठें, न आलसी हों, कर्मठता हमारे जीवन का हिस्सा बन जाए। बड़ी सुन्दर पंक्तियाँ हैं कि –

अग़र पहाड़ की ऊँची चोटी पर लहलहाते हुए सुन्दर देवदार के वृक्ष तुम नहीं बन सकते, तो घाटी में उगे हुए किसी सुन्दर पौधे की तरह अपने आपको

हरा भरा रखो; अगर तुम बहुत ऊँचाई पर जाकर विकसित नहीं हो सकते तो जहाँ हो वहाँ की सुन्दरता बनाने की कोशिश करो और अग़र घाटी में विकसित नहीं हो सकते हो सड़क के किनारे पर उगने वाले उन सुन्दर पौधों की तरह बनो, रास्ता चलते मुसाफिरों के लिए जो सदैव शान्ति देते हैं, सौन्दर्य बढ़ाते हैं और अग़र ऐसा भी नहीं कर सकते तो नदी के किनारे उगने वाली उन झाड़ियों की तरह से अपने आपको बनाओ जो नदी की शोभा को शोभायान करती है और अग़र ऐसा भी नहीं तो छोटी-सी पगडंडी के किनारे उगने वाले जो छोटी-छोटी नरम घास की तरह बनो जो नम्रता, शीतलता का प्रतीक बनी रहती है। अग़र इतने ही छोटे हो तो कम से कम वहाँ खड़े होकर ऐसा सौन्दर्य प्रदान करो कि उस पगडंडी का आकर्षण बन जाओ।

भाग्य ने तुम्हें कुछ भी दिया हो, समाज के किसी भी क्षेत्र में, संसार के किसी भी परिवेश में, किसी भी स्थान में तुम रहते हो, अपने कर्म से उस स्थान की शोभा बढ़ाओ, वहाँ का सौन्दर्य बढ़ाओ, क्योंकि कर्म करने का अधि कार तुम्हें मिला है, इतना सुन्दरता से भरपूर कर दो उस स्थान को जहाँ आप रहते हैं कि कहा जा सके कि कोई है यहाँ जिसका जीने का अन्दाज़ ही अलग है, जिसकी जीवन शैली ही दूसरों से अलग है-अव्यवस्थित चित्त लेकर जो व्यक्ति संसार में कर्म करता है वह कर्म में बँधता जाता है, उलझता जाता है। भगवान इसीलिए कहते हैं-

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा धनंजय

हे धनंजय, अर्जुन! योग में स्थित होकर कर्मों को करो, *सङ्गं त्यक्त्वा* संग को, आसक्ति को, छोड़ो। कर्म की आसक्ति मन में न लाकर कर्म करो और फिर उस कर्म का आनन्द लो।

माँ जब अपने बच्चों को पालती है, ममता देती है, प्रेम और वात्सल्य देती है, पालना-पोसना माँ का ठीक है लेकिन अगर कामनायें साथ जुड़ें – मेरा बेटा बड़ा होगा, विवाह करके आयेगा, बहु घर में आयेगी, मेरा बेटा बुढ़ापे में मेरी सेवा करेगा, मेरे सपने पूरे होंगे, मैं संसार के सामने यह दिखाऊँगी, वह बताऊँगी – अब यह कामनायें जुड़ गईं। इन कामनाओं का परिणाम यह होगा कि अगर कभी कामना टूटी तो माँ को दुःख बहुत होगा, बहुत रोयेगी।

अगर मदालसा की तरह अपने बच्चे को पाला तो यहाँ भाव दूसरा-कि मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगी, मेरे कर्त्तव्य में एक दायित्व है, महान संस्कार बच्चे को दे सकूँ; तो अपना कर्त्तव्य पूरा किया मदालसा ने। बेटा योग की तरफ चल पड़ा, समाधि में बैठकर आनन्द लेने लगा या एक बेटा राजा बन गया। माँ बच्चों को लायक बनाकर अपने आप ही अपनी समाधि की तरफ़ जा रही है या सुमित्रा माँ इस तरह से अपने बेटों को पाल रही है-समझा दिया कि अपनी "मैं" को आगे नहीं रखना और जिस समय रामजी वन जाने लगे, लक्ष्मण रामजी के पीछे-पीछे; माँ के पास प्रणाम करने के लिए लक्ष्मण गए, सुमित्रा के पास जाकर लक्ष्मण ने कहा– माँ, मैं वन जाना चाहता हूँ, भ्राता राम के साथ। वहाँ उनकी सेवा करूँगा। माँ से पूछा, माँ की शिक्षाऐं तो पहले ही उसकी रगों में बसी हुई थीं; लक्ष्मण देख रहे हैं कि शायद जाते समय माँ कुछ उपदेश करें; माँ ने उस समय उपदेश किया – वन में रहते हुए कुछ ना कुछ मोह जागेगा लेकिन तुम्हारे सामने लक्ष्य होना चाहिए – सेवा; अगर तुम्हें अपने पिता की याद आए, माँ का ध्यान आए, सुन्दर अयोध्या याद आए, लक्ष्मण क्या करना उस समय–

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकांत्मजाम ।
अयोध्यां अट्टविम् विद्धि गच्छतात् यथा सुखम् ।।

हे लक्ष्मण! यदि तुम्हें अपने पिता की याद आए, ध्यान अपना बदलना, राम में अपने पिता को देखना और अगर तुम्हें माँ की याद आये तो सीता में अपनी माँ को ढूँढना और अगर अपनी अयोध्या की याद आए तो वन में खिले हुए जहाँ भी सुन्दर फूल देखो, सोचना, यही मेरा अयोध्या है लेकिन कर्त्तव्य से और सेवा से विमुख नहीं हो जाना, यह मेरा उपदेश है तेरे लिए।

अब आप सोचिए, कर्त्तव्य पालन करने वाली माँ, जो आसक्ति नहीं रख रही है, कर्म कर रही है लेकिन कर्म इतना सुन्दर-बच्चों में भी संस्कार महान दिए, इतिहास में एक आदर्श और पूजनीय माँ की तरह इस माँ का नाम आता है-सुमित्रा माँ का।

सुनीति, सुमित्रा, मदालसा-तीन मातायें अनोखी मातायें हैं; सन्तान का पालन पोषण किया लेकिन अपने लिए कुछ नहीं चाहा।

सुनीति ने अपने ध्रुव को समझाया था कि सांसारिक पिता की नहीं, विश्व पिता की चाहत करो और उसकी गोद में बैठने की कोशिश करो। जो संसार की कामना करने वाली माँ है वह संसार के पदार्थों की कामना करेगी, स्वयं कुछ चाहेगी– यह मिल जाए, वह मिल जाए, उसे दुःखी होना पड़ेगा; लेकिन जो फल की आकांक्षा ना रखकर, संग ना रखकर, मोह ना रखकर; आसक्ति ना रखकर कर्त्तव्य परायण है, अनासक्त भाव से अपना कर्त्तव्य पूरा करती है उसे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होगा, जीवन को जीने का ढंग ही अलग हो जायेगा, जीवन में शान्ति रहेगी।

देखा जाए तो संसार को जब भी हम अपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं तो संग पैदा होता है, जैसे ही उपेक्षा की दृष्टि से देखें तो संग की भावना समाप्त हो जाती है–आसक्ति हटती है, अटैचमैन्ट टूटती है। कभी भी किसी की तरफ आप अपेक्षा की दृष्टि से मत देखना, उपेक्षा की दृष्टि से देखना। कोई भी चीज़ जो मोह रही हो – कभी रास्ते में चलते हुए आपने बाज़ार में कोई चीज़ देखी हो, चाहे किसी की गाड़ी, दुकान में सजे हुए ज़ेवर या किसी दुकान में सुन्दर वस्त्र, आपने देखा एक दृष्टि से, एक नज़र डाली–अगर आपकी वहाँ उपेक्षा वाली दृष्टि है तो फिर आपका ध्यान सिर्फ़ देखने में हुआ, आगे चल पड़े, वहाँ मन जुड़ा नहीं लेकिन अगर अपेक्षा की दृष्टि से देखा–अच्छा, इतनी अच्छी चीज़ यहाँ मिलती है, महंगी होगी, हो सकता है ठीक दाम से भी मिल जाए। सत्संग में जायेंगे उसके बाद वापिस आते हुए एक बार तो दुकान में ज़रूर बात करते हुए जायेंगे, अब सत्संग में भी आकर के अगर बैठे तो ध्यान किसी साड़ी पर, किसी ज़ेवर पर, किसी वस्त्र पर या किसी की गाड़ी देखी आपने–किसी शोरूम में कोई गाड़ी खड़ी देखी तो वहाँ ध्यान टिक गया, अपेक्षा से देखा था ना? तो जैसे ही आप जायेंगे, आपका कहीं भी जाओ, कहीं भी बैठो आपका ध्यान बार–बार उसी स्थान पर जायेगा–ज़रा एक बार देख तो लूँ इतनी अच्छी गाड़ी, इतना अच्छा मॉडल–अगर मेरे पास हो तो कितना अच्छा हो–अब यहाँ संग जुड़ गया।

रास्ते में चलते हुए अगर आप कहीं कूड़ा–कचरा देखें, उसे आप कभी अपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखेंगे, उसे उपेक्षा की दृष्टि से ही देखते हैं इसीलिए वह कभी आपके मन में याद रहता भी नहीं है। याद वही चीज़ रहेगी जहाँ

आपकी आसक्ति होगी या फिर कहीं मन में बहुत घृणा जाग गई, नफ़रत जाग गई–तो यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हो गए। जिससे घृणा है वैर है वह भी हर समय याद आयेगा और जिसके प्रति बहुत आसक्ति है वह भी हर समय याद आयेगा; उठते-बैठते, चलते-फिरते वह हर समय याद आयेगा लेकिन *ना काहु की दोस्ती ना काहु से बैर* – फिर कोई याद आने वाला नहीं, फिर मस्तिष्क रिक्त रहेगा।

आप देखें तो आपके मस्तिष्क में संसार की स्मृतियों की और संसार के लोगों की भीड़ है जो आपको एकान्त में भी शान्ति से बैठने नहीं देती, दुनिया की बातें हैं, दुनिया की आवाज़े हैं, दुनिया की कड़ुवी और मीठी स्मृतियाँ हैं, एकान्त में जब भी आप बैठेंगे वह सब आपको याद आयेगा और आपको परेशान करेगा; किसी की बात को याद करके हँसोगे, किसी की बात को याद करके जलोगे, किसी की बात को याद करके घृणा आयेगी, किसी की बात को याद करके उसके प्रति आसक्ति जागेगी, किसी की बात को याद करके आपको धन का ध्यान आयेगा, किसी को लगेगा कि उस व्यक्ति ने मेरा बड़ा नुकसान किया, बदला लेने की भावना आयेगी।

एक संसार वह है जो आपको बाहर दिखाई दे रहा है; एक संसार वह है – आसक्ति का संसार – जो आपके मन में बसा हुआ है, जो आपके अन्दर चलता है। भले ही आप भीड़ में चले जाऐं, भीड़ को देखते-देखते आप अपने अन्दर की तरफ़ नहीं देखते, बाहर देखते-देखते आप हमेशा महसूस करेंगे कि जब भी आप भीड़ के बीच में होंगे तो अपने आपको अकेला महसूस करेंगे लेकिन जैसे ही एकान्त में जाकर बैठ गए; भीड़ में तो आप अकेले थे लेकिन अकेले में बैठते ही आपके अन्दर की भीड़ बाहर आने लगती है। आपके विचारों में, मस्तिष्क में, स्मृतियों में, न जाने क्या-क्या भरा हुआ है वह सब चलने लग जाता है और मन की आदत है दृष्टपेष्ण करना, पिसे हुए को पीसना, मन पर अगर कोई चोट लगी हुई हो तो आप देखेंगे कि बार-बार मन उसी को दोहरायेगा, कोई चीज़ आपको परेशान कर रही हो तो आप देखना बार-बार मन उसी को आपके सामने लाकर रखेगा; चक्की में एक बार पीस दिया जाए तो आदमी कहता है–चलो पिस गया, आटा तैयार हो गया, लेकिन हमारा मन तो ऐसा विचित्र है जिस आटे को पीस लेता है उसे दोबारा फिर

पीसेगा, तीसरी बार फिर पीसेगा; एक बार नहीं, दस बार नहीं, सौ बार नहीं, हज़ार बार पीसने को तैयार बैठा है और उसका ऐसा रूप बना देगा कि वह बेक़ार की चीज़ बन जायेगी, दुखदायी बन जायेगी, बार-बार दोहराता है मन।

किसी ने अपमान किया हो आपका, फिर देखना जहाँ भी आप जाओगे मन आपका बार-बार उसी चीज़ को लेकर के सामने आता है- यह आसक्ति का संसार है। आप अगर वहीं का वहीं छोड़ दें तो बात ख़त्म हो जाती है और अगर उस पर दबाव डालना शुरू कर दिया-किसी ने ऐसा क्यों कहा?-प्रभाव मस्तिष्क पर होता चला जायेगा और विचित्र बात तो यह है कि किसी ने आपको एक गाली भी दी होगी, मन पर चोट लग गई, अब मन उसको बार-बार दोहरा रहा है, तो होगा क्या? आप खुद ही अपने आपको हज़ार गाली दे रहे हैं; उसने तो एक चोट लगाई, वह तो एक चोट लगाकर चला गया, अब आप बार-बार उस घाव को कुरेद रहे हो, उसे और गहरा करते हो, उसे और ज़्यादा बढ़ाते हो और उस बढ़ाने का परिणाम यह है कि आप अपने नर्क़ में, उसकी अग्नि में हर समय जल रहे हो। यह आसक्ति का संसार है।

भगवान कहते हैं कि इससे बाहर निकलो, योगस्त हो जाओ, योगी बनकर के चलो, अनासक्त होकर चलो; कर्म करने का अधिकार तुम्हारा है, कर्म करते चले जाओ लेकिन संसार के फल की तरफ़, कर्मों के फल की तरफ़-मैं यह करने लगा हूँ क्या लाभ होगा?-यह भाषा ही वणिक की भाषा है, बनिये वाली भाषा है-जो कुछ किया, तुरन्त हम किसी व्यापारी की तरह से लाभ पाना चाहते हैं, उसी समय कामना करने लग जायेंगे-साधना में बैठेंगे क्या लाभ होगा? भक्ति करेंगे क्या लाभ होगा? सत्संग में जायेंगे, लाभ बताओ क्या होगा? ऐसा करने से क्या लाभ होगा? सिर्फ़ लाभ की भाषा याद है।

जॉज बर्नाड शॉ से किसी ने पूछा – आपने बहुत सारी पुस्तकें पढ़ी हैं, किताबें पढ़ी हैं, आपको सबसे ज़्यादा लाभ कौन सी बुक से हुआ? उसने भी व्यापारियों की भाषा बोली; उसने कहा – और किसी बुक से इतना लाभ नहीं हुआ जितना चैक बुक से लाभ हुआ है, चैक बुक ज़्यादा अच्छी लगती है।

यह भाषा ही अलग है, लाभ वाली भाषा, यहाँ हर समय आदमी कुछ न कुछ कामना कर रहा होगा और लाभ न हो तो व्यक्ति का मन टूटता है। आप उसी आदमी को प्रणाम करेंगे जिससे आपको लाभ होता दिखाई दे, जो

मतलब का आदमी है; और जिससे कोई स्वार्थ पूरा न होता हो अगर वह आपको प्रणाम करे तो आप उसके प्रणाम का भी जवाब देने के लिए तैयार नहीं हैं। आप सोचेंगे, काम का आदमी है, इससे तो बात करनी ही पड़ेगी; दूर से जा रहा है, आप जायेंगे, दौड़कर के उसे प्रणाम करेंगे और कहेंगे –'मन कर रहा था कि आपके दर्शन हों, मिल गए तो बड़ी खुशी हुई, सवेरे-सवेरे महान् पुरुषों के दर्शन हो जायें दिन बहुत अच्छा बीतता है।' अब वो कहाँ का महान पुरुष है? सिर्फ़ इतना ही महान पुरुष है कि उससे कोई मतलब पूरा हो रहा है आपका। यह आसक्ति का संसार है और इस आसक्ति के संसार में निरन्तर मनुष्य द्वन्द में फँसता है। यह है चक्की जिसको कबीर ने कहा है–

चलती चाकी देखकर दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में बाकी बचा ना कोय ।।

–इसमें फँसा हुआ है, बँधा हुआ है आदमी। जिससे मतलब सिद्ध हो रहा हो उसके आगे दुम हिलाते हुए घूमेगा, पीछे पीछे जा रहे हैं; मतलब सिद्ध न होता हो उसकी तरफ़ देखना भी पसन्द नहीं कर रहा है। इस तरह का जो संसार है उसमें रिश्ते नाते भी बँधे हुए हैं; माता-पिता से बच्चों की कामना पूरी हो रही है तो माता-पिता का सम्मान हो रहा है, जिस दिन माता-पिता ने कमाना छोड़ दिया, अब माता-पिता माँगने लगे बच्चों से, बच्चों की धारा बदल गई; अब ढंग बदल गया; अब अपने माता-पिता को बेकार का व्यक्ति समझते हैं।

कोई भी रिश्ता हो, स्वार्थ पूरा हो रहा है तो रिश्ते की गरिमा दिखाई देती है लेकिन अगर कर्त्तव्य भावना से कार्य करते चले गए तो फिर प्रत्येक सेवा, पूर्ण प्रार्थना बन जायेगी। इसे ध्यान से समझना – परोपकार के लिए किया गया कोई भी कार्य सेवा है, कोई भी ऐसा कार्य जिसमें आपकी स्वार्थ वृति नहीं, दूसरे के कल्याण की कामना अधिक है वह सेवा है और ऐसी सेवा के द्वारा सदैव शान्ति मिलेगी और जिस सेवा में भी स्वार्थ जुड़ गया वह सेवा करते-करते भी अशान्ति आने लग जायेगी, भले ही धर्म स्थल में जाकर सेवा करना, अगर स्वार्थ की कामना है तो कुछ न कुछ दिनों के बाद लड़ाई-झगड़ा हो जायेगा किसी ना किसी के साथ, समस्या आ जायेगी – मैं आगे आऊँ उसको पीछे करूँ।

जब भी सेवा परार्थ की भावना से होगी सेवा पूजा बन जायेगी, भक्ति बन जायेगी, शान्ति देने वाली चीज़ होगी; इसीलिए भगवान कह रहे हैं:–

योगस्थः कुरुकर्माणि सङ्ग् त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

अर्जुन, योगस्थ कर्मों को करो, संग का परित्याग करो, इसी में आनन्द है। कर्म करते हुए यह भी ध्यान रखना है कि कर्मों में उलझ नहीं जाना। संसार में जगह-जगह उलझाव है लेकिन अपने आपको फँसने न दो।

थोड़ा-सा इस बात का ध्यान रखना, जैसे कोई शहद के लिए मक्खी दौड़ रही है या कोई मक्खी जाकर हलवाई की चाशनी पर बैठ जाए, कड़ाहे में चाश्नी बनाई है हलवाई ने, मक्खी जाकर बैठ गई, किनारे बैठकर स्वाद लेने लगी, जैसे स्वाद लेने लगी; अब उसकी आसक्ति बढ़ने लगी, थोड़ा और आगे, थोड़ा और आगे जाकर लूँ; जब तक किनारे पर बैठकर स्वाद ले रही थी तब तक वह सुरक्षित थी लेकिन जैसे ही आगे बढ़ी, और का लालच जागा, अब स्थिति हो गई कि पंख चिपट गए वहीं, अब बाहर निकलना चाहती है, अब वह कहती है मुझे नहीं खाना लेकिन मुझे छोड़ो तो सही, अब जो स्वाद दे रही थी चीज़ वही फन्दा बन गई, मुसीबत बन गई और उस छटपटाने का परिणाम यह हुआ पंख लिपट गए हैं उस चाश्नी में और वहीं मौत हो गई।

संसार का आनन्द अगर लेना चाहते हो एक किनारे बैठकर के लो, इसमें जितना जितना उलझते चले जाओगे उतने फँसते जाओगे, फिर पंख फँस जायेंगे, फिर उड़ान नहीं हो पायेगी और उसी में उलझकर के ज़िन्दगी खत्म हो जायेगी।

इसीलिए मैं यह कहा करता हूँ कि कोल्हू का बैल चलता तो बहुत है लेकिन पहुँचता कहीं भी नहीं, उसी दायरे में उसे घूमना होता है न;

पूछा जाये कि कितना चले हो तुम? तो कहेगा–पचास कोस।

अब यह पूछा जाये उस बैल से कि तुम पहुँचे कहाँ हो? तो क्या कहेगा कि मैं सवेरे जहाँ से चला था शाम को भी वहीं खड़ा हुआ हूँ, चला बहुत हूँ लेकिन पहुँचा कहीं भी नहीं।

हम सब चल रहे हैं, रोज़ दौड़ रहे हैं, बहुत पुरुषार्थ कर रहे हैं लेकिन देखा जाए, पूछा जाए कि कहाँ पहुँचे हो?—आदमी क्या कहेगा कि आज भी वहीं हैं जहाँ कल खड़े थे-वही उलझनें, वैसी ही परेशानियां, उसी तरह के ताम-झाम, वैसे ही झंझट, बाहर आ ही नहीं पाए। चलते-चलते थक गए, शरीर खराब हो गया, सामर्थ्य टूट गया लेकिन कहीं पहुँच नहीं पाए। तो उस दायरे में घूमते रहोगे अगर आसक्ति के दायरे मे बँध गए इसीलिए व्यवस्थायें रखी गईं-गृहस्थ में हो, सन्तान के पालन-पोषण का समय है, अच्छे ढंग से कार्य पूरा करो, सन्तान को प्रेम दो लेकिन उनसे मोह न रखो और धीरे-धीरे अपनी मोह की धारा को ऐसे तोड़ते चले जाओ कि जब छोड़ने का समय आये तो गृहस्थ को छोड़कर वानप्रस्थ की ओर कदम रखना, एक ही जगह पड़े मत रह जाना और वानप्रस्थ से भी आगे बढ़कर सन्यासी हो करके जा सको, परमतत्त्व को पा सको यह लक्ष्य बताए।

जैसे-जैसे हम संसार में उलझते जाते हैं हमारी सारी शक्ति न जाने कहाँ खर्च हो जाती है, उड़ान खत्म हो जाती है, और रोज़ आदमी उलझ रहा है। मोह-ममता के धागे इतने गहरे हैं उनको तोड़ पाना, उनसे बाहर निकल पाना आसान तो नहीं है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है परिवार से मोह बढ़ता जाता है; परिवार के लोग चोट भी बहुत लगाते हैं लेकिन उस चोट का भी कोई परिणाम नहीं निकलता फिर वहीं उसी दायरे में आकर खड़े हो जाते हैं। भगवान ने यह बड़ा प्यारा सन्देश दिया।

इसके बाद अर्जुन ने एक प्रश्न किया कि ऐसी बुद्धि वाला मनुष्य, ऐसा मन वाला व्यक्ति ज्ञानी हो जाए, कर्म करने का ढंग जिसे आ जाये, ऐसे व्यक्ति को, जो जागृत मनुष्य है, जिसकी बुद्धि डांवाडोल नहीं है, चित्त जिसका चलायमान नहीं है वह दुनिया में कैसे रहता है? कैसे चलता है? कैसे बोलता है? उसके बारे में कुछ बताइये।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।

जो स्थितप्रज्ञ है, बुद्धि जिसकी स्थिर है, ज्ञानी, संसार से ऊपर उठा हुआ, एक संन्यासी का जीवन जीने वाला, कोई सन्त का जीवन जीने वाला व्यक्ति, भले ही कैसे किसी भी भेष में रहता हो, किसी भी परिवेश में रहता

हो, किसी भी स्थिति और परिस्थित में रहता हो, लेकिन जो अन्दर से जागृत है, ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में अर्जुन पूछता है-*स्थितप्रज्ञस्य का भाषा* ऐसे स्थितप्रज्ञ की भाषा कैसे होती है? कैसे बोलता है वह? और जो समाधिस्य है, समाधि का आनन्द लेना जान गया, उस व्यक्ति के सम्बन्ध में बताओ-वह कैसे बोलता है? क्या उसकी भाषा होती है? कैसे बैठता है? कैसे चलता फिरता है? व्यवहार कैसा होता है उसका?

भगवान समझाते हैं –

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मा तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।

–*प्रजहाति यदा* – जो व्यक्ति, *प्रजहाति* – छोड़ देता है, *यदा कामान्* – कामनाओं को; *सर्वान् मनोगतान्* –मन में उठती हुई समस्त प्रकार की कामनाओं को जो छोड़ता है, त्यागता है; *आत्मन्येवात्मा तुष्टः* – अपने आपे में जो संतुष्ट है, वह व्यक्ति स्थितप्रज्ञ है।

यह उपदेश बहुत ही सुन्दर, मार्मिक और जीवन को दिशा देने वाला है-वैसे तो भगवान की प्रत्येक वाणी और शब्दावली अपने आपे में अनोखी है लेकिन जो जीवन के साथ और आज के दौर में या हमारी समस्याओं के साथ ज़्यादा मेल खा रहा होता है हम लोग उस चीज़ को ज़्यादा अनुकूल समझते हैं। वैसे तो सारी चीज़ हमारे ही कल्याण के लिए है लेकिन भगवान समझाते हैं –

जब व्यक्ति समस्त कामनाओं को छोड़ देता है, मन में उठती हुई समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है और अपनी आत्मा में ही सन्तुष्ट होता है तब वो स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

ऐसे समझिये-*शान्ति की चाह हो तो चाह से शान्ति करना;* अगर शान्ति की इच्छा है मन में कि मेरा जीवन शान्तिपूर्ण हो, तो इच्छाओं की शान्ति करो; जो कामनायें हैं उनकी शान्ति करो। बहुत-बहुत चाह रहेगी तो जितनी चाह उतनी चिन्तायें और जैसे ही चाह हटेगी चिन्ता भी भागेगी।

चाह गई, चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह ।

जिसको कछु ना चाहिए, वो शाहों का शाह ।।

जिसको कोई कामना नहीं हो शहंशाह हो जाता है। *"मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः"* भर्तृहरि ने कहा- जिसका मन अन्दर से सन्तुष्ट है, न फिर वह दरिद्र और न फिर वह धनी, वह तो अपने आपे में ऐसी समृद्धि से, ऐसे आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है कि जिसका कहीं अन्त नहीं है। सबसे-बड़ी चीज़ है कि अपने अन्दर की सन्तुष्टि हमें मिलनी चाहिए, अन्दर का सब्र मिलना चाहिए।

दुर्भाग्य यह है कि हम कुछ भी करते हैं, किधर भी जाते हैं, कुछ भी जीवन में कार्य करते हैं लेकिन अन्दर से सन्तोष किसी के मन में भी नहीं है और बेसब्रापन हमारे जीवन को इतना खोखला करता है, हर समय इसीलिए अशान्ति रहती है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं दुनिया में, थोड़ी-सी वस्तु प्राप्त हो जाने के बाद भी उसी में सन्तुष्ट हैं। कुछ वह लोग हैं कि जिनको बहुत मिल जाए लेकिन सन्तुष्टी नहीं है उन्हें, सब्र नहीं है।

कोई व्यक्ति आकर कहता है कि तीस हज़ार रुपये महीना कमाता हूँ लेकिन गुज़ारा नहीं चलता, ऐसा आशीर्वाद मिले कि पचास हज़ार रुपये महीना कमायें।

हमने पूछा कि आपके ड्राईवर को आप कितनी तनख्वाह देते हैं?

बोले – तीन हज़ार।

मैंने पूछा उसका गुज़ारा चलता है? बोले-हाँ जी, वह तो बड़ा खुश है, बड़ा सन्तुष्ट है, उसका तो काम ठीक से चल रहा है।

उसका परिवार कितना है?

कहता है – मेरे से तो छोटा है, उसके बच्चे ज़्यादा हैं।

रिश्तेदार? बोले – रिश्तेदार भी काफी होंगे।

तो उसका तीन हज़ार में गुज़ारा ठीक से हो रहा है, तुम्हारा तीस हज़ार में नहीं हो पा रहा। पचास हज़ार लेने के बाद क्या तुम्हें सन्तुष्टि हो जायेगी?

बोले – उम्मीद तो है।

हमने कहा-पचास हज़ार क्या, लाख़-दो लाख़ महीना मिले तो भी तसल्ली होने वाली नहीं क्योंकि आपकी आदतें वैसे ही फैल जायेंगी, उसी तरह खर्चा करोगे, उसी तरह की स्थितियाँ बन जायेंगी, और की कामना बनी रहेगी और अगर जिसको तीन हज़ार मिल रहे होते हैं उसको पोने तीन हज़ार भी मिलेगा वह उसमें भी आनन्द से रह लेगा क्योंकि उसके जीने का अन्दाज़ अलग़ है और तुम्हारे जीने का अन्दाज़ अलग़ है, इसीलिए पैसा अधिक या कम होने से इतनी बात नहीं बनती साधन कम या अधिक होने से उतनी बात नहीं बनती जितनी कि अपने आपको उसमें एड्जस्ट करते हुए, सन्तुष्ट कर लेने में आनन्द है।

हालांकि इतना तो होना ही चाहिए कि जैसे दवा को आप न ज्यादा अधिक ले सकते हैं न कम ले सकते हैं अगर अधिक लोगे तो दवाई नुकसान करेगी और कम लोगे तो दवाई लाभ नहीं करेगी। तो संसार के साधन इतने तो होने चाहिएं कि ठीक से कार्य चल सके लेकिन इतने अधिक की कामना कभी नहीं करना कि जिसका कहीं अन्त ना हो, असन्तोष मन में आता जाए, अशान्ति बढ़ती जाये।

इसीलिए नियम है अपने आपको कामनाओं से मुक्त करो; जो बहुत आवश्यक है वह आपको मिलना चाहिए, उतना करो लेकिन अनावश्यक के लिए दौड़ना नहीं चाहिए। अब आवश्यक कितना हो सकता है इसकी भी आप अगर कल्पना करें तो हैरान होंगे।

भर्तृहरि राजा थे और समृद्धि के सुन्दर भवन में रह रहे थे-हज़ारों दास दासियां हाथ बांधे सामने खड़े होते थे। मन में जागा वैराग्य, वैराग्य की भावनायें – अब साधु बनेंगे, परमात्मा के गीत गायेंगे, कन्दमूल–फल खा लेंगे और पेड़ों के नीचे सोयेंगे, सर्दी-गर्मी-बरसात को सहेंगे – मन में ऐसा भाव लेकर के निकल पड़े लेकिन चलते-चलते सोचने लगे क्या चीज़ साथ जानी चाहिए वन के लिए? उन्होंने कहा भाई, सोने के लिए जरूर ज़मीन पर सो जायेंगे लेकिन तकिया तो चाहिए, सिराहना तो चाहिए, भोजन करने के लिए भले ही और कोई-चाहे कन्दमूल फल खायें, पानी वानी पीना होगा, भोजन खाना होगा तो एक बर्तन तो चाहिए।

तो एक कमण्डल जैसा बर्तन, कोई गढ़वा, कोई लोटा जैसा एक पात्र हाथ में लिया और तकिया बगल में दबाया; तपस्या करने के लिए भर्तृहरि चल पड़े।

अभी चले ही थे कि रास्ते में उन्होंने देखा कि एक मज़दूर पत्थर तोड़कर, थका हुआ, पेड़ के नीचे आराम कर रहा है। बड़ी गहरी नींद सो रहा है लेकिन उसने किया क्या कि तकिया की जगह अपना हाथ मोड़कर, कोहनी को मोड़कर के अपने सिर के नीचे रखा हुआ था, हाथ को ही मोड़कर नीचे रखा हुआ है और बड़े प्यार से सो रहा है।

भर्तृहरि बैठकर के बड़े ध्यान से देख रहे हैं – अच्छा यह इसका तकिया है।

अब राजा, जिसने कभी इस तरह से ध्यान से नहीं देखा था, पहली बार देखा तो देख करके कहता है इसका मतलब तकिये का बोझ उठाकर घूमना अच्छी बात नहीं।

सोचने लगे मज़दूर को तकिया देता हूँ, फिर सोचने लगे मज़दूर भी क्या करेगा इसका, उसका तकिया तो उसके साथ ही है, उठाकर के फेंक दिया उस तकिया को।

अब आगे चला सोचता हुआ कि बर्तन तो साथ रखना ही पड़ेगा और आप जानते हैं कि योग दर्शन में या योगी व्यक्ति के लिए एक व्यवस्था दी गई है– परिग्रह से बचना है, संग्रह से बचना है, जोड़ से बचना है, इकट्ठा करने की आदतों से बचना है, जितना जितना सामान ज़्यादा इकट्ठा करोगे उतनी ज़्यादा उलझनें पैदा होंगी।

यात्रा का भी एक नियम है – ट्रेन में लिखा हुआ होता है न "कम सामान ले चलिए और सुख से यात्रा कीजिए", अगर यात्री सही करना चाहते हो तो सामान कम से कम रखो, इतना रखो जितना खुद आराम से उठाकर ले जाओ। कई लोग तो ऐसे होते हैं कि तीन-तीन कुली लगे हुए हों सामान उठाने के लिए तब भी उनका पूरा नहीं होता और उन लोगों का ट्रेन में सवार होने के बाद भी दिल धड़क रहा होता है-पूरा सामान आया कि नहीं आया, नग गिन रहे होते हैं और उसके बाद अगर बैठ भी गए, ट्रेन चल भी पड़ी तो आगे जहाँ स्टेशन पर उतरेंगे वहाँ की घबराहट-कुली मिल भी जायेगा या नहीं मिलेगा?

ट्रेन थोड़ी देर के लिए रुकेगी, सामान उतारने में मुश्किल पड़ेगी—घबराहट बनी रहेगी। जितना ज़्यादा सामान उतनी यात्रा मुश्किल और जितना कम सामान उतना यात्रा में ज़्यादा आराम और इस जीवन की यात्रा में तो सब कुछ छोड़ना ही पड़ता है।

भर्तृहरि भी चलते हुए सोच रहे हैं तकिये का भार छूटा लेकिन लोटा तो चाहिए साथ में, पानी पीना होगा इसमें पी लेंगे, भिक्षा माँगेंगे, इसी में डालकर के खा लेंगे।

आगे चलकर के देखते हैं एक किसान अपने खेत से काम करने के बाद प्यास लगी तो पानी पीने के लिए झरने पर गया और झरने पर उसने दोनों हाथ आगे बढ़ा करके, अंजलि बनाकर, के पानी पीना शुरू किया।

भर्तृहरि ध्यान से देखता है, देख करके कहते हैं – अच्छा, यह तो कटोरा इसके पास बहुत अच्छा है।

फिर देखता है कि एक व्यक्ति भोजन कर रहा है बैठा हुआ, एक हाथ पर उसने रोटी रखी हुई है, उसी पर उसने थोड़ी सब्ज़ी रखी हुई है और दूसरे हाथ से तोड़ तोड़कर खा रहा है।

भर्तृहरि कहते हैं – अच्छा, थाली भी हाथ को ही बना दिया भगवान ने और चम्मच भी पकड़ने के लिए दूसरे हाथ को बना दिया भगवान ने, तो एक हाथ थाली भी है मतलब यही हाथ हमारा थाली भी है, यही गिलास भी है, यही कटोरी भी है, यही गढ़वी भी है तो फिर इस गढ़वी को जो चाँदी की, सोने की, पीतल की, हम साथ लिए घूम रहे हैं अब इसको साथ ले जाने का क्या फ़ायदा, इसको तो फेंका जा सकता है; उठाकर के फेंक दिया और उसके बाद उसने कहा – भगवान तुमने तो सब कुछ मेरे साथ दे ही रखा है, मैं व्यर्थ की चीज़ों को जोड़ता हुआ घूम रहा हूँ, अगर तेरी भक्ति करनी है तो मुझे यह सारी चीज़ें छोड़नी पड़ेंगी, और छोड़कर के आगे बढ़ गया।

तो भगवान कृष्ण ने समझाया कि जो अपने मन के अन्दर उठती हुई कामनाओं को छोड़ दे और अपने आपे से अपने अन्दर सन्तुष्ट होना सीख जाये, ऐसे व्यक्ति को मानना उसकी बुद्धि स्थिर हुई है।

स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति योग की तरफ चलने में समर्थ होगा।

बुद्धि का स्थिर होना बहुत ज़रूरी है – हमारी बुद्धि डाँवाडोल है, संसार की तरफ भाग रही है, पदार्थों को इकट्ठा करने में लगी हुई है और बिल्कुल बात विचित्र है। दुनिया में तरह-तरह के समृद्ध लोगों के बारे में अगर आप राय लें, सब लोग अपने जीवन में कहीं न कहीं कुछ न कुछ अलग तरह का अभाव महसूस करते रहे-चाहे ऐन्ड्रयू कॉरनेगी हो, रॉक फैलर हो, हैनरी फोर्ड हो-यह समृद्ध लोग थे।

ऐनड्रयू कॉरनेगी ने कहा था कि जितना मेरे पास धन है – दस अरब डॉलर – मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ, नब्बे अरब डॉलर जब हों तो सन्तुष्टि मिलेगी और उसने यह बात मरते समय कही थी, मरने से कुछ ही दिन पहले।

तो सन्तुष्टि कहीं नहीं हो सकती, कितना भी इकट्ठा कर लेना क्योंकि इस धन का या संसार के संग्रह का अजीब ही तरह का नशा है, यह जितना हमारे पास हो जाये उतना ही कम नज़र आता है। और अन्दर सन्तुष्टि आने लग जाए तो व्यक्ति अपने थोड़े में आनन्द मनाने लग जाता है।

भगवान आगे फिर कहते हैं –

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।

– जो दुःख से उद्विग्न नहीं होता और सुख की चाह को अपने मन से तोड़ देता है – क्योंकि हमारे मन में ऐसे भाव उठते हैं, जिस चीज़ से सुख मिला होता है हम उसके पीछे दौड़ रहे होते हैं – और सुख मिल जाए और सुविधा मिल जाए–कि जो इस स्वाद को तोड़ दे, कठिनाईयों का मार्ग अपनाए हँसते हुए और दुःख आयें तो उद्विग्न न हो, बेचैन न हो; *वीतरागभय क्रोधा:*– राग जिसका टूट गया, भयभीत है नहीं, *क्रोध:* – क्रोधित नहीं करता – कहते हैं ऐसा व्यक्ति, जिसकी बुद्धि स्थित हो गई; *स्थितधीर्मुनिरुच्यते*-वही सन्त है, वही मुनि है, वही साधक है और ऐसी साधना की आवश्यकता है।

समझिये-किसी भी तरह की हमारे सामने स्थितियाँ हों, चाहे बहुत दुःख हो, परेशानियाँ हों, उद्विग्न न हों, बेचैन न हों, और सुख की कामना में रात दिन दौड़ भाग करते हुए नज़र न आयें, मतलब कोई स्वाद मिलेगा तो वह

बार-बार अपनी तरफ खींचता है-और, और, और की कामना करता है और जिस जगह से चोट पड़ेगी उधर के प्रति शोध, गुस्सा आयेगा और बार-बार आपका मन वहाँ जायेगा – या तो बदला लेना चाहेगा या निन्दा करना चाहेगा या कल्पता रहेगा अन्दर से – अग़र शान्त होना चाहते हो तो दोनों स्थितियों को तोड़ दो। कबीर ने जैसे कहा-

कबीरा तेरी झोंपड़ी गल कटियन के पास ।
जो करेंगे सो भरेंगे तू क्यों भया उदास ।।

ऐसे लोगों के बीच रह रहे हो जो आस-पास कसाई हैं तो देख देख कर क्यों दु:खी हो रहे हो? जो कर्म यह कर रहे हैं अपना भोगेंगे, तो किसी को देख देख कर क्यों दु:खी होता है, क्यों जलता है, क्यों परेशान होता है? मन की दशा ऐसी बनानी होगी देख-देख के व्याकुल होना, परेशान होना, बुरा चाहते रहना, इस सब को छोड़ दो। एक और महत्त्वपूर्ण चीज़ – बहुत कामनायें हों, सबकी चाह हो, व्यक्ति बड़ा आशंकित रहता है-सुख की चाह है, शायद भाग्य अनुकूल है तो कुछ चीज़ें मुझे मिल गई पर अब जो नहीं मिल रहीं इसका मतलब भाग्य साथ नहीं दे रहा, समय ठीक नहीं चल रहा।

मालवा देश के राजा थे–यशोवर्मा–आदत पड़ गई थी बात बात में राज-ज्योतिषी को साथ रखने की। अब राजज्योतिषी हर समय बैठकर हिसाब बताये – आज आप के गृह आपके अनुकूल हैं, कभी बताए शनि की वक्र दृष्टि है, कभी बताए कि मंगल अब मंगलकारी नहीं है, कभी बताए कि आज दिशा शूल है, इस दिशा में नहीं जा सकते। राजा हर समय उसी चक्कर में रहता था।

इधर किसी देश के राजा ने उसे ललकारा और वह बढ़ती हुई शत्रु सेना इस देश की तरफ़ आ रही है। राजा ने अपने आदमियों से कहा कि तुम लोग लगे रहो लेकिन साथ में यह भी कहा कि अगले आदेश की प्रतीक्षा करो।

राजा ज्योतिषी से पूछता है – भास्कर नाम का ज्योतिषी – हिसाब देख कर के बताता है कि अभी आपका हमला करना ठीक नहीं है, समय ठीक नहीं है और क्योंकि हमला आपके सामने पूरब दिशा से हुआ है तो दिशा शूल उधर

ही है, उस दिशा में हम नहीं जा सकते, समस्या बन जायेगी। हारेंगे भी सही, हालत बड़ी खराब हो जायेगी और फिर हाथ देखकर बताया कि अब आपके हाथ की यह रेखा जो उभर रही है यह तो बिल्कुल ही मुसीबत पैदा करने वाली है।

राजा कहने लगे-तो इसका मतलब पूरब दिशा की तरफ न जाकर पश्चिम दिशा की तरफ जाना चाहिए?

बोले-हाँ, इधर की तरफ चलना है।

राजा उधर की तरफ सैर करते जा रहे हैं और इनका जो मंत्री है वह बार-बार कहता है कि – महाराज, इनकी तरफ मत देखिये, अपने प्रभु की तरफ देखिए। राजा डाँटता है उसको और कहता है यह भी ज्ञान है ज्योतिष, इससे लाभ लेना चाहिए।

अब हिसाब किताब देखा जा रहा है-वह ज्योतिषी बता रहा है कि अभी आप एक हफ्ते तक हमला करने की स्थिति में नहीं हैं, जवाब देने की स्थिति में नहीं हैं क्योंकि इस समय आपके ऊपर शनि का बड़ा भारी प्रभाव है, राहू भी दबाव डाले हुए है, मंगल की दशा भी अच्छी नहीं; अब यह सारा सुनने के बाद किसकी दशा, किसकी महादशा, किसकी प्रत्यन्तर दशा, किसकी वक्र दृष्टि, कौन पापगृह, कौन क्रूरग्रह राजा कहता है ठीक कह रहे हो ज्योतिषी महाराज, ठीक कह रहे हो आप।

राजा यशोवर्मा और ज्योतिषी भास्कर अभी थोड़ी दूर चले ही थे कि एक किसान सामने से जाता दिखाई दिया।

ज्योतिषी ने कहा – सुनो भाई, इधर कहाँ जा रहे हो?

किसान बोला-साहब इधर हमारे खेत हैं।

'अरे तुम्हें पता है इधर नहीं जाना, आज दिशा शूल है, हानि हो सकती है, चोट लग सकती है, नुकसान हो सकता है, इधर जाना ठीक नहीं है, ज़रा हाथ दिखाओ, इधर आओ।'

किसान बेचारा आगे आया। राजा सामने हैं, राज ज्योतिषी सामने है तो करता भी क्या?-हाथ आगे किए उसने लेकिन हाथ किए तो हथेलियाँ नीचे और इसके जो पृष्ठ भाग हैं वह ऊपर रखा।

ज्योतिषी ने गुस्से में आकर कहा-कैसा मूर्ख आदमी है। हथेली आगे करो, हाथ देखेंगे, हाथ की रेखा देखेंगे।

उसने एकदम अपनी मुट्ठी बन्द कर ली और कहा-साहबजी, दूसरों के आगे तो हथेली वे फैलायेंगे जिनको माँगने की आदत है, हमें तो कमाने की आदत है, हम किस लिए हाथ फैलाएें? और आप कहते हो दिशा शूल है; महाराज, मेरे खेत हैं इधर और मैं यहाँ रोज़ जाता हूँ, और रोज़ जाने का मतलब यह है कि मैं तीस सालों से इधर जा रहा हूँ; बीस साल का था जब अपने खेत में स्वतन्त्र होकर कमाने के लिए मैंने जाना शुरू किया, अब न जाने तब से लेकर अब तक कितनी बार दिशा शूल आया होगा, अगर मैं आपके हिसाब से विचार करूँ तो मेरा तो न जाने अब तक कितना नुक़सान हो गया होगा, कितना मैं तबाह हो गया हूँ लेकिन मुझे तो अपने खेतों की तरफ से हमेशा ही आनन्द मिला है, रोज़ी रोटी उसी से चली है, बल्कि मैंने सिर पर पगड़ी बाँध रखी है, मेरी पगड़ी तो ऊँची रखी है मेरे खेत ने और मेरे कर्म ने; यह जो हाथ फैलाने की आदत है महाराज, इससे कुछ बनने वाला नहीं।

ज्योतिषी कहने लगा-तुझे पता होना चाहिए क्रूर दृष्टि लेकर कोई गृह जब देखता है तो कितना विनाश होता है।

किसान हँसा और हँसकर के बोला-मालव देश का वासी हूँ और मेरे देश में महाकाल का स्थान है (भगवान महाकाल-शिवजी भगवान-महाकाल का स्थान है), हर समय 'महाकाल की जय' बोलता हूँ और महाकाल के सामने अगर काल भी आ जाए तो महाकाल तो उसे भी खा जायेगा और भगवान ने तो तुझे कर्म करने के लिए प्रेरित किया हुआ है, इसीलिए अपने हाथों की रेखाओं को जब हल पकड़कर के चलता हूँ तो दुर्भाग्य की रेखा भी हो तो उसे भी अपने कर्म से मिटा देता हूँ, इसीलिए 'महाकाल की जय' बोलकर के अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदल रहा हूँ।

इतना सुनना था, इससे पहले कि ज्योतिषी आगे कुछ बोलता, राजा को गुस्सा आ गया। ज्योतिषी की तरफ देखा और कहा-भाग यहाँ से; मैं अपना भाग्य आज अपने हाथों से निर्माण करूँगा।

राजा के मुँह से 'जय महाकाल' की आवाज़ आनी शुरू हुई और उसी समय राजा ने शत्रुओं पर हमला किया।

राजा जीत कर जब वापिस आया तो अपने मन्त्री भानुमित्र से कहता है कि आज पता चला हाथों की रेखायें कर्म से बदल जाती हैं, इन्सान अगर अपना पुरुषार्थ करे और अगर निराश हो करके बैठ जाए तो दुर्भाग्य सिर पर सवार रहेगा। अब पता लगा कि परमात्मा ने कोई भी दिशा ऐसी नहीं बनाई जो बुरी दिशा हो; असल में मन की दशा ही अगर बिगड़ गई है तो फिर दिशा भी आपको ख़राब करेगी और अगर आप मन की दशा को ठीक कर लें तो आपकी सारी दिशायें ठीक हो जायेंगी-असली चीज़ तो यही है।

इसीलिए कहा-संसार में निरन्तर कर्त्तव्य कर्म करना और कामनायें जो हमें संसार में बाँध रही हैं उनसे ऊपर उठे रहना, यह जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

अगर एक दिशा में हम ठीक नहीं हो पाये, न कुछ प्राप्त कर पाये तो दूसरी दिशा में प्रयत्न कर लेना चाहिए, हो सकता है उस क्षेत्र में हम ज्यादा आगे बढ़ जायें, हो सकता है ज़्यादा अच्छा स्थान बना लें।

हम लोग आदिवासी क्षेत्र में गए, आदिवासियों के बीच में काम करने वाले कुछ लोग देखे। एक बहुत अच्छी चीज़ वहाँ देखने को मिली-कुछ लोग जो सेवक बनकर के आदिवासियों क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, भगवान को बहुत मानने वाले लोग, उन्होंने आदिवासियों को इकट्ठा करके कहा कि देखो यह जो ज़मीन पड़ी हुई है, यह भूमि माता है, इसमें हल चलाओ और भगवान का नाम लेकर बीज बो, अच्छी फसल होगी। कर्त्तव्य अच्छे ढंग से निभाना। जो अत्यावश्यक वस्तुओं की कमी है, अभाव है, वह अभाव तुम्हारा इससे दूर होगा।

वह लोग बात मानकर इकट्ठे हुए, खेत की जुताई की; जब बीज़ बोने का समय आया तो एक सेवक बता रहा था कि हमने क्या किया कि आदिवासियों को इकट्ठा करके उन सबसे कहा-हाथ जोड़ो; हाथ जोड़कर प्रार्थना करो कि मेरे भगवान ऐसा फल देना कि घर का कार्य ठीक से चल जाए, जीवन ठीक से बीत जाए; माँगना भी यही चाहिए अगर माँगना पड़े-

साईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाए ।
मैं भी भूखा न रहूँ मेरा साधु न भूखा जाए।।

अब बहुतों की फसल बहुत अच्छी हुई, लेकिन एक की बिल्कुल ठीक नहीं हुई। अब क्योंकि वह तो आदिवासी था, पूरा विश्वास करने वाला व्यक्ति था, अब उसकी फसल अच्छी नहीं हुई तो वह तो डण्डा लेकर आ गया उसके पास जिस आदमी ने प्रार्थना कराई थी, अब डण्डा लेकर के आया और कहने लगा कि और सबकी तो अच्छी फसल हुई पर मेरी अच्छी फसल क्यों नहीं हई? प्रार्थना तो मैंने भी की थी, पुरुषार्थ तो मैंने भी पूरा किया था- वह लड़ने को तैयार हो गया।

अब जो सेवक थे वह बेचारे घबराये लेकिन भगवान पर ध्यान था, भरोसा था; उन्होंने प्यार से उसे बैठाया और कहा कि हो सकता है भगवान तुम्हें दूसरे काम से जोड़ना चाहते हों। तुम ऐसा करो दो गऊऐं रखो, हम दिलवाते हैं। उनके दूध से अपना काम शुरू करो।

और सच में उसने गऊऐं रखनी शुरू कीं और गऊऐं जो रखनी शुरू कीं तो उनसे जो दूध आता था उसको बाज़ार में बेचे और इस तरह से काम उसका बढ़ता चला गया। अब एक साल ही उसे ऐसे करते हुए हुआ, और लोगों से वह ज़्यादा समृद्ध हो गया।

तो जिस दिन हम लोग वहाँ पर पहुँचे बहुत सारे आदिवासी इकट्ठे हुए थे, तो व्यक्ति जो महत्वपूर्ण व्यक्ति था, सेवक था वहाँ का, करनल बख़्शी के नाम से प्रसिद्ध है, तो उसने कहा कि यह व्यक्ति अब आया हुआ है, कहता है कि ज़रा पूछ के बताना कि भगवान अब आगे क्या आदेश कर रहे हैं-आगे यही कर्म करता रहूँ या दूसरा कुछ काम करूँ?

मैंने पूछा करनल से कि आपने क्या जवाब दिया?

कर्नल ने कहा कि मैंने उससे कहा कि भगवान मेरे से पूछता है या मैं भगवान से पूछता हूँ बात यह नहीं है; भगवान तो तुम्हारे दिल में रोज़ बोलेंगे, भगवान ने तुम्हें जिस काम पर लगा दिया है उसी में लगे रहो और अन्दर से पूछते रहो कि मैं ठीक कर रहा हूँ ना? किसी को सता तो नहीं रहा हूँ? किसी को दु:ख तो नहीं दे रहा हूँ? तुम्हारे अन्दर आवाज़ आने लग जायेगी तो अपनी आवाज़ को अन्दर से सुनने की कोशिश करो।

वह आदिवासी पूछता है-कौन सी भाषा में बोलेगा वह? भगवान आदिवासी की भाषा जानता है क्या?

तो कर्नल बख्शी उसे समझाते हैं – हाँ, भगवान को तुम्हारी भाषा भी आती है क्योंकि वह तुम्हारे ही हैं।

अब उसके बाद क्या हुआ मुझे भी नहीं पता क्योंकि मैं उतना ही जानता हूँ कि उस व्यक्ति ने वहाँ आकर के यह बात कही लेकिन एक बात में जानता हूँ और आपसे भी कह रहा हूँ एक जगह सफलता नहीं मिली, हो सकता है दूसरे क्षेत्र में सफलता मिल जाए लेकिन घबराना नहीं चाहिए और दूसरे क्षेत्र में बढ़कर के अपना जो कर्त्तव्य कर्म है उसे करो पर बहुत राग, भय, आवेश अगर आ रहा है तो उसका मतलब है कि हमारी बुद्धि स्थिर नहीं है, अपने को वहाँ संतुलित करो।

किसी भी काम को करते समय अगर आप झुंझलाहट में आने लगे हैं तो फिर उस काम का स्वाद खत्म हो जायेगा। स्वाद अगर लेना है तो खीज नहीं आनी चाहिए, हँसते मुस्कुराते हुए अपने कर्म को करते चले जाओ।

आधुनिक युग में यह बात भी सामने आई है कि अगर बच्चों को विद्या भी पढ़ानी है तो खेल खेल में विद्या पढ़ाओ, ज्ञान सीख जायें, खेल खेल में पढ़ें। गोरखनाथ ने तो कहा –

हसीबा खेलीबा धरीबा ध्यानम्

भगवान का ध्यान भी करना हो तो हँसते, खेलते, मुस्कुराते, गाते गुनगुनाते हुए, जिसमें प्राणायाम खींचते खींचते आदमी बहुत तनाव लाकर के बैठ जाए वह ध्यान जो तनाव बन जायेगा वह ध्यान भी ध्यान नहीं है; वह विधियाँ जिनमें आदमी अपने आपको कष्ट देते देते अपने पाँव को सुजाए–कई लोग खड़ी तपस्या कर रहे होते हैं, फिर वह शरीर को कष्ट देने वाली स्थिति है–तो कर्म को खेलते हुए, हँसते हुए, मुस्कुराते हुए करना सीख जायें, बुद्धि सन्तुलन में बनी रह जाए, तो इसका मतलब है कि हम योगी हो गए हैं क्योंकि भगवान कृष्ण ने योग नाम दिया है-

समत्वम् योग उच्यते

समत्व का नाम योग है, सन्तुलन का नाम योग है –

योगा: कर्म कौशल:

कर्म को कुशलता से करने का नाम योग है। कोई भी कर्म तुम्हें करने के लिए दिया गया है, खूबी के साथ करके दिखाओ।

भगवान ने तो रथ चलाया, रथ हाँका लेकिन वह कर्म भी सुन्दर बन गया।

कबीर ने तो ताना-बाना बुना और ताना-बाना बुनते ही गीत गाए। कबीर के लिए वह ताना-बाना भी भक्ति बन गया।

तिरुवल्लुवर साड़ियाँ बुनते रहे और भगवान के गीत गाते रहे, उसी में प्राप्ति कर ली अपने प्रभु की।

रतना जाट खेती करता रहा और अपने प्रभु को प्राप्त करता रहा।

कोई भी कर्म जो भी आप कर रहे हों उसी में प्रभु का ध्यान करो-अगर मोह जगाना है, प्यार जगाना है तो वह अपने प्रभु का, उस में ऐसा कुछ भाव पैदा कर लो, उस को अर्पण करते हुए चलते चले जाओ।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधेऽभिजायते ।।

सङ्गात्सञ्जायते काम: – संग पैदा होगा तो कामनायें पैदा होंगी अर्थात् संग से कामनायें पैदा होंगी; *कामात्क्रोधोऽभिजायते:* और कामना पूरी ना हो तो क्रोध आयेगा। कामनायें हों तो लोभ बढ़ता है, लोभ बढ़ता है तो कामनायें बढ़ती हैं, कामनायें पूरी न हों तो क्रोध बढ़ता है, क्रोध बढ़ता है तो व्यक्ति का व्यक्तित्व टूटता है, उलझ गया संसार में, बिखर गया संसार में। तो कामनाओं से क्रोध उत्पन्न होता है – *क्रोधाद्भवति सम्मोह:* – क्रोध आयेगा तो सम्मोहन पैदा हो जायेगा, कैसा सम्मोहन? *किम्कर्त्तव्यविमूढ़* हो जायेगा आदमी – क्या करूँ, क्या नहीं करूँ? अच्छा, बुरा, कुछ होश नहीं रहती।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम: – भगवान आगे फिर कहते हैं, मन की दशा का वर्णन करते हैं, जब सम्मोहन आता है- क्रोध के बाद मोह वाली स्थिति, कि फिर अपने स्वरूप का ध्यान नहीं रहता, ज्ञान लुप्त हो जायेगा उस समय, समझ काम नहीं करेगी; *स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो:* – स्मृति भ्रष्ट होगी तो बुद्धि डाँवाडोल हो जायेगी; *बुद्धिनाशत्प्रणश्यति* – और बुद्धि का नाश हो गया तो व्यक्ति का विनाश हो गया, बहुत अनर्थ कर लेता है व्यक्ति अपना।

कोई भी हानि, बड़ी भारी हानि हो जाये, चोट खा जाओ, दुःख उठाओ, उसके पीछे की बात बता रहे है-किसी भी चीज़ का ध्यान करते जाओगे संग पैदा होगा, संग से कामनायें पैदा होंगी, बढ़ते-बढ़ते वह कामनायें पूरी नहीं हो पा रही, उलझनें बढ़ती जा रही हैं तो क्रोध उत्पन्न होगा, क्रोध के बाद में फिर विनाश की दूसरी लहर पैदा होगी; कहा कि इसको तोड़ना सीख जाओ, शुरुआत जहाँ से हो रही है वहीं से उसको छोड़ना शुरू कीजिए, कैसे?

किसी वस्तु की कामना मन में जागी-यह वस्तु मेरे पास होनी चाहिए-और उस वस्तु की प्राप्ति के लिए आप अपनी पूरी शक्ति लगाते हैं, उस शक्ति लगाने का परिणाम—अगर कोई आदमी आपके सामने बाधक बन रहा है उसको पूरा करने में, आपको उसके प्रति गुस्सा आयेगा, हो सकता है वैर भाव पैदा हो जाए, हो सकता है लड़ाईयाँ शुरू हो जाएँ-कि यह बाधक है, मेरी कामना पूरी नहीं होने देना चाहता-सारी दुनिया भर की लड़ाईयों के पीछे यही कुछ है और उस समय फिर जब ईर्ष्या, द्वेष, वैर भाव पैदा हो जाए-देखिए जा करके कचहरी में कभी किसी से भी पूछो लड़ाई का कारण, बहुत छोटा-सा और जैसे कोई चिंगारी बढ़ते-बढ़ते भयंकर रूप धारण कर लेती है बिल्कुल वैसे उनकी लड़ाईयों में अपना रूप धारण कर लिया, इतना भयंकर रूप कि एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए; जेलों में पड़े हुए लोगों को जाकर देखिए और हर व्यक्ति कहता है-काश कि हम उस समय अपने आप को संभाल ले जाते।

सुल्ताना नाम का एक डाकू था। उसको जब फाँसी होने लगी, तो उसने अपनी अन्तिम इच्छा ज़ाहिर की कि मैं अपनी माँ से मिलना चाहता हूँ।

उसकी माँ को बुलाया गया।

माँ जैसे ही पास में आई इसने कहा – माँ, ज़रा और नज़दीक आ।

माँ के कान को ज़ोर से काट लिया इसने; खून बहने लगा; माँ चिल्लाई ज़ोर से। पुलिस वालों ने पकड़ लिया इसको, डंडे मारते रहे और कहा—ऐसा क्यों किया तूने?

कहता है कि इस माँ को सजा़ मिलनी चाहिए। पहली बार जब मैं घर में चोरी करके आया था, बच्चा था, अगर उस समय माँ मेरी खुश न होती, मेरी चीजें सम्भाल कर नहीं रखती, हाँ, पकड़कर ज़ोर से मुझे थप्पड़ लगा

देती, वह जो मेरी चोरी की आदत थी, फिर छीनने की आदत थी बढ़ती जा रही थी और कभी थप्पड़ नहीं लगा मुझे माँ का, दुनिया डाँटती थी और माँ मुझे सम्भाल कर अपने पास रखती थी, मेरी आदतों को पोसती रही, और उसका परिणाम यह हुआ कि आज चलते-चलते मैं यहाँ आ गया कि मुझे फाँसी हो रही है। अगर मेरी माँ मुझे एक थप्पड़ उसी दिन लगा देती, मेरी आदत आगे न बढ़ती।

बस, यही एक बात ध्यान रखने की है-वह जो पहले दिन संग पैदा हुआ था अगर वहीं अपने को रोक लिया जाता तो डाकू होने की नौबत न आती, वह एक थप्पड़ बहुत ज़रूरी था।

कहा है कि जब तुम्हारे अन्दर किसी चीज़ का संग पैदा हो उस समय यदि अपने को थप्पड़ लगा दोगे तो उलझोगे नहीं और तुम संसार में भयंकर रूप धारण नहीं करोगे।

इसीलिए भगवान कृष्ण उस थप्पड़ लगाने के लिए पहली चीज़ बताते हैं कि बीज जो तुम्हारे अन्दर अंकुरित होने की तैयारी में है, आसक्ति का बीज, संग पैदा करने वाला बीज, उसे वहीं से उखाड़ कर फैंक दो;

फक्कड़ साधुओं के बीच में एक बार हम थे, तो उसमें से एक साधु ने फक्कड़ पन में कहा और बात बड़ी गहरी थी कि-

खाओ पिओ छको मत
बोलो चालो बको मत
देखो भालो तको मत।

-देखो, तकना ठीक नहीं, यहीं से संग पैदा हो जायेगा, यहीं से समस्यायें शुरू हो जायेंगी।

तो जहाँ से अपने आपको रोकना है वहाँ अगर रोक लिया जाए, क्रोध उठने लगा, पहली चिंगारी पर रोक लेना रुक जायेगा और अग़र देर कर दी फिर नहीं रुकने वाला; कहीं भी चिंगारी मन में उठेगी, किसी की बात बुरी लगने लगी है, आपका दिमाग अन्दर से गर्म होने लगा, उसी समय अपने को सम्भालना; कहना कि – झंझट बढ़ने वाला है, छोड़ो इसको, यहाँ से चलते हैं, इधर बैठते ही नहीं हैं, जगह बदल लेना उसी समय, मन में सोचना –

नादान आदमी है, मुझे कीचड़ में घसीटना चाहता है, जहाँ जिस ग़न्दगी में यह खड़ा हुआ है वहाँ मुझे भी लाना चाहता है, नहीं जाना मैंने वहाँ – ध्यान बँटा लेना अपना, बात बन जायेगी और अगर उस समय नहीं सम्भाला अपने आपको कितना भयंकर क्रोध हो सकता है, लड़ाई में न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच जाओ, लड़ाई का कोई अन्त तो नहीं है, क्रोध के बाद हिंसा ही तो आयेगी।

इसीलिए भगवान कह रहे हैं संग का परित्याग करो; संग से मतलब है प्रथम आसक्ति का बीज, किसी चीज़ का ध्यान करने से जो मन में आसक्ति आती है वहीं से तोड़ दो और कहा है कि इसी से प्रसन्नता जागेगी तुम्हारे अन्दर; वह पहला बीज जो आप अपने अन्दर से खत्म कर दो, बात यहीं से बनेगी।

इसीलिए जो साधक लोग हैं, ज्यादातर आपने देखा होगा संसार से अलग हटकर के रहते हैं और कई-कई महापुरुष लोग तो ऐसा भी करते रहे हैं- जब उनका बहुत मान बढ़ता जाता रहा, दुनिया पीछे भागने लगी, तो कोई ऐसी हरकत करते थे कि जिससे लोगों का ध्यान वहाँ से हट जाए, घृणा करने लग जायें और वह बैठकर अपना ध्यान करने लगें।

•

भर्तृहरि और उनका भाँजा-गोपीचन्द, दोनों ही गए वन में, भगवान की भक्ति का रस लूटने।

अभी भजन करने के साथ ही भोजन करने की इच्छा जागृत हुई कि चलो भोजन कर लेते हैं, तो बासी भोजन जो रखा हुआ था, उसी को उठाकर खाने लगे। इधर कुछ राहगीर जा रहे थे, उन्होंने देख लिया; पहचान करके कहने लगे-पहचान गए, यह जो आदमी सामने दिखाई दे रहा है यह राजा है।

उनमें से दो एक भागे और दूसरे लोगों को बताने के लिए, जाने के लिए उत्सुक हुए।

इतनी देर में भर्तृहरि ने गोपीचन्द की तरफ देखा और देखकर इशारा किया कि स्थिति बदलो। दोनों लड़ने लगे आपस में झूठ-मूठ।

भर्तृहरि कहता है-बड़ा पेटू है, मेरी सारी रोटियाँ खा गया, दे मेरी रोटी; और छीनने लगा।

इधर गोपीचन्द ने कहा-आप कैसे हैं? मैं भिक्षा माँग करके लाता हूँ और भूखा मुझे ही रखते हो?

दोनों लड़ने लगे आपस में।

उनमें, राहगीर लोगों में, एक बुजुर्ग था, उसने दूसरे जाते हुए आदमी की तरफ इशारा किया इधर आ, जाना नहीं, किसी को बताना नहीं; उस जैसी शक्ल वाला आदमी तो लगता है लेकिन जो यह सोचा वह यह है नहीं, वह नहीं है यह, राजा नहीं है यह, जो रोटियों के लिए लड़ रहे हों, ऐसे झगड़ा कर रहे हों, वह कहाँ राजा?

और जैसे ही वह राहगीर चले गए यह दोनों बहुत हँसे और हँसकर के बोले-अच्छा हुआ, भजन में, ध्यान में, बाधा नहीं पड़ेगी, नहीं तो यह लोग भीड़ लेकर के आ जाते हैं और भगवान का आनन्द जो हम लूट रहे हैं उसे लूटने ही ना देते, हमारी मस्ती खत्म हो जाती, हमारा ध्यान इधर की तरफ जाने लग जाता। अच्छा हुआ यह लोग चले गए।

)

इन लोगों ने एक अलग तरह का आनन्द, एक अलग तरह की मस्ती देखी और जिन लोगों को बहुत मान मिलने लग जाए उन्हें यदि कोई पहचानने वाले मिल जायें तो उनसे घबरा कर भागते हैं और न मिले तो घबराहट होती है। और जो इन दोनों से ऊपर उठा हुआ है वह अलग रहेगा।

कई बार हमें भी लोग मिलते हैं। एक बार हम लोग गाड़ी में बैठे हुए जा रहे थे। लाल बत्ती पर एक व्यक्ति आया और आकर पास में खड़ा होकर बोला-"वही हो?" मैंने कहा – "हाँ वहीं हूँ" और वह भी भला आदमी था, आगे कुछ नहीं पूछा, वह भी चला गया हम भी चल पड़े आगे। हम भी समझ रहे हैं कि यह क्या कह रहा है।

तो तरह-तरह का संसार सामने होगा लेकिन आप किसी के प्रति आसक्ति न रखें, अपनी प्रसन्नता अपने अन्दर पैदा कर लो और जब अपनी प्रसन्नता अपने अन्दर पैदा कर लोगे सन्तुष्टि रहेगी हर समय।

देखने में आया जो लोग सफल कहलाते हैं दुनिया में, ऊँचे शिखर पर पहुँचने के बाद भी अन्दर तसल्ली नहीं हुई, न चहरे पर प्रसन्नता-बड़े परेशान,

चिन्ताऐं इतनी अधिक कि रोज़ ब्लड प्रेशर चैक होता है उनका, नींद की गोलियाँ खा करके सोते हैं लेकिन 'सफल इन्सान' कहलाते हैं, यह भी कमाल है।

जो आदमी अपने अन्दर से ही असफल है वह भला फिर सफल कैसे? ऐसा इसीलिए क्योंकि वह अपने जीवन को व्यवस्थित नहीं कर पाये।

भगवान कहते हैं –

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।

–जो व्यक्ति समस्त दुःखों की हानि करना चाहता है, दुःखों को मिटाना चाहता है, उसे प्रसाद–गुण अपना लेना चाहिए, अन्दर से सन्तुष्टि और सदा के लिए हर समय खिलने वाली चेहरे पर प्रसन्नता अपनानी चाहिए, मस्त रहना, प्रसन्नता में रहना, भक्ति के गीत गाते रहना, झूमते रहना, हर पल को उत्सव़ बनाना, अपनी तरंग में डूबे रहना।

देखिए, हो सकता है जीवन में ऐसी घटनायें घट जायें सामने पीड़ा आ जाये, मन का सन्तुलन बिगड़े, फिर उसको ठीक करना, फिर अपने अन्दर से मुस्कुराहट पैदा करना।

कई लोग ऐसे संसार में हुए जैसे लू कास्टेलो–जो हास्य अभिनेता था, इकलौता बेटा मर गया उसका और उस व्यक्ति को अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए जाना था और इधर सूचना उसके घर पर, टेलीफोन बज रहा है और वह अपने बच्चे को, जो अभी थोड़ी देर पहले पानी के टैंक में गिर कर मर गया था, पानी की टैंकी ऊपर छत पर खुली रह गयी, बच्चा झांकने के लिए गया, थोड़ा ऊपर बढ़ा और लुढ़क कर गिर गया उसमें, डूब गया।

लू कास्टेलो अपने बच्चे को जो एक ही एक बेटा था, उसको मरा हुआ देख रहा है–न रोया जा रहा है, न कुछ बोला जा रहा है। टेलीफोन की घंटी बज रही है–बुलाया जा रहा है कि जल्दी से आ जाओ क्योंकि कार्यक्रम प्रस्तुत करने का समय हो रहा है।

वह सोचने लगा कि मेरा तो सब कुछ बर्बाद ही हो गया, मेरा पास बचा ही क्या है? मैं दूसरी दुनिया को, संसार को, हँसाता फिरूँ यह भी क्या बात है!

आस-पड़ोस में सूचना देने के लिए अभी घर से बाहर निकला ही है, पड़ोस के दो बच्चे उसको देख करके एकदम भाग करके आये और दोनों ने उसकी कमीज़ पकड़ी और खींचने लगे और यह उन बच्चों को देखता है जो उसके बच्चों की, उसके बेटे की उम्र के बच्चे हैं-वैसे ही तन काटी, वैसे ही वस्त्र पहने हुए और उनको देखकर इसको एकदम रोना आया, आँख से आँसू बहने लगे-ऐसे ही खेलता था मेरा बेटा, ऐसे ही हँसता था, अब मैं उसे देख नहीं पाऊँगा – सोच करके जब आँख में आँसू आए, होंठ काँपने लगे, चेहरा बिगड़ने लगा।

अब वह छोटे बच्चे वह उसकी कमीज़ पकड़े खड़े हुए हैं; सबको मालूम है कि यह वह अंकल हैं जो सबको हँसाने का काम करते हैं।

तो दोनों बच्चे कमीज़ खींचकर कहते हैं-अंकल, आप तो हँसाते हो न, हमें हँसाओ।

दूसरा बच्चा उसकी तरफ देखकर कहता है, देखो यह जो मुँह बिगाड़ रहे हैं न यह हँसाने के लिए मुँह बिगाड़ रहे हैं।

यह और रोने लगा; लू कास्टेलो रोता जाएं और दोनों बच्चे कहें-अंकल हमें हँसाओ, आप तो सबको हँसाते हो न – और ऐसा उसे लगा, इस अभिनेता को कि जैसे उसका ही बेटा जाग करके आ गया यह कहने के लिए कि सारी दुनिया को हँसाते हो, पापा, मुझे भी हँसाओ।

कास्टेलो कहता है कि उसके बाद मुझे महसूस किया कि भगवान ने मुझे ताकत दी है दूसरों को हँसाने की; भले ही दुर्भाग्य ने मेरे चेहरे पर प्रसन्नता नहीं दी, आँसू दिए हैं लेकिन कम से कम मेरे अन्दर ऐसी चीज़ तो है, प्रसन्नता का खज़ाना तो है कि मैं दूसरों को हँसा तो सकता हूँ।

और उसके बाद उसकी आत्मकथा में आता है कि कास्टेलो अपने बच्चे को वहीं छोड़कर जहाँ महफ़िल सजी हुई थी वहाँ पहुँचा और दिल में बड़ा भारी ग़म उसके, लेकिन लोगों को हँसाया उसने और उसने लिखा कि उसके बाद मैं भूल गया कि मेरे पास क्या नहीं है। लेकिन यह याद रहा कि जो कुछ

मेरे पास है उससे मैं दुनिया को खुशियाँ दे सकता हूँ और उन खुशियों के बदले खुशी मिलनी शुरू हो गयी, मुझे लगा दुनिया भर के जितने बच्चे हैं वह मेरे अपने ही बच्चे हैं, मेरे ही बेटे की शक्ल धारण करके बैठे हैं और मुझे लगा कि मैं सारी दुनिया को खुशियाँ बाँट रहा हूँ।

अन्दर प्रसन्नता का खज़ाना फूटने लगा, बाँटने लगा वह आदमी प्रसन्नता और कहता है कि उसके बाद तो मुझे यह महसूस हुआ कि यह हँसाने वाली जो ऐक्टिंग है, यह ऐक्टिंग नहीं, यह तो मेरी पूजा बन गई है, मेरी प्रार्थना बन गई है, मैं अपने भगवान की पूजा करने लगा हूँ और उसी में मुझे आनन्द आने लग गया।

प्रसन्नता अपने अन्दर लेकर आओ, अन्दर की सन्तुष्टि लाओ और फिर देखो कि आपके सामने दुःख की घड़ी भी होगी, वो पीड़ा नहीं रहेगी।

भगवान कहते हैं-अर्जुन, उसी की बुद्धि प्रतिष्ठित, वास्तव में ठीक ढंग से स्थित होती है, जो अन्दर से सन्तुष्ट हो गया है और जिसके मन में प्रसन्नता आ गई है, जो हर समय सन्तुलित है। ऐसा व्यक्ति शान्ति को प्राप्त करता है, सदैव शान्त रहता है, वह अपने आनन्द में डूबा रहता है।

यह जो ज्ञान है, भगवान कृष्ण ने इस ज्ञान को "सांख्य" कहा है और यह व्यक्ति के जीवन का ढंग बदल देता है, दृष्टि बदल जायेगी, अन्दाज़ बदलेगा, इसको जितना हो सके चिन्तन कीजिए और अपने आप को कमल की तरह पानी से ऊपर उठाने की कोशिश करो, दुनिया में लिप्त न होने दो और यह जीने का अंदाज़ है।

मैं चाहूँगा इस सब पर आप चिन्तन करें क्योंकि यह दृष्टि है जीवन की, आत्मकल्याण का यह मार्ग है। जितना-जितना आप गहराई में उतरते चले जाओगे आप ही यह अनुभव करोगे अन्दर सन्तुष्टि आनी शुरू हुई है।

जिसके अन्दर सन्तोष है उसके चेहरे पर प्रसन्नता आयेगी, जिसकी प्रसन्नता चेहरे पर है उस आदमी की वाणी में मिठास आयेगी, उसके कर्मों में सुगन्ध होगी, वह व्यक्ति रसपूर्ण हो जायेगा और जिस व्यक्ति के अन्दर रसधारा बहने लगेगी उसके प्रत्येक कार्य में रस बहने लगेगा-चित्र बनायेगा बहुत सुन्दर, गीत गायेगा तो उसमें एक अलग़ रस होगा, कुछ भी करेगा उसके करने में एक विशेषता होगी।

इसीलिए यह ज्ञान केवल सुनने के लिए नहीं, यह तो पीने के लिए है; इसको ऐसा पियो, इस ज्ञान को, कि रस बनकर हमारी धारा में, रगों में बहने लग जाए और हमारे कर्मों में दिखाई देने लग जाए। जिस व्यक्ति के अन्दर यह रस आता है उसकी कृतियों में, उसके कृत्यों में, रस दिखाई देता है। आशा करता हूँ आप इसका चिन्तन करेंगे।

अध्याय-दो

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

इस प्रकार दया से भरे हुए और आंसुओं से डबडबाई आँखों वाले अर्जुन से, जिसका मन दु:ख से भरा हुआ था, कृष्ण ने कहा:

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

हे अर्जुन, तुझे यह आत्मा का कलंक (यह उदासी) इस विषम समय में कहा से आ लगा। यह वस्तु श्रेष्ठ मनवाले लोगों के लिए बिल्कुल अनजानी है (आर्य लोग इसे पसंद नहीं करते), यह स्वर्ग ले जाने वाली नहीं है और (पृथ्वी पर) यह अपयश देने वाली है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्त ॥३॥

हे पार्थ (अर्जुन), ऐसे नामर्द मत बनो, क्योंकि यह तुम्हें शोभा नहीं देता। इस मन की तुच्छ दुर्बलता को त्याग दो और हे परंतप (शत्रुओं को सताने वाले अर्जुन), उठकर खड़े हो जाओ।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

हे मधुसूदरन (कृष्ण), मैं युद्ध में भीष्म और द्रोण पर किस तरह बाण चला पाऊँगा? हे शत्रुओं को मारने वाले कृष्ण, वह तो मेरे लिए पूजनीय हैं।

गुरुनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

इन पूजनीय गुरुओं को मारने की अपेक्षा तो इस संसार में भीख मांगकर जीना कहीं अधिक भला है। यद्यपि उन्हें केवल अपने लाभ का ही ध्यान है, फिर भी वे मेरे गुरु हैं और उन्हें मारकर मैं केवल उन सांसारिक सुखों का उपभोग कर पाऊँगा जो उनके रक्त से सने हुए होंगे।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

हमें तो यह भी मालूम नहीं है कि हमारे लिए क्या भला है; हम उन्हें जीत लें, या वह हमें जीत लें। धृतराष्ट्र के जिन पुत्रों को मारने के बाद हमें जीने की कोई इच्छा नहीं है, वे ही हमारे सम्मुख युद्ध में आकर खड़े हुए हैं।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

मेरा सम्पूर्ण अपनापन (भावुकतापूर्ण) दया की दुर्बलता से ग्रस्त हो उठा है। अपने कर्तव्य के विषय में मेरा चित्त मूढ़ हो गया है। इसलिए मैं तुमसे पूछता हूँ। मुझे निश्चित रूप से यह बताओ कि मेरे लिए क्या भला है। मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ; मुझे उपदेश दो।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् -
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

चाहे मुझे सारी पृथ्वी का धनसम्पन्न एवं प्रतिद्वन्द्वीहीन राज्य और देवताओं का स्वामित्व भी क्यों न मिल जाय, परन्तु मुझे कोई ऐसी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती, जो मेरे इस शोक को दूर कर सके, जो मेरी इन्द्रियों को सुखाए डाल रहा है।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

इस प्रकार पराक्रमी गुडाकेश (अर्जुन) ने हृषीकेश (कृष्ण) से ऐसा कहने के बाद गोविन्द (कृष्ण) से ऐसा कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा और चुप हो गया।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

हे भारत (धृतराष्ट्र), इस प्रकार दोनों सेनाओं के मध्य में विषादग्रस्त होकर बैठे हुए उस अर्जुन से हृषीकेश (कृष्ण) ने हँसते हुए कहा–

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥११॥

तू उनके लिए तो शोक कर रहा है, जिनके लिए तुझे शोक नहीं करना चाहिए और फिर तू ज्ञान की बातें करता है। ज्ञानी लोग मृतों के लिए या जीवितों के लिए शोक नहीं किया करते।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

ऐसा कोई समय नहीं था, जब मैं नहीं था या तू नहीं था या ये सब राजा नहीं थे और न कभी कोई ऐसा समय आएगा, जब हम सब इसके बाद नहीं रहेंगे।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

जैसे इस शरीर में आत्मा बचपन से यौवन और वार्धक्य में से गुजरता है, उसी प्रकार की वस्तु इसका दूसरा शरीर धारण कर लेना है। धीर व्यक्ति इससे घबराता नहीं।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), वस्तुओं के साथ सम्पर्क के कारण ठंड और गर्मी, सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। वे आते हैं और चले जाते हैं; सदा के लिए नहीं रहते। हे भारत (अर्जुन), उनको सहन करना सीख।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ (अर्जुन), जिस मनुष्य को ये दुःखी नहीं करते, जो दुःख और सुख में समान रहता है, जो ज्ञानी है, वह अपने-आपको अमर जीवन के लिए उपयुक्त बनाता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

जिसका अस्तित्व नहीं है, उसका अस्तित्व हो नहीं सकता; और जिसका अस्तित्व है, उसका अस्तित्व मिट नहीं सकता। इन दो बातों के विषय में सत्य को देखनेवालों ने यह ठीक-ठीक निष्कर्ष निकाल लिया है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

इस बात को समझ लो कि जिससे यह सब व्याप्त है, वह अविनश्वर है। इस अपरिवर्तनीय अस्तित्व का विनाश कोई भी नहीं कर सकता।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

यह कहा गया है कि शाश्वत आत्मा के, जो अविनाशी और अज्ञेय हैं, यह शरीर तो नष्ट होने वाले हैं। इसलिए हे अर्जुन, तू युद्ध कर।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

जो यह सोचता है कि वह मारता है, और जो यह सोचता है कि वह मारा जाता है, वे दोनों ही सत्य को नहीं जानते। यह आत्मा न तो मारता है और न ही मारा जाता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

वह कभी जन्म नहीं लेता और न कभी वह मरता ही है। एक बार अस्तित्व में आ जाने के बाद उसका अस्तित्व फिर कभी समाप्त नहीं होगा। वह अजन्मा, शाश्वत, नित्य और प्राचीन है। शरीर के मारे जाने पर भी वह नहीं मरता।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

जो यह जानता है कि यह अविनाश्य और शाश्वत है, यह अजन्मा और अपरिवर्तनशील है, हे पार्थ (अर्जुन), इस प्रकार का मनुष्य कैसे किसी को मार सकता है या किसी को मरवा सकता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

जैसे कोई व्यक्ति फटे-पुराने कपड़ों को उतार देता है और दूसरे नये कपड़े पहन लेता है, उसी प्रकार यह धारण करने वाली आत्मा जीर्ण-शीर्ण शरीरों को त्यागकर अन्य नये शरीरों को धारण कर लेती है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।२३।।

शस्त्र इस आत्मा को छेद नहीं पाते और न अग्नि इसे जला पाती है। पानी इसे गीला नहीं करता और न वायु ही इसे सुखाती है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।२४।।

इसे छेदा नहीं जा सकता; इसे जलाया नहीं जा सकता; न इसे गीला किया जा सकता है और न इसे सुखाया जा सकता है। यह नित्य है, सबके अन्दर व्याप्त है, अपरिवर्तनशील है और अचल है। यह सदा एक सा रहता है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।।२५।।

इसे अव्यक्त, अचिन्तनीय और अविकार्य कहा जाता है। इसलिए उसको ऐसा समझते हुए तुझे शोक नहीं करना चाहिए।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ।।२६।।

और यदि तू यह समझे कि आत्मा नित्य जन्म लेता है और नित्य मरता है, तो भी हे महाबाहु (अर्जुन), तुझे शोक करना उचित नहीं है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।२७।।

क्योंकि जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु सुनिश्चित है; और जो मर चुका है, उसका जन्म लेना सुनिश्चित है। इसलिए जिससे बचा ही नहीं जा सकता, उसके लिए तुझे शोक नहीं करना चाहिए।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

सब प्राणियों का आदि या आरम्भ अप्रकट है। उनका मध्यभाग प्रकट है और उनका अन्त फिर अप्रकट है। हे अर्जुन; इसमें विलाप करने की क्या बात है?

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित ॥२९॥

कोई उसे एक अद्भुत वस्तु के रूप में देख पाता है। कोई दूसरा उसका वर्णन एक अद्भुत वस्तु के रूप में करता है और कोई अन्य एक अद्भुत वस्तु के रूप में उसे सुनता है; पर सुनकर भी उसे कोई जान नहीं पाता।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

हे भारत (अर्जुन), सबके शरीर में निवास करने वाला (आत्मा) शाश्वत है और वह कभी मारा नहीं जा सकता। अत: तुझे किसी प्राणी के लिए शोक नहीं करना चाहिए।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

इसके अतिरिक्त अपने कर्त्तव्य का ध्यान करते हुए भी तुझे विचलित नहीं होना चाहिए। क्षत्रिय के लिए धमयुद्ध से बढ़कर और कोई कर्तव्य नहीं है।

यर्च्छिया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीर्शिम् ॥३२॥

हे पार्थ (अर्जुन), वे क्षत्रिय सुखी है, जिन्हें संयोग से इस प्रकार का युद्ध लड़ने का अवसर प्राप्त होता है। यह युद्ध मानो स्वर्ग का खुला हुआ द्वार है।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

यदि तू इस धर्मयुद्ध को न लड़ेगा, तो तू अपने कर्तव्य और यश से च्युत हो रहा होगा और तू पाप का भागी बनेगा।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

इसके अतिरिक्त मनुष्य सदा तेरे अपयश की बातें कहा करेंगे; और जो आदमी सम्मानित रह चुका हो, उसके लिए बदनामी मृत्यु से भी कहीं बुरी है।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

ये बड़े-बड़े योद्धा यह समझेंगे कि तू भय के कारण युद्ध से विमुख हो गया है और जो लोग तेरा बहुत आदर करते थे, वे तुझे बहुत छोटा समझने लगेंगे।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

तेरे शत्रु तेरे बल की निन्दा करते हुए बहुत-सी अनकहनी बातें कहेंगे। इससे बढ़कर और दुःख की क्या बात हो सकती है!

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौतन्ये युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

यदि तू युद्ध में मारा गया तो तू स्वर्ग पहुँचेगा; यदि तू विजयी हुआ तो तू पृथ्वी का उपभोग करेगा। इसलिए हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), तू लड़ने का निश्चय करके खड़ा हो।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततौ युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

सुख और दुःख को, लाभ और हानि को, जय और पराजय को समान समझ और युद्ध के लिए तैयार हो जा; तब तुझे पाप नहीं लगेगा।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

हे पार्थ (अर्जुन), यह मैंने तुझे सांख्य का ज्ञान बताया है। अब तू योग का ज्ञान सुन। इस ज्ञान को ग्रहण करके तू कर्म के बन्धनों को परे फेंक देगा।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

इस मार्ग में किया गया कोई प्रयत्न कभी नष्ट नहीं होता और न कोई बाधा ही बनी रहती है। इस धर्म का थोड़ा-सा अंश भी बड़े भारी भय से रक्षा करता है।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बुहशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

हे कुरुनन्दन (अर्जुन), इस क्षेत्र में दृढ़ संकल्प वाली बुद्धि एक ही होती है, परन्तु अनिश्चित मनमाने लोगों के विचार अनेक दिशाओं में बिखरे हुए और अनन्त होते हैं।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

वे अविवेकी लोग, जो वेद के शब्दों में आनन्द लेते हैं, जिनका कथन है कि इसके सिवाय और कुछ नहीं है, जिनका स्वभाव लालसापूर्ण है और जो स्वर्ग जाने के इच्छुक हैं, वे इन फूलों जैसे (आकर्षक) शब्दों को कहते हैं, जिनका परिणाम कर्मों के फल के रूप में पुनर्जन्म होता है और वे लोग आनन्द और शक्ति की प्राप्ति के लिए अनेक विशेष प्रकार की विधिया बताते हैं।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

जो लोग आनन्द और शक्ति प्राप्त करने में लगे रहते हैं और जिनके मन (वेद के) इन शब्दों द्वारा प्रेरित रहते हैं, उनकी भले और बुरे का विवेक करने वाली बुद्धि आत्मा में (या एकाग्रता में) भली भाँति स्थिर नहीं होती।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

वेदों का विषय तीन गुणों की क्रिया से सम्बन्धित है। परन्तु हे अर्जुन, तू इस त्रिगुणात्मक प्रकृति से स्वतन्त्र हो जा। तू सब द्वन्द्वों से (परस्पर-विरोधी युग्मों से) मुक्त हो जा और दृढ़तापूर्वक सत्त्वभाव में स्थित हो जा। अर्जुन और रक्षण की चिन्ता छोड़ दे और आत्मा को प्राप्त कर।

यार्वानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

जब सब ओर जल ही जल की बाढ़ आई हो, उस समय एक पोखर का जितना उपयोग होता है, उतना ही उपयोग ज्ञानी ब्राह्मण के लिए सब वेदों का है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

तुझे केवल कर्म करने का अधिकार है; इसके फल पर तेरा अधिकार बिल्कुल नहीं है। तेरा उद्देश्य कर्म का फल कभी न हो और अकर्म (कर्मों का त्याग) के प्रति तेरा अनुराग हो।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

हे धन को जीतने वाले (अर्जुन), तू योग में स्थित होकर, सब प्रकार की आसक्ति को त्यागकर, सफलता और विफलता में मन को समान रखते हुए अपना काम करते जा; क्योंकि मन की समता ही योग कहलाती है।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

केवल कर्म बुद्धि के अनुशासन (बुद्धि योग) से बहुत घटिया है। हे धन को जीतने वाले (अर्जुन) तू बुद्धि में शरण ले। जो लोग (अपने कर्म के) फल की इच्छा करते हैं, वे दयनीय हैं।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।५०।।

जिस व्यक्ति ने अपनी बुद्धि को (ब्रह्म के साथ) जोड़ दिया है, (या जो अपनी बुद्धि में भली भाँति स्थित हो गया है) वह अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों को यहीं छोड़ जाता है। इसलिए तू योग में जुट जा। योग सब कामों को कुशलता से करने का नाम है।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।५१।।

वे ज्ञानी लोग, जिन्होंने अपनी बुद्धि को (ब्रह्म से) मिलाकर एक कर दिया है, और कर्मों से प्राप्त होने वाले फलों का त्याग कर दिया है, जन्म के बन्धन से मुक्त होकर दुःखहीन दशा को प्राप्त होते हैं।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।५२।।

जब तेरी बुद्धि मोह की मलिनता को पार कर जाएगी, तब तू उस सबके प्रति उदासीन हो जाएगा, जो कुछ तूने सुना है, या जो कुछ सुनने को अभी शेष है।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।५३।।

जब तेरी बुद्धि, जो वेदों के द्वारा विक्षिप्त हो गई है, अविचल हो जाएगी और आत्मा (समाधि) में स्थिर जा जाएगी, तब तुझे अन्तर्दृष्टि (योग) प्राप्त हो जाएगी।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥५४॥

हे केशव (कृष्ण), जिस व्यक्ति की बुद्धि स्थिर हो गई है और जिसका अस्तित्व आत्मा में स्थिर हो गया है, वह किस प्रकार का होता है? इस प्रकार के स्थिर बुद्धिवाले व्यक्ति को किस ढंग से बोलना चाहिए, जिस ढंग से उसे बैठना चाहिए और जिस ढंग से उसे चलना चाहिए?

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

जब मनुष्य अपने मन की सब इच्छाओं को त्याग देता है और जब उसकी आत्मा अपने अन्दर ही सन्तुष्ट रहती है, तब हे पार्थ (अर्जुन), वह स्थितप्रज्ञ (जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई है) कहलाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

जिसका मन दुःखों में बेचैन नहीं होता और जिसे सुखों में अधीरतापूर्ण लालसा नहीं रहती, जो राग, भय और क्रोध से मुक्त हो गया है, वह स्थितबुद्धि मुनि कहलाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

जिसे किसी भी वस्तु के प्रति स्नेह नहीं है, जो प्राप्त होने वाले शुभ और अशुभ को पाकर न प्रसन्न होता है और न अप्रसन्न होता है, उसकी बुद्धि (ज्ञान में) दृढ़ता से स्थित हो गई है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

जो व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों से अपनी इन्द्रियों को सब ओर से वैसे ही खींच लेता है, जैसे कछुआ अपने अंगों को (अपने खोल के अन्दर) खींच लेता है, उसकी बुद्धि (ज्ञान में) दृढ़ता से स्थित हो जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

इन्द्रियों के विषय में उस शरीरधारिणी आत्मा से विमुख हो जाते हैं, जो उनका आनन्द लेने से दूर रहती है। परन्तु उनके प्रति रस (लालसा) फिर भी बना रहता है। जब भगवान् का दर्शन हो जाता है, तब वह रस भी जाता रहता है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), भले ही मनुष्य विवेकशील हो और वह सदा (पूर्णता के लिए) प्रयत्न करता रहे, फिर भी उसकी प्रबल इन्द्रियाँ उसके मन को बलपूर्वक विचलित कर ही देती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

उन सब (इन्द्रियों) को वश में करके, उसे मुझमें ध्यान लगा, योग में स्थिर रहना चाहिए; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, उसकी बुद्धि दृढ़तापूर्वक स्थित रहती है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।६२।।

जब कोई मनुष्य अपने मन में इन्द्रियों के विषयों का ध्यान करने लगता है, तो उसके मन में उनके प्रति अनुराग पैदा हो जाता है। अनुराग से इच्छा उत्पन्न होती है और इच्छा से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।६३।।

क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है। मूढ़ता से स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति के नष्ट होने से बुद्धि का नाश हो जाता है; और बुद्धि के नाश से व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है।

रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।

परन्तु अनुशासित मनवाला मनुष्य, जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखे हुए, राग और द्वेष (लगाव और विरक्ति) से मुक्त रहकर इन्द्रियों के विषयें मं विचरण करता है, वह आतमा की पवित्रता को प्राप्त कर लेता है।

प्रसादे सर्वदुःखानं हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।६५।।

और उस आत्मा की शुद्धता में उसके सब दु:खों की समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार के विशुद्ध आत्मावाले व्यक्ति की बुद्धि शीघ्र ही (आत्मा की शान्ति में) स्थित हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

असंयत व्यक्ति में बुद्धि नहीं होती। असंयत व्यक्ति में एकाग्रता की शक्ति भी नहीं होती। जिसमें एकाग्रता नहीं है, उसे शान्ति प्राप्त नहीं होती; और जिसे शान्ति नहीं है, उसे सुख कहाँ से मिल सकता है।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

जब मन भटकती हुई इन्द्रियों के पीछे भागता है, तब वह मनुष्य की समझ को हर लेता है, जैसे वायु जल में नाव को बहा ले जाती है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

इसलिए हे महाबाहु (अर्जुन), जिसकी इन्द्रियाँ उनके विषयों से सब प्रकार से दूर खींच ली गई है, उसी की बुद्धि दृढ़ता से स्थिर है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

सब प्राणियों के लिए जो रात होती है, उसमें संयमी जागता रहता है और सब प्राणियों के लिए जो जागने का समय है, वह देखने वाले मुनि के लिए (या क्रान्तदर्शी मुनि के लिए) रात होती है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शन्तिमाप्नोति न कामकामी ।।७०।।

जिसकी इच्छाएं उसके अन्दर ऐसे समा जाती हैं, जैसे जल समुद्र में समा जाता है-जो समुद्र सदा भरता रहने पर भी कभी मर्यादा को नहीं लांघता-वह शान्ति को प्राप्त करता है; और जो इच्छाओं के पीछे भागता है, उसे शान्ति प्राप्त नहीं होती।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ।।७१।।

जो मनुष्य सब इच्छाओं को त्याग देता है और लालसा से शून्य होकर कार्य करता है, जिसे किसी वस्तु के साथ ममत्व नहीं होता और जिसमें अहंकार की भावना नहीं होती, उसे शान्ति प्राप्त होती है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।७२।।

हे पार्थ (अर्जुन), यह दिव्य दशा (ब्राह्मी स्थिति) है। जो इसे एक बार प्राप्त कर लेता है वह (फिर) कभी मोह में नहीं पड़ता। इसमें स्थित रहकर मनुष्य अन्त में (मृत्यु के समय) परमात्मा के परम आनन्द (ब्राह्म-निर्वाण) को प्राप्त कर सकता है।
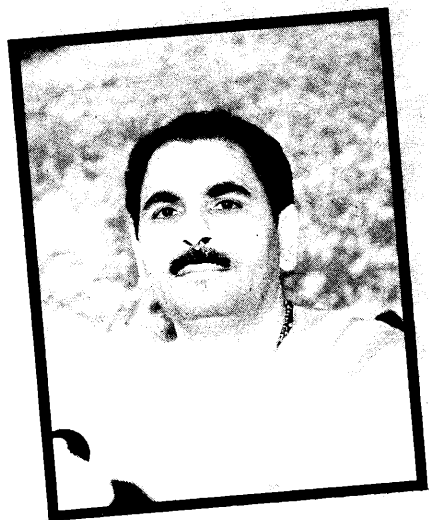
तीसरा अध्याय

कर्मयोग

ता का तीसरा अध्याय कर्मयोग का अध्याय है। दूसरे अध्याय को हम सांख्य–योग के रूप में जानते हैं। सांख्ययोग में ज्ञान से सम्बन्धित विषयों को लेकर के भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दिशा दी; बताया कि–ज्ञान सर्वस्व है। अपने स्वरूप को जानो, शरीर की नश्वरता को पहचानो, आत्मा जो नहीं मिटता उसको जानो। भगवान ने यह भी समझाया कि जैसे और सब परिवर्तन देह में होते हैं-बाल्यावस्था से किशोरावस्था और किशोरावस्था से यौवन और यौवन से वार्धक्य और वार्धक्य के बाद फिर एक परिवर्तन – देहान्तरप्राप्ति – दूसरे देह की प्राप्ति – यह परिवर्तन लगातार चलता है। भगवान आगे समझाते हैं कि जो असंग होकर संसार में रहते हैं, अनासक्त–भाव से संसार में व्यवहार करते हैं वही संसार के दल–दल को और कीचड़ को पार कर पाते हैं अन्यथा इस संसार में निरन्तर व्यक्ति फँसता जाता है। किसी भी चीज़ में आसक्ति बन्धन का कारण है। जितना मोह होगा उतना–उतना संसार में बँधते जाओगे। मोह, बन्धन है और जब शरीर छूटता है उस समय रुलाने वाली चीज़ कोई और नहीं मोह रुलाता है, मोह चाहे किसी वस्तु का हो, व्यक्ति का हो, पदार्थ का हो, धन का हो या किसी भी प्रकार के सम्बन्ध का–छोड़ते समय, मोह के कारण, कष्ट होता है। इसीलिए व्यक्ति को ज्ञान से अपनी अज्ञानता को तोड़ना चाहिए। यह दूसरा अध्याय था लेकिन तीसरे अध्याय में भगवान कृष्ण ने कर्म के सम्बन्ध में ज्ञान को श्रेष्ठ बताया; उसके बाद कर्म के सम्बन्ध में भगवान कहते हैं कर्म करना चाहिए, कर्त्तव्य करते चले जाओ।

अर्जुन यहाँ प्रश्न करता है – कि ज्ञान अग़र श्रेष्ठ है तो फिर यह घोर कर्म आप मुझसे क्यों करा रहे हैं? युद्ध एक क्रूर और घोर कर्म है, इसमें मैं फँसना नहीं चाहता। मुझे समझ नहीं आता है कि ज्ञान श्रेष्ठ है या कर्म श्रेष्ठ है? एक तरफ़ आपने कहा कि कर्म करते जाइये –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'

कर्म पर तुम्हारा अधिकार है, फल पर नहीं; ज्ञान के सम्बन्ध में भी कहा। अब, अर्जुन कहता है कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि ज्ञान श्रेष्ठ है या कर्म श्रेष्ठ है? और अगर ज्ञान श्रेष्ठ है तो फिर मुझे इस क्रूर-कर्म में न लगायें। भगवान ने अब समझाया-

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।

भगवान कृष्ण कहते हैं-अर्जुन, मैंने तुम्हें पहले भी बताया था-संसार में दो प्रकार की निष्ठायें हैं-एक निष्ठा है जो ज्ञानयोगी लोग हैं अर्थात् सांख्य योगी हैं, ज्ञान से सम्बन्धित जो लोग हैं वह समझते हैं कि जीवन में कल्याण अगर होगा, मुक्ति अगर होगी तो ज्ञान से ही होगी।

दूसरे *कर्मयोगेन योगिनाम्* कर्मयोगी लोग हैं जो कहते हैं कि कर्म करना चाहिए। एक का कहना है कि ज्ञान से ही छुटकारा होगा, दूसरे कहते हैं कर्म ही करना पड़ेगा। यह दो प्रकार की निष्ठायें हैं।

ऐसा समझिये कि जीवन में दो तरह की स्थितियां हैं-एक वर्ग ऐसा कि जो यह कहता है कि कर्म करते-करते आप उलझन में फँसते चले जायेंगे, और कर्म करते हुए फँसना तो सम्भव है ही, अन्धेरे से लड़ने के लिए एक ही तरीका है-दीपक जलाओ। अज्ञानता में व्यक्ति ऐसे ही चलता है जैसे किसी कक्ष में अंधेरा हो और अंधेरे में आप न कुछ कर पा रहे हैं, न कुछ ढूँढ पा रहे हैं, दीपक जलाते ही एक साथ इतनी चीज़ें दिखाई देती हैं; तो वह दीपक ने प्रकट नहीं कर दी, दीपक के माध्यम से हमें एकदम जानकारी हो गई। तो ज्ञानियों का ऐसा कहना है कि संसार में अगर मनुष्य ज्ञान के बिना रहे तो वह अधूरा है, जीवन निरर्थक है, ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है, अज्ञानता दु:ख देती है, लेकिन कर्म योगी ऐसा मानते हैं कि ज्ञान अगर प्राप्त कर भी लिया तो वह बेकार, उसका परीक्षण तो करना ही होता है।

कितना भी ज्ञानी क्यों ना हो उसके ज्ञान का पता लगता है उसके व्यवहार से कि आचरण में कोई बात आई है या नहीं?

वन में बैठकर के साधना की और बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें कर लेना बड़ा आसान है लेकिन जैसे ही संसार में आयेंगे तो यहाँ सारा ही ज्ञान व्यक्ति का तिरोहित होता नज़र आता है। ज्ञान का परीक्षा-क्षेत्र संसार है। हमारी सारी समझ, सूझ-बूझ संसार में ही पता लगती है।

तो एक ने कहा कि कर्मयोग ठीक है, दूसरे ने कहा ज्ञानयोग ठीक है; लेकिन भगवान कृष्ण कहते हैं कि अर्जुन-दोनों का सामञ्जस्य चाहिए। क्योंकि व्यक्ति कर्म और ज्ञान दोनों का संतुलन बनाए तो जीवन ठीक-ठीक होता है-ज्ञान है आँख और कर्म है पाँव। आँख से देखो और पाँव से चलो, बिना देखे चलना कुएँ में गिरना है और सिर्फ़ चलना ही बाकी रहे, देखा न जाए, तो वह चोट देगा। और अग़र चले नहीं और केवल मात्र देखते ही रहें तो फिर उस देखने का भी कोई लाभ नहीं। इसीलिए दोनों का तालमेल होना चाहिए।

शरीर में ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दोनों रखी गई हैं-ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करो और कर्मेन्द्रियों से व्यवहार करो; दोनों का होना ही जीवन है; ऐसे ही ज्ञान भी चाहिए और कर्म भी चाहिए।

किसी नौका के लिए एक ही पतवार हो और वह एक ही तरफ़ चलाई जाए तो नौका आगे नहीं बढ़ती, नौका के लिए दोनों तरफ चप्पू चलाने ज़रूरी हैं तभी वह आगे बढ़ती है और अग़र एक तरफ़ का ही चप्पू चलाया गया तो नौका वहीं घूमती रहेगी। जो कर्म में उलझे हुए हैं वह भी वहीं घूम रहे हैं और जो ज्ञान में उलझे हुए हैं वह भी वहीं घूम रहे हैं-क्योंकि दोनों तरफ़ का चप्पू नहीं चला रहे हैं।

पक्षी के दो पंख है-एक पंख से उड़ा नहीं जा सकता, अधूरापन है; किसी रथ के दो पहियों की तरह एक पहिए से रथ चल नहीं सकता, ज्ञान और कर्म, समझ और सेवा, दोनों होनी चाहिएं।

भगवान आगे फिर समझाते हैं-अर्जुन, जानना :-

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।।

कोई भी व्यक्ति – *न हि कश्चित्क्षणमपि* – एक क्षण के लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता, हर क्षण कोई न कोई कर्म करना पड़ेगा अर्थात् प्रकृति ने हमें बनाया ही ऐसा है कि हम हर समय कर्मशील हैं, कर्म के बिना रुका नहीं जा सकता, ठहरा नहीं जा सकता, कर्म हमारे स्वभाव में उतर आया है।

कोई व्यक्ति कितना भी खाली बैठे तो भी वह खाली नहीं बैठ सकता, कुछ न कुछ करेगा, कुछ न कुछ हिलता-डुलता रहेगा। बच्चों के अन्दर आप

देखते हैं-उनका रोम-रोम कर्म से जुड़ा हुआ होता है, इसीलिए वह कहीं चैन से नहीं बैठ सकते – हिलेंगे, डुलेंगे, चलेंगे; अग़र व्यक्ति चुपचाप बैठा रहे तो मन चलता रहेगा और मन भी न जाने कहाँ तक लेकर जाता है; एक क्षण भी हम बैठ नहीं सकते।

कई बार यात्रा में देखा – एक बार प्रचार-यात्रा में जाते समय रेलगाड़ी में देखा दो व्यक्ति सामने बैठे हुए हैं; दोनों ही प्रश्न करते हैं बार-बार – आपके पास बहुत पुस्तकें हैं, हम पढ़ें? हमने कहा–पढ़िये। पुस्तक ली उन्होंने; देखने के बाद फिर रख दी क्योंकि उन्हें लगा कि यह हमारी रुचि की पुस्तक नहीं हैं, स्टेशन आया; वह व्यक्ति उतर गया। अब जिस कैबिन में हम हैं, क्योंकि पहले फस्ट क्लास में सिर्फ़ दो-चार आदमी बैठ पाते थे, कैबिन बनी होती थी। अब दूसरा व्यक्ति सामने, इधर हम पुस्तक पढ़ रहे हैं। अब वह व्यक्ति इशारा करता है- ताश खेलेंगे? हमने पुस्तक दी, हमने कहा पुस्तक पढ़ेंगे? बोले-कुछ काम बोर टाइप का है आपका।

थोड़ी देर के बाद मैंने देखा कि वह ताश निकालकर और उसके दो हिस्से करके रखकर बैठ गया। अब मैं पुस्तक पढ़ता-पढ़ता, बीच-बीच में उसकी तरफ़ देखता हूँ। मैंने देखा कि उसने उसके दो हिस्से कर लिए, अब वह इधर से भी एक पत्ता उठाकर डालता है उधर से भी डालता है।

मैंने कहा कि यह क्या कर रहे हो? बोले – दोनों तरफ़ से मैं ही खेल रहा हूँ। ऐसा क्यों कर रहे हो? कहता है – खाली नहीं बैठ सकते न, कुछ तो करना ही पड़ेगा।

अपनी रुचि के हिसाब से कुछ तो काम करना ही पड़ेगा हालांकि एक तरह से खाली से भी बेकार तरह का काम वह कर रहा है लेकिन खाली बैठ नहीं सकते क्योंकि भगवान ने हमें ऐसा बनाया ही नहीं है। कर्म तो जीवन के साथ है और जैसे कोई नदी जब तक गतिमान है तब तक उसका जल निर्मल है और अग़र गति रुक गई तो दुर्गन्ध आनी शुरू हो जायेगी इसी प्रकार जब तुम रुक जाते हो तो समझ लेना कि जीवन के अन्दर दुर्गन्ध शुरू हो गई है। रुकना नहीं है, चलते रहना है-उपदेश है तैत्तरैय ब्राह्मण का :

चरन् वै मधु विन्दते

जो चला है उसी ने जीवन का माधुर्य प्राप्त किया

चरन्\स्वादु मुदम्बरम्

चलने वालों ने ही जीवन का मीठा, स्वादिष्ठ फल पाया। बहुत सुन्दर उपदेश है वहाँ-कि देखो सूर्य को, सदैव गतिमान् है, संसार को प्रकाशित करता है; देखो चन्द्रमा को, जिसकी शीतलता से संसार रसपूर्ण है; कि तुम भी प्रकाशित होना चाहते हो, रसपूर्ण बनना चाहते हो तो

चरैवेति, चरैवेति, चरैवेति, चरैवेति

चलते रहो, कर्म करते रहो, रुको नहीं।

वेदों को पढ़िये, यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय जिसे हम ईशोपनिषद् के रूप में भी जानते हैं –

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं सभाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे ।।

इस संसार में कर्मों को करते हुए ही *जिजींविषेत्* जीने की इच्छा करो जब तक जीते हो, सैकड़ों वर्ष जीने की कामना है लेकिन कर्म करते हुए। इस तरह से पाप तुम्हें लिप्त नहीं करेंगे, बाँधेगे नहीं।

सोचिए, वन के अन्दर पशु-पक्षी, पशुओं में चाहे कोई बूढ़ा है या बच्चा है अगर उन्हें जीवित रहना है तो दौड़ना पड़ेगा, संघर्ष करना पड़ेगा, इसीलिए सब दौड़ते हैं और आनन्द की बात यह है कि बुढ़ापे के चिन्ह इस तरह से वहाँ प्रकट नहीं होते जैसे कि मनुष्य समाज में प्रकट दिखाई देते हैं, जैसे यहाँ प्रकट हैं। वहाँ बच्चे-बूढ़े एक तरह से दौड़ रहे हैं। इसीलिए गति है तो यौवन दिखाई देता है, जो गतिहीन हो गए वह आलसी लोग, उनके अन्दर रोग दिखाई देते हैं।

चिन्तन करके देखिए, प्रकृति का नियम है कि हर किसी को गति दी, ख़ाली बैठने के लिए नहीं बनाया; चींटियों को देखिये, कितनी छोटी सी चींटी, अन्धेरे में भी दौड़ी चली जा रही है और कभी-कभी देखकर कितना आश्चर्य लगता है – अन्धेरे में अचानक आपने लाईट जलाई, आप देखते हैं चींटियाँ दौड़ी जा रही हैं, रात के दस-ग्यारह बजे हुए हैं-उनको सोने नहीं जाना अपने घर और कमाल तो यह किया हुआ है कि गति इतनी तेज़, जितना शरीर नहीं उनका उससे ज़्यादा का तो वह सामान उठाकर जा रही हैं और उनका जो 'वन वे ट्रैफिक' चलता है, एक तरफ़ जाने का रास्ता है, एक तरफ़ आने की

व्यवस्था कर रखी है, कहीं दोनों तरफ़ का मार्ग भी होता है, 'टू वे ट्रैफिक' भी चलता है लेकिन वहाँ देखने वाली बात यह होती है-बड़ी तेज़ी से भागे जा रहे हैं, उधर वाले आ रहे हैं, एक्सीडैंट बिल्कुल नहीं होता, बीच-बीच में उनके प्रहरी खड़े हुए हैं, गार्ड भी खड़े हुए हैं, व्यवस्था देख रहे हैं, सब ठीक है, ट्रैफिक इन्सपैक्टर भी खड़े हुए हैं, माल वाहक लोग भी माल को लेकर के आ रहे हैं, जो निरीक्षण कर रहे हैं, वह देख रहे हैं कि लाने वाला व्यक्ति सामान ज़्यादा है हिम्मत से ला रहा है तो दौड़ कर जायेंगे, उसका साथ निभायेंगे, पकड़ के लेकर आ रहे हैं और कितनी तेज़ी से काम कर रहे हैं; छोटे-से जीव को भी पता है कर्म करते रहना है, ख़ाली नहीं बैठना है। जीवन है ही गति का नाम।

मधुमक्खियों को आप देखिए – लाखों फूलों से ले जाकर, रस लेकर शहद बनाती हैं। मधुमक्खियाँ पालने वाले जानते हैं इस बात को कि मधुमक्खियों को अगर पालना है तो ऐसी जगह पर जहाँ लाखों की संख्या में फूल हों, लाखों की संख्या में फूल से मतलब है-मीलों किलोमीटर तक फूल होने चाहिएं, नहीं तो उन्हें कुछ चाशनी डालनी पड़ती है, चीनी घोल करके इधर उधर डालनी पड़ती है, बहुत दूर तक फूल होने चाहिएं, छः-छः किलोमीटर दूर तक जायेंगी मधुमक्खियाँ अपने छत्ते में शहद लाने के लिए और एक अच्छी बस्ती उनकी तैयार रहती है।

कर्म करो, सुव्यवस्थित होकर कर्म करो। भगवान तो यहाँ तक कहते हैं-

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।।

तुम्हारी शरीर की यात्रा तभी ठीक रहेगी जब तुम कर्म से जुड़े रहोगे और अगर कर्म से विमुक्त हो जाते हो तो जीवन-यात्रा ठीक चलने वाली नहीं है। इसीलिए *'नियतं कुरु कर्म'* जो नियत कर्म हैं उन्हीं को तुम करो। शास्त्रों में जिनका उल्लेख है कि यह कर्म तुम्हें करने हैं, जो कर्त्तव्य बताए गए हैं, उन कर्त्तव्यों को पूरी तरह से निभाओ।

अब यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की है कि कर्म तो करना, दौड़ना, भागना भी ज़रूर पर जैसे शास्त्र में कहा गया है-नियत कर्म ही करना, मर्यादित होकर कर्म करना, कर्मों में उलझ नहीं जाना, कर्म से कर्म को काटना, कर्म से कर्म के बन्धन में नहीं आना।

पाँव में लगे काँटा तो उसे निकालने का तरीका है कि एक काँटा और लीजिए, काँटे से काँटे को निकालिये, फिर दोनों ही काँटों को उठाकर फेंक दीजिए; कर्म से कर्म को करते हुए काटते चले जाओ, बन्धनों को तोड़ते चले जाओ और परमात्मा की ओर बढ़ते चले जाओ, यही जीवन का सन्देश है–भगवान कृष्ण इसी को *नियत कर्म* कहते हैं, *शास्त्रोक्त कर्म* कहते हैं, इसमें लगो और कर्म करते समय अपनी ऊर्जा-शक्ति को सम्भालो-कितनी ऊर्जा शक्ति है, सामर्थ्य कितना है?

याद कीजिए-महाभारत-ग्रन्थ लिखा जा रहा है-लिखने वाले गणेश जी और बोलने वाले व्यास जी। व्यासजी ने बोला, गणेश जी ने लिखा।

वैसे तो अलग ही तरह की परम्परा रही-महात्मा बुद्ध ने लिखा नहीं, बोला है; इतना बोला-बरसों तक वह मौन रहे उसके बाद में सिर्फ़ बोलते चले गए, लिखने वाले उनके बोले हुए को लिखते गए। अनेक महापुरुषों का वर्णन ऐसे ही आता है–वह कहते गए, दूसरों ने उनको लिखा और जब कहने पर आए तो इतना कहा कि उनके कहे हुए को पूरा तो लिख भी नहीं पाए वह लोग, स्रोत खुल गया अन्दर।

व्यास ऋषि बोलने लगे, गणेश जी लिखने लगे। एक बार भी बीच में यह नहीं पूछा गणेश जी ने कि ज़रा दोबारा से कहना; व्यास बोलते गए, गणेश जी उसी गति से लिखते गए।

जब लिखना पूरा हुआ, आख़िरी श्लोक था, व्यास ऋषि ने पूछ लिया–भगवन, इतना बड़ा कार्य आपके द्वारा हुआ लिखने का लेकिन आप थके नहीं, इतना बड़ा कर्म आपने किया लेकिन आप थके नहीं, एकदम शान्त होकर आप लिखते चले गए और बीच में बोले भी नहीं-तो इतने समय तक आप नहीं बोले यह मेरे लिए आश्चर्य की बात है!

विनायक गणेश उस समय जो उत्तर देते हैं वह याद करने योग्य है। उन्होंने कहा-किसी दीपक में तेल अधिक होता है, किसी में कम होता है लेकिन अक्षय भण्डार किसी भी दीपक में नहीं होता; ऐसे ही किसी व्यक्ति में शक्ति बहुत अधिक होती है, सामर्थ्य बहुत अधिक होता है, किसी में कम होता है लेकिन असीमित-शक्ति किसी में भी नहीं होती। जो व्यक्ति अपनी

शक्ति को संयम-पूर्वक, नियत दिशा में प्रयोग करता जाता है वह व्यक्ति संसार में बड़े से बड़े महान् कार्य कर पाता है और मैं जानता हूँ मेरे पास सामर्थ्य बहुत है लेकिन मैं भी इस बात को समझता हूँ अक्षय भण्डार किसी के पास नहीं है; अपनी शक्ति को संयमपूर्वक, सम्भालकर सही दिशा में लगाना चाहिए; मैंने भी ऐसा ही किया, इतने समय तक अपनी पूरी शक्ति लिखने में लगा दी, बोलने में नहीं और जो ज़्यादा कहने में लग जाते हैं, करने में नहीं, वह अपनी शक्ति को बिखेर देते हैं और उनका व्यक्तित्व भी दुनियां में बिखर जाया करता है, वह ऊँचाई पर नहीं पहुँचा करते, इसीलिए अपने को मौन रखकर कर्म में लगाना चाहिए; मैंने भी मौन रखकर अपने आपको कर्म में लगाया, कर्म में लगाया इसीलिए संतुलन बना, इसीलिए प्रसन्नता बनी, शान्ति बनी और अग़र इधर-उधर देखना, बोलना शुरू कर देता तो कर्म पूरा न होता।

इसीलिए नियत कर्म करना चाहिए जो शास्त्रों में बताया गया है, जो हमारे लिए कर्त्तव्य है, जो हमारे अधिकार क्षेत्र में है, अपने-अपने धर्म के अनुसार; धर्म के अनुसार से मतलब है–गृहस्थ धर्म, वानप्रस्थ धर्म, ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म या संन्यास धर्म–जो भी कर्त्तव्य हमारे सामने हैं, ख़ूबी से पूरा करो, पूरी शक्ति उसी में लगाओ, पूरा संतुलन उसमें बनाओ। जो आदमी थोड़ी देर इधर भागेगा, थोड़ी देर उधर, न इधर का ध्यान, न उधर का ध्यान, वह कुछ नहीं कर पाता है, न वह कुछ बन पाता है, न वह कहीं पहुँच पाता है।

वृत्तियां चंचल हों, तो लक्ष्य से विहीन हो जाता है मनुष्य।

भगवान कहते हैं – शरीर यात्रा को ठीक चलाने के लिए कर्म से रहित नहीं हो सकते, कर्म से युक्त होना पड़ेगा लेकिन शास्त्रोक्त ढंग से कर्म को करना, जो निर्दिष्ट कर्म बताए गए हैं उन्हें पूरा करो। इसीलिए ऐसा हुआ हमारे देश में कि ऐसी गृहणियां हुईं, अपना कर्त्तव्य-पालन करते हुए जिन्होंने बहुत बड़ा स्थान बनाया। ऐसे लोग हुए-साधारण कर्म करते-करते उन्होंने प्रभु की प्राप्ति की।

ताना बाना बुनते हुए कबीर भक्ति करते रहे; तिरुवल्लुवर साड़ियाँ बुनते रहे, साधना भी चलती रही; सन्त एकनाथ-गृहस्थ, सांसारिक-कार्य भी पूरे कर रहे हैं लेकिन भक्ति में भी चरम पर पहुँच गए। इसी प्रकार सन्त तुकाराम, घर-गृहस्थी में हैं-बड़े-बड़े भारी सन्तों का वर्णन अग़र हम पढ़ें, तो पता लगता

है कि वह संसार में रहकर, संसार से ऊपर उठकर कर्म करते हुए अपने आपको ऊँचा उठा ले गए।

जो भी हमारी मर्यादा के अनुसार हमारे लिए कर्म रखा गया हम उसको खूबी से करें उसी में बात बन जायेगी। छोटे-से अपने बालक को अपनी गोद में लेकर जब खिलाओ, शिक्षा दो, तो यही ध्यान रखो कि यह मेरा बाल-गोपाल है और अपने आपको यशोदा बनाने की कोशिश करो।

यशोदा वह है जो यश देने वाली है; पराए बच्चे को पालना और अपनी ममता का समस्त भण्डार उसको अर्पित कर देना-यह तो यशोदा माँ ही कर सकती है। माँ भी शायद इतनी ऊँचाई तक अपने प्रेम को न ले जा पाती जितना यशोदा माँ और नन्द बाबा ने अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

इसीलिए कृष्ण जब कभी भी याद करते हैं गोकुल को, बाबा नन्द याद आये, माँ यशोदा याद आयीं, तो प्रेम आँसू बनकर उनकी आँखों में ठहरता रहा। कृष्ण विराट् स्वरूप का दर्शन अर्जुन को करा देते हैं, उनके अन्दर समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड विद्यमान है लेकिन उसके बाद भी प्रेम को भूलते नहीं, माता-पिता का प्रेम आँखों में उसी तरह से उतर आता है जैसे सावन के बादलों से नन्हीं-नन्हीं बूँदें नीचे गिरने लगती हैं।

तो यदि आप एक माँ का कर्त्तव्य पूरा करते हैं, यशोदा माँ बनकर के दिखाईये और यदि आपको राजा दशरथ की तरह पिता का कर्त्तव्य पालन करने का अवसर मिला है, पालन-पोषण करो, और गुरुदेव वशिष्ठ ने आज्ञा की कि विश्वामित्र के साथ अपने राम और लक्ष्मण को भेजो-बहुत मोह और प्यार था दशरथ को-लेकिन गुरु का आदेश हुआ तो कहा – हाँ, यह बच्चे दिए आपको, आपने आदेश कर दिया, इनके साथ भेज रहा हूँ – राक्षसों का सामना करने के लिए भेज रहा हूँ राम-लक्ष्मण को; क्योंकि माता-पिता के लिए बच्चे हमेशा छोटे ही हैं। एक क्षण के लिए भी अपने बच्चों को अपनी आँख से दूर नहीं किया और दूर किया तो राक्षसों के सामने भेज दिया लड़ने के लिए, अपनी मोह-ममता को छोड़ दिया।

इसीलिए पुराने समय में ऐसा होता था—लोग जब सोचते थे कि मेरा बड़ा बेटा जिसके प्रति मेरा बहुत अधिक मोह है, धर्म के लिए अर्पित कर दूँ, राष्ट्र के लिए अर्पित कर दूँ, समाज के लिए अर्पित कर दूँ।

कहा जाता है कि हर व्यक्ति के ऊपर ऋण है माता-पिता, गुरुजनों का, ऋषियों का, मुनियों का, राष्ट्र का, धर्म और संस्कृति का। अग़र इस ऋण को चुकाना चाहते हो, ऋण से उऋण होना चाहते हो, तो अग़र आप गृहस्थ हैं तो आपका कर्त्तव्य है अपनी सन्तान को अपने से भी ज़्यादा लायक बनाकर समाज को अर्पित करो; समाज में अग़र सन्तान लायक बनकर के उभरती है तो आपका कुल रोशन होता है और आपका ऋण चुकता है।

काश, कि सब परिवार और सब माता-पिता अपनी सन्तान के प्रति सजग हो जाएं तो इस समाज में न कहीं आतंक दिखाई देगा न कहीं उग्रवाद दिखाई देगा, न ही भय पैदा करने वाले असामाजिक-तत्त्व दिखाई देंगे। क्योंकि कर्त्तव्य पूरा करने वाले लोग नहीं हैं।

भगवान आगे फिर कहते हैं—कर्म तुम्हारा यज्ञ बन जाये, तुम्हारा कर्म हवन बन जाए-

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।

प्रजापति ने जब सृष्टि की रचना की, कल्प की रचना की तो एक यज्ञ किया उन्होंने और प्रजा के लिए कहा कि इस यज्ञ के द्वारा ही तुम बढ़ सकते हो और यज्ञ के द्वारा ही तुम अपनी कामनायें पूरी कर सकते हो।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि इसीलिए यज्ञ करना सीखो; यज्ञ ही तुम्हारा कर्म है और कर्म ही तुम्हारा यज्ञ बन जाए तो फिर वह यज्ञ आपका कल्याण करेगा; मतलब, कर्म को यज्ञ बना लेना ज़रूरी है। थोड़ा विचार करना। कर्म यज्ञ कैसे बनता है?

आप सुनते हैं न कि हमारे देश में ऋषि मुनि लोग, यज्ञ-याग करने वाले लोग थे, हवन का धुँआ उठता रहता था और अश्वपति ने जैसे एक बार ऋषियों को देखकर घोषणा की थी – मेरे देश में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो चोरी करता हो, ग़लत काम करता हो, बिना हवन में आहुति डाले कोई भोजन नहीं करता, किसी महिला के हाव-भाव ग़लत नहीं, किसी के बच्चों के संस्कार बुरे नहीं और ऋषियों की तरफ़ देखकर कहा था, फिर आप लोग मेरा अन्न ग्रहण क्यों नहीं करना चाहते? मेरे अन्न में दोष नहीं है। यह अश्वपति ने, कैकेयी देश के राजा ने कभी घोषणा की थी।

तो यज्ञ-याग हमारे देश में बहुत होते थे, परम्परा थी। अब यह विचार कीजिए कि भगवान कृष्ण कह रहे हैं कि भगवान प्रजापति ने जब संसार की रचना की, कानून दिए संसार में, तो एक यज्ञ के द्वारा संसार की रचना की और सारी प्रजा के लिए यज्ञ दिया, यज्ञ करते हुए अपना कल्याण करो, कर्म को यज्ञ बनाओ। इसको थोड़ा समझना ज़रूरी है।

तुम्हारा कर्म यज्ञ बन जाए, याज्ञिक बन जाओ। कैसे? व्यक्ति जब भी कोई हवन करता है तो उसकी सुगन्ध को समेटकर व्यक्ति कभी भी कैद नहीं कर सकता। आहुति देते समय ही कहना पड़ता है- *"अग्नये स्वाहा:"*-अग्नि के लिए मैं आहुति देता हूँ *"इदमग्नये इदन्नमम"* यह अग्नि के लिए आहुति है मेरे लिए नहीं, देवता के लिए आहुति है *"इन्द्राय स्वाहा:"* *"प्रजापतये स्वाहा"*–जिस भी देवता का ध्यान करके आहुति दी गई, साथ में फिर कहा- 'इदन्नमम'- मेरा नहीं है।

पता चला, परोपकार के लिए किया गया जो भी कर्म है, जन-कल्याण के लिए, समस्त लोगों के कल्याण के लिए जो भी कर्म हम कर रहे हैं वह सब यज्ञ है। सेवा यज्ञ है, जन-कल्याण के लिए किया गया कोई भी महान् कार्य जिसमें आपका स्वार्थ नहीं जुड़ा हुआ वह सब यज्ञ है और उस यज्ञ को करने का अधिकार भगवान ने हमें दिया है; भगवान कहते हैं वह कर्म हमें करना चाहिए। और इससे कहा –

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयुन्त व:

–तुम देवताओं को प्रसन्न करो, देवता तुम्हें प्रसन्न करेंगे। देवताओं के लिए यज्ञ करो, वह देवता फिर तुम्हारे लिए यज्ञ करेंगे, तुम्हारा कल्याण करेंगे, तुम्हारा भला होगा। तुम्हें सुख मिला, अपना सुख बाँटना सीखो जिससे वह बढ़ सके।

आपने एक चीज़ देखी होगी-आनन्द आयेगा आपको – आपके कमरे में दो खिड़कियाँ हैं; आप निमन्त्रण देते हैं ताज़ी हवा को "पवन देव, घुटन है अन्दर, आप आओ, हमें ताज़गी दो।" तो आपने आमन्त्रण दिया लेकिन पवन देवता आने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्होंने कहा – "एक रास्ते से बुलाया और फिर कैद करके रखना चाहता है, दूसरी खिड़की ज़रूर खोल; एक तरफ़ से हवा आए, दूसरी तरफ़ से जाये; तो जब तू बुलाना चाहता है तो मेरे जाने का

रास्ता भी छोड़ और फिर मैं जाऊँगी (हवा कहती है मैं जाऊँगी) लेकिन आने के लिए और आऊँगी जाने के लिए तभी तुझे ताज़गी मिलेगी।

इधर से वायु आए तो उधर से जाए, मतलब जब तुम्हारे जीवन में आनम्द आए तो बाँटना शुरू कर दो, आनन्द आए बाँटना शुरू करो, बाँटना शुरू करोगे तो होगा क्या? वह कई गुणा हो करके तुम्हारे पास आयेगा, तुम्हें आनन्दित करना शुरू कर देगा।

कुएं से पानी निकालो तो वह दूसरों का कल्याण करेगा, दूसरा पानी वहाँ आयेगा, ताज़ा बना रहेगा; ज़िन्दगी ताज़ी बनी रहेगी, लो और बाँटना सीख लो; जल भर कर लाये बादल, इधर से भर कर लाये और उधर से बरसाये तभी उन बादलों की शोभा है और अग़र गरजते हुए चले जायें तो उनकी कोई शोभा नहीं, उनका होना ही बेकार है।

मनुष्य का होना ही तभी सिद्ध है जब वह दे रहा है और बाँटना सीख रहा है। इसी का नाम ज़िन्दगी है। यह जीवन की सच्चाई है, यह जीवन का वह उपदेश है जिसे भगवान कृष्ण कहते हैं-इसका नाम 'यज्ञ' है। इसीलिए यह एक चक्र है; भगवान कृष्ण ने आगे कहा-यह सृष्टि-चक्र है, सर्कुलर, एक चक्र की तरह से यह सब घूम रहा है। तो अग़र पाना चाहते हो-लो, लेकिन देने के लिए, लेकर के दोगे; और दोगे तो फिर तुम्हारे पास अपने आप वापिस आयेगा।

भगवान यह मार्मिक उपदेश देते हुए समझाते हैं कि तुम अग़र खाना भी चाहते हो तो इस बात का ध्यान रखना-यज्ञ करने के बाद जो यज्ञ-शेष है उस पर तुम्हारा अधिकार है; बाँटकर के खाओ उसमें स्वाद बढ़ेगा।

कहा जाता है कि किसी महापुरुष के पास–मैं नाम लेकर वर्णन करना चाहता हूँ–बाईस हज़ार साल पहले एक ऋषि हुए-उद्दालक। उर्षस्तचाक्रायण भी उस युग के एक ऋषि थे; दोनों के पास ही अलग़-अलग़ तरह के ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करने के लिए शिष्य आते थे और गुरु लोगों का शिक्षा देने का ढंग ही अनोखा होता है।

उद्दालक ने उषस्तचाक्रायण को ध्यान में रखकर अपने एक शिष्य से कहा कि मैं तुम्हें एक वस्तु दे रहा हूँ। यह लेकर के जाना और उषस्तचाक्रायण नाम के ऋषि को देकर आना।

उद्दालक ऋषि ने एक द्राक्षा, किशमिश, उठाई और उठाकर के अपने उस प्यारे शिष्य को देकर कहा – इसे लेकर जाओ और उशस्तचाक्रायण ऋषि को देना और वहाँ जो उनके पास हज़ारों शिष्य बैठे हैं, उन्हें कहना कि सबको बाँटकर के खायें, सबको देकर फिर खुद भोग लगायें।

उशस्तचाक्रायण के पास उद्दालक ऋषि का शिष्य वह छोटी-सी एक किशमिश को लेकर पहुँच गया। जाते ही उसने कहा कि हमारे गुरुदेव ने आपके लिए प्रसाद भेजा है, भेंट भेजी है, आप इसे ग्रहण कीजिए, खाईये, लेकिन एक शर्त–खाईयेगा बाद में; यह जो आपके हज़ारों शिष्य बैठे हैं इन सबको बाँटकर, देकर के, फिर आप ग्रहण करना।

अब जितने भी शिष्य वहाँ बैठे हुए थे, गुस्सा आ गया सबको–हमारे गुरुदेव का अपमान करने की कोशिश की जा रही है, एक छोटी-सी किशमिश को हम सब में कैसे बाँटा जा सकता है?

उशस्तचाक्रायण ने शिष्यों की तरफ़ देखा और एक को बुलाकर के कहा – वह जो वहाँ प्रसाद तैयार हो रहा है, ठण्डाई तैयार की जा रही है, उसमें जाकर इस किशमिश को डाल देना, ओख़ल में वहाँ जाकर इस किशमिश को घोट दिया जाए और इसके बाद जो ठण्डाई तैयार हो वह सबको बाँटना और जो प्रसाद बचे हमारे लिए भी लेकर के आना।

शिष्य लोगों ने बड़ी गहरी साँस ली और कहा – वाह-वाह हमारे गुरुदेव महान् हैं।

उशस्तचाक्रायण ने अपने सामने रखे हुए जो यज्ञ का साकल्य था, यज्ञ में प्रयोग की जाने वाली, हवन में प्रयोग की जाने वाली सामग्री, उसमें से तिल उठाया एक और तिल उठाकर के कहा कि खाली हाथ नहीं जाना, अपने गुरुदेव के पास जाना तिल लेकर के जाना और उन्हें कहना खुद भी खायें और सारे संसार को भी भोग लगायें, प्राणीमात्र को मिलना चाहिए।

अब शिष्य लोग जितने बैठे थे बड़े हँसे और खुश हुए वह लोग – वाह-वाह हमारे गुरुदेव ने ऊधर वाले गुरुदेव को हिलाने के लिए रास्ता ढूँढ लिया है। अब इतनी सी चीज़ को, इतने से तिल को सारे संसार को खिलाना है, समस्त मनुष्य-मात्र को खिलाना है, पशु जगत् को भी खिलाना है, पक्षी-जगत् को भी खिलाना है, कीट-पतंगों को खिलाना है, चींटियों को और कीड़े-मकोड़ों को सबको देना है और फिर खुद भी खाना है।

गुरु उद्दालक का यह शिष्य उशस्तचाक्रायण के दिए हुए उस प्रसाद को, तिल को, हाथ में लेकर बड़े प्यार से जाता है लेकिन मन में शंका इस बात की है कि गुरुदेव का कोप कहीं मेरे सिर पर न गिरे, गुस्से में आ जायें कि तू क्या करके आया है यह? फिर भी उसने सोचा, महापुरुषों की बातें महापुरुष जानते हैं; ऋषियों की बात ऋषि लोग जानते हैं, हम लोगों की बुद्धि तो वहाँ पहुँच भी नहीं सकती, हम क्यों निर्णय करें? जैसा आदेश हुआ है लेकर के चलते हैं। तिल लेकर आ गया।

उद्दालक के सामने आकर के बोला – महाराज, एक समस्या है। यह तिल भेजा गया है और कहा गया है कि आप भी इसको ग्रहण करना लेकिन पहले सारे ब्रह्माण्ड को खिलाना, जीव-मात्र को खिलाना, प्राणीमात्र को खिलाना, मनुष्य-मात्र को खिलाना, फिर आप भी इसको ग्रहण करना।

उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाया और कहा कि भाई, महापुरुष ने हमारे लिए, परमात्मा के लिए किये गए एक और महान् कार्य को, एक अच्छे कार्य को करने के लिए निमन्त्रण दिया है। सबको इकट्ठा बैठाया और कहा यज्ञवेदी की तरफ़ चलो, समस्त-प्राणीमात्र को भोग लगाने का समय आ गया है।

यज्ञवेदी पर सब बैठे और उसी के साथ उन्होंने कहा-*"अग्निर्वै मुखं देवानाम्"*–समस्त देवताओं का मुख है अग्नि, अग्नि को अगर यह तिल भेंट कर दिया जाये तो वह अग्नि समस्त देवताओं को पूरी ईमानदारी से, समस्त प्राणीमात्र को, जीवमात्र को यह भेंट बाँट देगी अग्नि; और सबको यह भाग पहुँच जायेगा और बाद में हमारे पास भी पहुँच जायेगा।

हवन करते समय जब आहुति दी जाती है तो बीच वाली जो दो उंगलियाँ होती हैं इनका प्रयोग करना चाहिए–एक तो *अनामिका* – 'नाम नहीं चाहिए', दूसरी *मध्यामिका* – बड़ी उँगली थी छोटी हो करके यहाँ आई है, झुकना, विनम्रता और *अँगूठा* जो धर्म का प्रतीक है क्योंकि कोर्ट में भी इसी का विश्वास चलता है, अँगूठा लगाया जाए; आज भी हिन्दुस्तान के कोर्ट में तो अँगूठा निशान चलता है, हस्ताक्षर भी कराते हैं, कहते हैं अँगूठा भी साथ लगाओ, ज़मीन-जायदाद का मामला है। हस्ताक्षर की कोई नकल कर लेगा लेकिन भगवान के हस्ताक्षर इसमें हैं, तुम्हारी पहचान अलग से बनाई गई है, इसकी कोई नकल नहीं करेगा। इसीलिए लगाओ अँगूठा।

उन्होंने दोनों उंगलियों को – अनामिका और मध्यामिका – और अँगूठे को मिलाया, तिल बीच में लिया और उस समय उद्दालक ऋषि ने कहा *"अग्नये स्वाहा इदम् अग्नये इदन्नमम"* – यह अग्नि के लिए आहुति दी, अग्निदेव ग्रहण करो; और वह फिर सारे संसार के लिए बंट गया और जिस समय उशस्तचाक्रायण को पता लगा, अपने शिष्य को बैठाकर कहा– 'तुम्हें थोड़ा मिला है या ज़्यादा इसकी परवाह नहीं करना लेकिन जितना है उतने में से बाँटकर के खाओ तो वह तुम्हारा कर्म यज्ञ बन जायेगा और परमात्मा को तुम्हारा कर्म स्वीकार होगा, तुम्हें आनन्द देगा'। उद्दालक ऋषि ने भी कहा उशस्तचाक्रायण ने सन्देश भेजा है बाँटना, लो और आगे दो; इसी में कल्याण है, इसी में आनन्द है।

भगवान कृष्ण कह रहे हैं कि इस तरह से यज्ञ शेष को ग्रहण करना। सीखो–प्राप्त करो और आगे बाँटो उसे। बाँटने का परिणाम यह होगा उस चीज़ का स्वाद बढ़ जायेगा।

भोजन जब आप अकेले करने बैठते हैं उसमें उतना स्वाद नहीं आयेगा; यदि आप अपने सगे-सम्बन्धी, मित्र लोगों के साथ बैठकर उस भोजन को खाने के लिए बैठें तो उसका स्वाद बढ़ जाता है।

कहते हैं खुशी को बाँटों इसीलिए कि खुशी बढ़ जाए और दु:ख को बँटाओ इसीलिए कि दु:ख हल्का पड़ जाये। जब भी किसी के जीवन में खुशी आती है लोग कार्ड लेकर पहुँच जाते हैं सब जगह बाँटने के लिए कि हमारी खुशी में शामिल होईये। क्यों? कि मेरी खुशी बढ़ जायेगी और किसी के ऊपर दु:ख पड़ जाये और लोगों को पता लग जाये तो लोग भागते हुए पहुँचते हैं। किसलिए? सब लोग साथ खड़े हो जाते हैं, यह कहने के लिए कि तुम्हारे साथ संवेदना और सहानुभूति लेकर हम आए हैं, अपने को अकेला मत समझना और यह नहीं सोचना कि तुम अकेले हो। दु:ख आया है, दुनिया में हर किसी पर दु:ख आता है, दु:ख के बिना कोई अछूता नहीं रहता। पर, हर एक को अपना दु:ख स्वयं भोगना पड़ता है, हिम्मत से सामना करना पड़ता है। मनोबल व्यक्ति का बढ़ जाता है और दु:ख घट जाता है।

लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं है कि अगर कोई कहे कि सुख बाँटने से सुख बढ़ेगा तो अपना दु:ख भी बाँट देना चाहिए। अगर आप दु:ख को बाँटना

चाहोगे तो आपके हिस्से में जो भी परमात्मा ने दुःख दिया है वह तो आपको भोगना ही पड़ेगा। बचा नहीं जा सकता; यद्यपि हर दुःखी आदमी दूसरे को अपना दुःख सुनाते-सुनाते यह सोचता है कि मेरा दुःख हल्का पड़ जाए और कई लोग तो इस तरह की बात करते हैं कि जिससे दूसरा आदमी भी दुःखी हो जाए लेकिन दूसरा दुःखी होता नहीं। कोई किसी के दुःख की बात सुनकर उसके दुःख को अपने ऊपर नहीं ओढ़ लेता, बल्कि आदमी यह कहता है कि कब यह अपनी कथा ख़त्म करे और कब मैं चलूँ? क्योंकि कोई किसी का दुःख सुनने के लिए बैठने को तैयार नहीं। और अग़र सुख सुनाओगे तो सुख सुन तो लेगा आदमी लेकिन साथ में ईर्ष्या से सुनेगा, हिस्सेदार बनना ही नहीं चाहता।

लेकिन फिर भी एक कार्य हो सकता है – अपने हाथ में जो खुशी है उसे बाँटना शुरू करो, जिससे वह कई गुणा बढ़कर आप तक पहुँचे। राजा बली ने जैसे किया था-संक्षेप में अग़र कहें तो –

राजा बली ने यह किया कि उसको जो अचानक किये गये किसी शुभ कर्म के कारण एक घंटे के लिए स्वर्ग का अधिकार मिला, इन्द्र का सिंहासन मिला, एक घंटे में उसने सोचा कि अपने सुख को अपने आप उपयोग करूँ तो वह ठीक नहीं रहेगा इसे बाँटना चाहिए क्योंकि उसे ऐसा पता लगा था कि अग़र अपना सुख बाँट दिया जाए तो वह कई गुणा बढ़ करके हमारे लिए सुरक्षित हो जाता है; उसने घोषणा कर दी कि एक घंटे के लिए मुझे स्वर्ग मिला है तो इस स्वर्ग के दरवाज़े सबके लिए खुले हैं, जो कोई आना चाहे एक घंटे के लिए आकर आनन्द भोगे।

द्वार खुल गए। राजा इन्द्र ने आकर के कहा– बली यह क्या कर रहे हो? सुख को तुम्हारे लिए दिया गया है, एक घंटे का अधिकार तुम्हें मिला है, औरों के लिए दरवाज़ा, क्यों खोलते हो?

इन्द्र जैसे ही बोले तो इन्द्र की बात सुनकर बली ने कहा-एक घंटे के लिए मैं राजा हूँ स्वर्ग का। अब यह सुख खुद भोगूँ या दुनिया को दूँ इसमें आप टोकने वाले नहीं हो सकते।

सबके लिए स्वर्ग के द्वार खोले, एक घंटे के बाद में बाहर निकाल दिए गए। बली राजा जब बाहर निकलने लगे तो खुश होते हुए कि मुझे तो सुख मिला ही है, सबको मिल गया है और अच्छी बात है, दिल को संतुष्टि मिली लेकिन उसी समय आकाशवाणी हुई 'तुमने अपना सुख दूसरों के हिस्से कर दिया, बाँट दिया, इसीलिए तुम्हें इसके बदले चक्रवर्ती साम्राज्य दिया जा रहा है। बहुत बड़ा राज्य तुम्हें मिलेगा, जाओ उस राज्य को भोगो।'

अगर बात समझ में नहीं आई तो ऐसे समझिये – किसान के घर में जब अनाज ख़त्म होने लगता है, वह क्या करता है-अनाज उठायेगा, थोड़ा-सा अनाज लेगा और भूमि माता के पास जाकर के कहेगा, भूमि को जोतकर, तैयार करके, कहेगा कि माँ मेरे घर में अन्न अब नहीं रहा, आप मुझे अन्न दो।

लेकिन मिलेगा कैसे? किसान क्या करता है पहले अनाज उठाकर के धरती को सौंपता है। धरती में बीज बो देता है। तो छः महीने के बाद बोया हुआ वही गेहूँ फिर काटने के लिए जाता है। एक दाना बोया, सौ दाने वापिस मिले। नियम है, एक गेहूँ का दाना बोईये उस अंकुर से आगे चलकर दो डंठल निकलेंगे जिनमें दो बालियां लगेंगी–एक बाली में पचास दाने और दो बालियों में सौ दाने। एक दाना बोया सौ दाने वापिस मिल गए, चुटकी भरके बोया मुट्ठी भर हाथ में गया, मुट्ठी भरकर बोया अंजलि भरकर हाथ में आ गया, अंजलि भर के बोया तो इतना मिल गया कि सिर पर उठाकर लाना पड़ रहा है। थोड़ा दो और अनेक गुणा पाओ।

हवन में आहुति डालो, कई गुणा बढ़कर के वह वापिस आयेगी और अगर ऐसे भी समझ में नहीं आता तो कभी अग्नि की (वैसे करना तो नहीं चाहिए लेकिन आपको समझाने के लिए कह रहा हूँ), अग्नि के अन्दर आप, जैसे यहाँ इतनी सारी संख्या में लोग बैठे हुए हैं, अगर इन सब लोगों के बीच में केवल एक मिर्च ही उठाकर अग्नि में डाल दी जाए, अग्नि देवता कितना बड़ा कमाल करेंगे, हज़ार गुणा उसकी शक्ति को बढ़ाकर सबको प्रभावित करेंगे, हर आदमी खाँसते हुए, छींकते हुए परेशान हो जायेगा और जबकि एक आदमी दो-दो, चार-चार मिर्च तो खा ही सकता है और कोई फर्क़ पड़ने वाला नहीं, लेकिन अग्नि को अर्पण किया तो उसकी ताक़त कितनी बढ़ गई।

तो देवताओं को आप देते हो, कई गुणा बढ़कर के वापिस मिलता है, नियम है देवताओं का कि या तो वह लेते ही नहीं और अगर लेते हैं तो किसी का बकाया वापिस रखते नहीं, कई गुणा बढ़ाकर वापिस कर देते हैं।

इन्सान विचित्र है। यह किसी को कुछ देना ही नहीं चाहता, उधार भी नहीं देना चाहता और अगर उधार भी देगा तो उसी को देगा जिससे मिलने की उम्मीद हो और जिसे यह लग जाए कि इससे वापिस पैसा मिलने वाला नहीं उसे तो उधार भी देने वाला नहीं।

देवता किसी से लेते नहीं लेकिन अगर ले भी लेते हैं, अगर कोई उनको अर्पण कर भी देता है, उनको भोग लगाता है तो कई गुणा बढ़कर के चीज़ वापिस मिलती है। यह चक्र है सृष्टि का।

भगवान कहते हैं कि इसीलिए बाँटो कि वह तुम्हारे लिए कई गुणा बढ़कर के फिर वापिस आए, तुम्हारा कल्याण करे-इसीलिए कर्म करना, कर्म से जी नहीं चुराना, ख़ाली बैठना नहीं लेकिन कर्म को यज्ञ बनाओ – *यज्ञौ वै विष्णु:* – यज्ञ नाम है विष्णु भगवान का, अपने नारायण को प्रसन्न करने के लिए कर्म करो।

तुम्हारा कर्म की परीक्षा होगी। थोड़ा-सा करके बैठ जाओ बात इतने से बनने वाली नहीं है। जैसे यज्ञों का अपना विधान है – कौन-सा यज्ञ कितनी आहुति चाहता है, उसके विधान हैं – तो ऐसे ही प्रत्येक कर्म में, कर्म एक यज्ञ है उसमें कितनी आहुति देनी पड़ेगी, कितने पसीने की बूंदे पड़ेंगी, कितनी मेहनत करनी पड़ेगी, यह एक निश्चय करो और उतनी देर तक थको नहीं, हारो नहीं, घबराओ नहीं, अपना कर्म करते जाओ, दुर्भाग्य भी सामने होगा टूट कर बिख़र जायेगा और सौभाग्य तुम्हारे सामने आ जायेगा; इसीलिए कर्म करते रहो।

एडीसन बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। उनका पूरा नाम था – थामस एलवा एडीसन। एडीसन के जीवन में एक घटना घटी। यह व्यक्ति सैकड़ों प्रकार के आविष्कार कर पाया – तेईस सौ आविष्कार इसके नाम से माने जाते हैं – इस व्यक्ति ने इतना अनुसंधान किया, इतनी चीज़ें इज़ाद की। (ग्रामोफोन बनाने का निश्चय करके, ग्रामोफोन इज़ाद किया तो इसी एडीसन ने किया, यह बाद में चलकर के तो आज उसी का विस्तार करके ही यह स्टीरियो, यह टेपरिकार्डर,

यह आपके सी.डी. (कम्पैक्ट डिस्क) यह सारी चीज़ें, आप लोगों का जो मनोरंजन का इतना साधन बढ़ गया, तो भौतिक ऋषि, यह वैज्ञानिक, इनका नाम ही एडीसन था) इसने अपने सहायक को, जिसका नाम जॉर्ज था उसको बुलाकर के कहा भाई ऐसा करो, मैं जो ग्रामोफोन तैयार करने लग रहा हूँ इसमें एक मशीन की और ज़रूरत पड़ रही है, आवाज़ ऊँची नीची जब होती है तो उसका संतुलन बनाना बड़ा मुश्किल हो रहा है, आवाज़ को उभारना, नियन्त्रित करना, तुम थोड़ा इस पर काम करो; और उसको काम दे दिया गया।

अपने सहायक को काम देकर उससे कहा – धैर्य से काम करना, घबराना नहीं। क्योंकि हर काम एक समय माँगता है, लगन माँगता है, निष्ठा माँगता है तो बड़ी लगन और निष्ठा से तुम्हें लगना पड़ेगा, हर काम का अपना एक समय होता है – कोई फल ज़रा जल्दी पक जाते हैं, कुछ को देर लगती है, कुछ पेड़ों के फल जल्दी प्राप्त हो सकते हैं, कुछ के लिए ज़रा ज़्यादा देर तक रुकना पड़ता है, सेवा करनी पड़ती है। जॉर्ज को बात समझ में आ गई लेकिन एक साल पूरी मेहनत उसने की, परिणाम कुछ नहीं निकला, उसने दूसरे साल फिर मेहनत की, कोई परिणाम नहीं निकला।

दो साल जब पूरे लग गए तो नौज़वान था, घबराकर वापिस आया, एडिसन के सामने हाथ जोड़कर बोला–मैं घबरा गया हूँ, मेरी ज़िन्दगी के दो कीमती साल बेकार गए, कोई परिणाम सामने नहीं आया, आपने मुझे किस काम में लगा दिया, यह कोई काम है? मेरा इस्तीफ़ा स्वीकार कीजिए, हो सकता है मेरे से लायक कोई आदमी हो, आप उसे चुन लेना, मैं तो दो साल अपनी ज़िन्दगी के तबाह करके बहुत दुःखी हूँ।

उसने सोचा कि शायद एडीसन उसका इस्तीफ़ा स्वीकार कर लेगा। एडीसन ने उसका इस्तीफा पकड़ा, फाड़ के फेंका और कहा – 'एक बात ध्यान से सुन। भगवान ने अग़र दुनिया में कोई समस्या दी तो उस समस्या का समाधान भी दिया हुआ है। कोई न कोई उसे खोजेगा ज़रूर, किसी न किसी ने उसे खोजना ही है, उसका समाधान निकालना ही है और एक नियत समय पर ही समाधान निकलेगा-हो सकता है तेरी मंज़िल तेरे नज़दीक हो, थक-हार के क्यों बैठ गया? इतनी दूर तक चलकर आ गया है, हो सकता है किनारा सामने ही हो, फिर से बैठ और फिर से अपना कर्म कर'।

वह फिर से बैठा और कुछ समय के बाद उसे जब सफलता मिल गई, वह जब चहकता हुआ, मुस्कुराता हुआ वापिस आया तो एडीसन उसकी तरफ़ देखकर कर कहता है – 'क्यों, अग़र उस समय घबराकर भाग जाते तो क्या तुम इतनी बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते थे, इतनी बड़ी सफलता प्राप्त कर सकते थे? घबराने वालों को नहीं कुछ मिलता'।

इस संसार में सफलता और उत्तम लाभ उन्हें ही मिलता है जो लगातार कर्म करते रहें, निष्ठा से कर्म करते रहें, घबराएं नहीं, खींचने वाली, सताने वाली, दबाने वाली ताक़तें अपना काम करती रह जायें, लेकिन वह निष्ठा से आगे बढ़ता रह जाए तो वही सफल हुआ करता है। यही नियम है संसार में सफल होने का। जो भी ऊँचाई तक पहुँचा न जाने कितनी मेहनत उसने की, कितना कर्म उसने किया, कितना परिश्रम उसने किया।

भगवान कहते हैं, जैसे यज्ञ एक आहुति, नियत आहुतियों के द्वारा सम्पन्न होता है ऐसे ही लगातार कर्म करना लेकिन कर्मों की आसक्ति नहीं आने देना।

आगे एक बात और कही – जो लोग केवल अपने लिए पकाकर खा रहे होते हैं वे लोग पाप खा रहे होते हैं, अकेला खाने वाला पाप खाता है, 'स्तेन' शब्द का प्रयोग किया भगवान कृष्ण ने कि वह चोर है, अपने लिए भोजन पका रहा है, बाँटना नहीं चाहता। यह शब्द–"चोर"–कहकर जो भगवान कृष्ण ने प्रयोग किया, यह हमारी आत्मा को झिंझोरने वाला, हिलाने वाला शब्द है क्योंकि वेदों में भी कहा–ऋग्वेद में ऐसा आया–

'केवलाघो भवति केवलादि'

जो अकेला खा रहा है वह पाप खा रहा है। आगे फिर कहा गया अकेला खाने वाला, कोई भी इन्सान जो, धन जोड़ लिया, कोने में छिपकर खा रहा है, कहा वह चोरी कर रहा है।

बहुत बाद में जाकर मार्क्स ने यह नारा दिया 'तुमने जो कुछ कमाया, अग़र तुम अपनी तिज़ोरी में बंद करके बैठ गए, बाँटना नहीं चाहते तो चोरी कर रहे हो।' यह बाद में बहुत सारे नारे दिए गए और लोग सोचते हैं कि शायद इन्होंने कोई विशेष क्रान्ति कर दी होगी, दुनिया में यह कोई विशेष बात, नई बात किसी ने कही होगी। यह नई बात नहीं थी पहले वेदों में था।

यह वेदों में जो चीज़ है या फिर कहिए जो भगवान कृष्ण ने अपने मुख से कही वह इस बात को समझा रही है कि वस्तुओं को ज़्यादा से ज़्यादा संग्रह करके अपने पास रख लेना यह अच्छी बात नहीं है। बाँटने का नाम यज्ञ है, सेवा का नाम यज्ञ है, परोपकार का नाम यज्ञ है, इसे करना सीखो।

आपके घर में मासिक आमदनी आई चाहे आपकी तनख्वाह या अन्न – धन, अपने प्रयोग करने से पहले भगवान को भोग लगाओ, अग्नि में आहुति दो, भगवान को भोग लगाईये, प्राणीमात्र के लिए हिस्सा निकालिये, गौ-ग्रास निकालिये, आस-पास कोई भूखा, परेशान व्यक्ति है उसके लिए हिस्सा निकालिए, माता-पिता, गुरु, ईश्वर, राष्ट्र सबके लिए हिस्सा आपका निकलना चाहिए।

कहते हैं जो पाप खा रहे होते हैं फिर वह रोग बनकर, फिर वही पाप, कलह बनकर, वही विवाद बनकर, वही तनाव बनकर, वही सन्ताप बनकर व्यक्ति के परिवार में, उसके जीवन में उभरता है।

बाँटना सीखो, देना सीखो। क्या आपने कभी इस चीज़ पर ध्यान दिया है कि – हमारा हाथ है न, कितना भारी अभ्यास है इसका, मुड़कर के हमेशा मुँह की तरफ़ ही आता है – मतलब ऐसा हो कि किसी कक्ष में आप बैठे हुए हैं और अचानक आपका दिया बुझ जाये या कैण्डल लाईट में आप खा रहे हैं तो वह बुझ जाए, या लाईट चली जाए, कुछ भी कह लीजिए – तो उस समय जो आप खा रहे हों, तो क्या आपका हाथ नाक की तरफ़ जायेगा, आँख की तरफ़ जायेगा, इधर-उधर चला जायेगा? कितना भी अन्धेरा क्यों न हो, कितना भी दिखाई न दे रहा हो तो भी आपका हाथ सीधा मुँह में ही जाता है, कुछ ऊपर गिरने वाला नहीं; इतना भारी अभ्यास है हमारा, अपने मुँह की तरफ हाथ ले जाने का।

लेकिन इस हाथ को सीधा रखना सिखाओ, पहले दूसरे को खिलाओ, फिर अपनी तरफ़ लेकर के आओ, तो उसका स्वाद बढ़ जायेगा और वह भोजन पुण्य बनकर के आपका कल्याण करेगा, आपके परिवार का और आपके राष्ट्र का।

इसको भगवान ने यज्ञ कहा है-कर्म करते रहना, कर्म यज्ञ बनाना, परोपकार के हिसाब से कर्म करना, इस समाज से तुम कमाते हो – कोई भी

व्यक्ति, कोई भी बिज़नस् मैन हो, व्यापारी हो, पूरे समाज से कमाता है वह लेकिन फिर समाज को लौटाता नहीं। आप जब इस दुनिया में आए तो आपके लिए, आपने चालीस साल पहले, पचास साल, साठ, सत्तर साल पहले यहाँ आपने जन्म लिया, आपको सड़कें बनी हुई मिली, पार्क लगे हुए दिखाई दिए, आपको स्कूल बने हुए दिखाई दिए, किसी ने बनाया था न आपके लिए। आते ही आपको यह सुविधाऐं मिल गईं। अब आपका भी तो फर्ज़ है आप भी तो कोई ऐसी चीजें बनाओ, आने वाली नस्ल के लिए कुछ तो देकर जाओ, किसी ने आपके लिए किया, आप भी किसी के लिए कर दो। अगर वह-हमारे से पहले वाले लोग-अपने हाथों को रोक लेते और कहते – हम अपने लिए करेंगे दूसरों के लिए नहीं तो समाज बन नहीं सकता था, न हमारा भला होता, न हम अपना कल्याण कर सकते थे।

इस दुनिया में हम किसी के लिए कर रहे हैं, कोई हमारे लिए कर रहा है – यह जो चक्र चल रहा है इससे संसार की सुव्यवस्था बनती है और यह संसार रहने के काबिल बनता है। इसीलिए दूसरों के हित के लिए कुछ करो।

आपके पास थोड़ा है या ज़्यादा यह बात नहीं सोचना, जो है उसमें से भी थोड़ा-सा हिस्सा दिया जा सकता है। खाली नहीं बैठना, कर्म करते रहना।

भगवान कृष्ण आगे एक शब्द और समझाते हैं – अर्जुन मेरे लिए संसार में कुछ करना बाकी है नहीं लेकिन फिर भी मैं खाली नहीं बैठा हूँ, मैं भी कर्म कर रहा हूँ। क्योंकि जैसा-जैसा कोई बड़ा आदमी करता है –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।

– बड़े लोग जैसा-जैसा व्यवहार और आचरण करते हैं वैसे ही उनकी देखा-देखी दूसरे लोग भी करते हैं। भगवान कृष्ण ने कहा मैं जो प्रमाण छोड़ रहा हूँ दूसरे उसी प्रमाण को, आदर्श को स्वीकार करेंगे। इसीलिए मुझे कर्म करना पड़ रहा है, तुम भी करना जिससे तुम्हारे पीछे आने वाले लोग तुम्हारा अनुकरण कर सकें।

एक अन्धा, बहरा व्यक्ति सत्संग में आकर बैठता था; लोगों ने उससे पूछा, 'बहुत ऊँचा सुनते हो आप और दिखाई तो देता ही नहीं, आने का लाभ क्या है? सत्संग में आकर बैठ भी गए तो फ़ायदा क्या हुआ? कुछ दिखाई नहीं

दिया और बहुत ऊँचा सुनते हो तो अगर बहुत ऊँचे से कोई शब्द कहा गया तो एक अक्षर कोई कान में पड़ भी गया तो उसकी कोई संगति नहीं मिलने वाली, ताल-मेल नहीं बनेगा, समझ में तो कुछ आयेगा नहीं।'

उस व्यक्ति ने कहा – यह एक पवित्र-स्थान है, जहाँ अनेक लोग भक्ति की लहर में बैठकर एक प्रवाह प्रवाहित करते हैं सात्विकता की। यहाँ बैठने से भक्ति की तरंग का लाभ तो मुझे होता ही है लेकिन इससे भी बड़ा लाभ यह होता है कि मैं अपने परिवार में बड़ा हूँ, आगे मेरे बच्चे हैं, तो जो मैं कर रहा हूँ आगे मेरे बच्चे भी तो अनुकरण करेंगे, उनको भी तो समझ में आयेगा कि मेरे पिताजी वहाँ जाते थे, सत्संग में जाकर बैठते थे, तो हमें भी जाना चाहिए। तो मैं इसीलिए कर रहा हूँ कि मेरे बच्चे भी अनुकरण कर सकें, भाषण देने से वह नहीं सीखेंगे, वह सीखेंगे मेरे आचरण करने से-जब मैं इधर आता हूँ तो कभी न कभी वह भी आयेंगे, मेरा थोड़ा कल्याण हुआ है, मेरे बच्चों का ज़रा ज्यादा कल्याण हो जायेगा, इसीलिए आता हूँ यहाँ।

बड़ा आदमी जो कुछ करेगा दूसरे उसका अनुकरण करेंगे, भगवान कृष्ण ने कहा—इसीलिए मैं कर्म कर रहा हूँ, अपने को ख़ाली नहीं छोड़ता, कुछ न कुछ करता रहता हूँ, तुम्हें भी कर्म से जुड़ जाना चाहिए, अर्जुन, ख़ाली नहीं बैठना, जो तुम्हारे लिए कर्म है, जो तुम्हारे लिए कर्त्तव्य है, जो तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल है और जो धर्म तुम्हें समझाया गया है उसको आधार मानकर कर्म करो।

एक बात और-कर्म करना है लेकिन ज्ञानपूर्वक, कर्म करना है आसक्ति को छोड़कर, कर्म करना है यज्ञ बनाकर, कर्म करना है फल की आशा छोड़कर और फल अगर मिलता है तो उसको अकेले ही नहीं ग्रहण करोगे बाँट करके खाओगे, यज्ञशेष बनाकर के खाओगे, अग्नि में आहुति देकर के जो कुछ बचा वह ग्रहण करो, बाँट कर के उसे लो, वह थोड़ा भी तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा।

लेकिन इसमें एक बात ध्यान रखनी है-ज्ञान से, प्रायश्चित से, आत्मचिन्तन से, अपनी आत्मा को निखारना है, बुद्धि को सुबुद्धि बनाना है, ज्ञान की धारा निर्मल हो सके इसे पहले समझना फिर कर्म तुम्हारा निर्मल होगा।

महाभारत में ऐसा वर्णन आता है कि जिस समय पाण्डव लोग युद्ध में विजयी हुए और राजसिंहासन पर वह आरूढ़ हुए, युधिष्ठिर को अपने समस्त भाईयों का, या रिश्तेदार या युद्ध में जो भी लोग मरे थे, सारे कौरव लोग, उनके संस्कार करने का, अन्तिम संस्कार करने के लिए अवसर मिला।

युधिष्ठिर सोच रहे हैं कुरुक्षेत्र की भूमि में खड़े होकर-कितने सपने थे, कितने अरमान थे, कितनी कामनायें थीं, क्या-क्या सोचा था, कौन-कौन व्यक्ति किस-किस तरह से कामनायें करता था और अब देखो क्या हुआ-ज़मीन पर अधिकार करने वाले लोग अधिकार नहीं कर पाए; मन बड़ा बोझिल था।

दाह-संस्कार हुआ; सब करने के बाद युधिष्ठिर के मन में आया युद्ध करते समय गलतियाँ हुई हैं, नीतियों का पालन हुआ, अनीतियाँ भी हुई, जाने-अनजाने में कितनी गलतियाँ हो गईं। ऐसी स्थिति में बहुत सारा पाप का बोझ हम लोगों के सिर पर होगा-तीर्थों में जाना चाहिए, प्रायश्चित करना चाहिए। तो सारे भाई, पांचों पाण्डव, कुन्ती माता को लेकर, तीर्थ यात्रा पर निकले। व्यास ऋषि ने जाते समय कहा – भाई, स्नान के लिए जाओगे, मेरा कमण्डल रखा हुआ है यह भी ले जाना। और उन्होंने कमण्डल, जिसको साधारण भाषा में फक्कड़-फ़कीर लोग "तुम्बा" बोलते हैं, वह दे दिया उठाकर (तुम्बा लौकी की जाति का ही एक फल होता है, जब वह ज़रा बड़ा हो जाता है तो, उसको काटकर के साधु लोग तुम्बा बनाते हैं); तो वह उठाकर के दिया और कहा स्नान करके आना, मेरे तुम्बा को भी स्नान कराना, यह भी पवित्र हो, मेरे लिए अच्छा रहेगा।

यह लोग यात्रा पर गए, तरह-तरह के तीर्थ किए, स्नान, ध्यान किया, वापिस आये, व्यास ऋषि के आश्रम में आकर जब खड़े हुए, युधिष्ठिर ने कहा – 'तीर्थ तो कर आया हूँ किन्तु मन को शान्ति नहीं मिली। हाँ, डुबकियाँ लगाई हैं, स्नान किया है, अनेक तीर्थ कर लिए।'

व्यास ऋषि पूछने लगे – मेरा जो तुम्बा कमण्डल लेकर गए थे उसको भी स्नान कराया या नहीं? सब लोगों ने बताया कि खूब नहलाया, धुलाया, पानी भरकर भी लाए। व्यास ऋषि ने कहा – यह अभी कुछ दिन पहले ही मैंने पके हुए फल का बनाया था, तो इसी का प्रसाद बनाकर खिला देते हैं सबको। उन्होंने उठाया, उसे तोड़ा, टुकड़े किए और कहा – भीम, ज़रा बाँटना इसको।

टुकड़े थोड़े-थोड़े बाँटे गए, सब ने थोड़ा-सा जीभ को लगाया और उठाकर फेंक दिया, कहा – महाराज, बड़ा कड़ुवा है यह।

व्यास कहने लगे इतने तीर्थों में गया, इतनी डुबकियाँ इसने लगाईं, इतना स्नान इसने किया, उसके बाद भी कड़ुवा का कड़ुवा निकला?

युधिष्ठिर उदास थे, कुन्ती माँ ने कहा, 'महाराज, यह इसका स्वभाव है, यह प्रकृति है, यह बदलती नहीं।'

व्यास बोले – 'प्रकृति तो नहीं बदलती लेकिन विकृति बदलती है। यह जो इस समय उदास खड़े हुए हैं युधिष्ठिर, यह डुबकियाँ तो लगाकर आ गए तन की लेकिन मन की डुबकी इन्होंने नहीं लगाई, इसीलिए मन को शान्ति नहीं मिली'।

युधिष्ठिर हाथ जोड़कर बोले – महाराज, समझाना ज़रा क्या कहना चाहते हैं आप?

व्यास कहने लगे – 'सोने को धोने से उसके अन्दर निर्मलता नहीं आती, अग्नि में तपाना पड़ता है तभी उसका मैल जलता है। युधिष्ठिर, तीर्थ करने के बाद एक और तीर्थ करना होता है, प्रायश्चित का तीर्थ अन्यथा इस कमण्डल की तरह कितनी भी डुबकी लगाओ कड़ुवा का कड़ुवा ही रह जाता है इन्सान। इसीलिए तुम्हें अन्दर भी डुबकी लगानी चाहिए तभी तुम्हारा ज्ञान, ज्ञान बनेगा।'

मैं यह कहना चाहूँगा-ज्ञान पाने के बाद, कर्म करने के लिए उद्दत होने से पहले आत्म-विश्लेषण करना बहुत ज़रूरी है; उसी से पवित्रता आती है, नई दिशा आती है और फिर जब काम आप करेंगे तो निष्काम भाव से, निसंग होकर यज्ञ-कर्म करने वाले बनोगे और वह कर्म पुण्य बनेगा, वह कर्म आपकी भक्ति बनेगा और उससे आप अपना भी कल्याण करोगे, जगत् का भी कल्याण करोगे।

गीता का यह कर्मयोग, जो गीता के तीसरे अध्याय में वर्णित है हमारी चिन्तन की धारा इसी कर्मयोग के साथ जुड़ी हुई है और जैसे कि हम लोग विचार कर रहे थे, भगवान कृष्ण ने कर्म करने के लिए प्रेरित किया, कर्मों में असंग रहें, निसंग रहें, निष्काम भाव से कर्म करें इसकी प्रेरणा दी। हमारा कर्म

यज्ञ बन जाए, हवन बन जाए, अग्निहोत्र बने, परोपकारी कर्म हो, हमारा कर्म सेवा बन जाए, हमारे कर्म से स्वार्थ निकल जाए, भगवान ने इसके लिए प्रेरणा दी और यह भी कहा-कर्म करने से संग पैदा होता है, आसक्ति पैदा होतीं है, फिर भी कर्म छोड़ना नहीं है कर्म करते जाना है। संसार में जानना श्रेष्ठ है, लेकिन जानने से व्यवहार में लाना श्रेष्ठ है। व्यवहार, पुरुषार्थ से लगातार जुड़ा रहे यह भी आवश्यक है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक जीव, प्राणीमात्र, सभी कर्म में रत हैं तो हमें भी कहीं ख़ाली नहीं बैठना, आलसी नहीं होना, अन्तिम समय तक पुरुषार्थ करते हुए जीवन जीना चाहिए। भगवान ने कहा कि यद्यपि मेरे लिए अब कुछ करना शेष नहीं है, लेकिन फिर भी मैं कर्म करता हूँ क्योंकि बड़े लोग जो कुछ करते हैं अनुकरण करने वाले लोग उसी से प्रेरणा लेते हैं, उसी तरह से जीवन को बनाने लगते हैं। संसार कर्म से जुड़ा रहे, भगवान कहते हैं कि इसीलिए कर्म लगातार करना चाहिए, मैं भी करता हूँ।

सदैव परमात्मा से यह कामना करो कि हे परमात्मा! मेरे जीवन का यह फूल, जीवन की डाली पर लगा हुआ महकता रहे, प्रसन्न रहे, खिलता रहे, सुगन्ध लुटाता रहे, डाली पर हँसते-मुस्कुराते यह झड़ जाए ऐसी कृपा हो लेकिन सड़े नहीं, गले नहीं, हँसते-मुस्कुराते अपनी खुशबू लुटाते हुए अचानक पत्तियाँ झड़ जायें, जीवन की साँस बिखर जाये तो अच्छा; हवा में ख़ुशबू फैलती रह जाए, संसार में हमारे कर्मों की सुगन्ध फैलती रह जाये।

सदैव कामना करना कि – हे परमात्मा, मुझे इस लायक बनाये रखना कि मेरे द्वारा सेवा होती रहे, सेवा की कामना कभी न करूँ-दूसरों को दूँ पर लेने के लिए कभी हाथ आगे न फैलाऊँ; भगवान इस दुनिया में मैं दाता बनकर के जीवित रहूँ, याचक बनकर, भिखारी बनकर कभी न जिऊँ। मेरे परमात्मा, जब तक संसार में रहूँ, यह मेरी आँखें तेरी लीला देख-देखकर प्रसन्न हों, किसी के ऐब देखने में, किसी का ऐश्वर्य देखकर जलने में मेरी आँखें व्यवहार में न आयें; मेरे कान सदैव तेरी महिमा सुनने के लिए उत्सुक हों, दूसरों की निन्दा में मेरी रुचि कभी न हो; यह वाणी तेरी महिमा के गीत गाए, तेरी महिमा में लगे हुए बन्दों की प्रशंसा करे, लेकिन कभी किसी की निन्दा करके, किसी के बढ़ते हुए कदमों को रोकने की कोशिश न करे; इस हृदय में अगर धड़कन रहे तो तेरे प्यार की हिलोर उठे-यह संकुचित हृदय न हो, इसमें विशालता देना,

सारा संसार इसमें समेट लूँ, सबके लिए मेरा हृदय खुला रहे; मेरे कदमों में ऐसी शक्ति देना अन्तिम-समय तक चलते रहें, सन्मार्ग की ओर, कल्याण के मार्ग की ओर, अपना भला करूँ, संसार का भला करूँ लेकिन कभी किसी का बुरा न करूँ।

इस तरह की कामना और प्रार्थना कीजिए। जीवन के अन्तिम लम्हें तक कर्म से जुड़े रहो।

याद कीजिए, संसार के जितने भी बड़े से बड़े महापुरुष थे, जिन्होंने आयु का बहुत बड़ा भाग पाया, कर्म से जुड़े रहे – चाहे महात्मा बुद्ध का नाम लें या गुरुनानक देव जी महाराज – आयु का बड़ा भाग उनके सामने था, कर्म से जुड़े रहे, बाँटते रहे जो कुछ था।

बुढ़ापा शरीर में प्रवेश कर जाए कभी अपने आपको यह नहीं कहो कि अवकाश प्राप्त हो गए हो; रिटायरमैन्ट वाली बात है ही नहीं। यह हो सकता है कि एक स्थान से, एक कर्म से, एक ड्यूटी से, किसी कर्त्तव्य से मुक्ति हुई, दूसरा कर्त्तव्य सामने आ गया – एक आश्रम का कार्य सम्पन्न, दूसरा आश्रम का कार्य शुरू हो गया, गृहस्थ-आश्रम का कार्य सम्पन्न वानप्रस्थ शुरू हो गया, वानप्रस्थ का कार्य सम्पन्न संन्यास शुरू हो गया लेकिन यह नहीं मानना कि हम बूढ़े हो गए, यद्यपि मन किसी का भी मानने को तैयार नहीं होता भले ही तन मानता हो। आदमी की वासनायें तो निरन्तर जागृत रहती हैं।

लेकिन यहाँ ध्यान देने की बात है कि व्यक्ति की आयु बढ़े, उसका ज्ञान भी बढ़ना चाहिए, कर्मशील बना रहे। जैसे-जैसे समझ विकसित होती जाती है वैसे-वैसे कर्मों की दशा भी ठीक होती जानी चाहिए।

तुलसीदास हों या सूरदास, या वाल्मीकि आयु का बड़ा भाग प्राप्त करके भी अन्त तक कर्मशील रहे-और अपना ज्ञान भी बढ़ाया और बाँटा; भीष्म बहुत बड़ी आयु का भाग प्राप्त करके भी युद्ध की भूमि में खड़े हुए हैं, संघर्ष में लगे हुए हैं; एक सौ पन्द्रह वर्ष की आयु अर्जुन की है; कृष्ण, आयु का बड़ा भाग सामने रखते हैं और संसार के सामने लीला रखते हैं-कर्म से जुड़े रहो। सुकरात, प्लेटो, पैथागोरस, होमर, गैलिलियो या और जितने भी यह चाहे दार्शनिक थे, कवि थे या वैज्ञानिक-कोपरनिकस, आइंस्टीन, जिनका भी नाम हम लें, आयु का बहुत बड़ा भाग अपने सामने रखकर कभी यह नहीं माना कि हम बूढ़े हो गए।

टॉलस्टाय, बड़ी आयु होने के बाद भी, ज्ञान विकसित होता गया, सेवा की तरफ मन बढ़ता चला गया या कवि टैनीसन, बूढ़े होने के बाद भी अपने आपको कभी बूढ़ा नहीं महसूस किया और ध्यान आता है एक ऐसा व्यक्ति, जिसने विज्ञान – कथाएँ लिखी – एच.जी. वेल्स – टाँग टूट गई, बिस्तर पर लेटा हुआ है तब पढ़ना शुरू किया उसने और बूढ़ा होने तक भी कभी हार नहीं मानी। आपको हैरानी होगी कि एच.जी. वेल्स जब सत्तर साल की उम्र में पहुँचे उन्हें लगा कि कहीं मेरी शक्ति हल्की तो नहीं पड़ गई? बारह पुस्तकें उस समय भी लिख गए सत्तर साल की आयु में पहुँचने के बाद। और टैनीसन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जिस समय वह अपनी अस्सी वर्ष की आयु में पहुँचे थे, जब व्यक्ति का मस्तिष्क और क्षमताऐं हिलने लगती हैं तब उन्होंने अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक "क्रासिंग द वार" संकलित की।

तो आप अगर मन से मान लेते हैं कि अब हम बूढ़े हो गए, सोच लेना बुढ़ापा आ ही गया फिर। जब तब आप अपना कर्म स्वयं करते रहेंगे, दूसरे की तरफ़ नहीं देखेंगे, परमुखापेक्षी नहीं होंगे, जब तक आपको किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं, जब तक आपकी हिम्मत आपका साथ दे रही है, आपकी उम्र कितनी भी हो गई हो यह मान लेना कि बुढ़ापा अभी दूर है और जब आपको पग-पग पर दूसरों की सहायता और सहारे की ज़रूरत पड़ती है, आपकी हिम्मत साथ छोड़ जाए, निराशायें बढ़ने लग जाएं, हर समय भाग्य का रोना रोने लग जाऐं, हर समय चाहिए कि कोई न कोई मेरा सहारा हो तो समझ लेना कि आयु चाहे आपकी कम है लेकिन बुढ़ापा शुरू हो गया है। अपने आपको सामर्थ्यशाली बनाओ।

भगवान को 'सर्वशक्तिमान' कहा गया है – इसीलिए नहीं कहा गया कि भगवान अपनी जगह अपने को मिटाए और दूसरे एक ऐसे शक्तिमान भगवान को पैदा कर लें जो कुछ भी कर सकता है इसीलिए नहीं सर्वशक्तिमान कहा गया! सर्वशक्तिमान का अर्थ – शक्ति से युक्त होना तो बात अलग हुई लेकिन इसके साथ एक और बात भी है-जो अपने कार्य में कभी किसी की सहायता नहीं लेता, अपना कार्य स्वयं सम्पन्न करता है।

आपको थोड़ा-सा धन मिल जाए नौकरों की फौज़ आपके आस-पास होनी चाहिए, बेल दबाओ, घण्टी बजाओ, जूते पहनाने के लिए भी नौकर आना चाहिए।

इब्राहिम लिंकन – अमेरिका के राष्ट्रपति बने, अपने जूते स्वयं साफ कर रहे थे। किसी मित्र ने पूछा, 'आप अपने जूते स्वयं साफ़ करते हैं?' लिंकन ने आश्चर्य करते हुए कहा – 'क्या तुम अपने जूते दूसरों से साफ़ कराते हो? दूसरों से साफ कराना घटियापन है, अपना काम स्वयं करना यह बड़प्पन हो सकता है, मेरी तरफ क्यों आश्चर्य से देख रहे हो?'

तो किसी भी आयु में यह लोग रहे हों, मतलब बुढ़ापा भी सामने आ गया हो लेकिन इन महापुरुषों ने कभी भी अपने आपको बूढ़ा नहीं माना।

महात्मा गांधी, इतना तेज़ चलते थे, अब कोई उनको देखकर कहे कि बूढ़े हो गए हैं, बुढ़ापा तो नज़र नहीं आता था क्योंकि क्षमता अन्दर बड़ी भारी दिखाई देती थी।

इसीलिए मैं यह कहूँगा कि अपने सामर्थ्य को और अपनी हिम्मत को टूटने मत दो। भगवान कृष्ण ने हमें यही सन्देश दिया है कि कर्म से जुड़ो, कर्म को करते चले जाओ, कर्म से रिक्त नहीं होना, मुक्त नहीं होना, कर्म छोड़ना नहीं लेकिन हमारा कर्म यज्ञ बन जाए इसके लिए प्रयत्नशील हो। जो भी संसार के परोपकारी कार्य हैं वह सब यज्ञ कहलाये गए, पर – उपकार के लिए किया गया प्रत्येक कार्य, जन कल्याण की भावना से जो भी कार्य आप करो, उन्हें करने के लिए प्रयत्नशील रहो, मन में यह एक भावना बना लो कि जब इस संसार में प्रत्येक पेड़-पौधा, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, नदी-पर्वत, परमात्मा की यह समस्त संरचनायें सबका कुछ न कुछ भला करते हैं हमसे भी तो कुछ होना चाहिए न? हम भी तो अपने शरीर से, अपने मन से, अपने धन से संसार का कुछ उपकार करें।

मज़े की बात यहं है कि जितना-जितना आप विस्तार को प्राप्त होते हैं, काम करते जाते हैं, बड़े-बड़े कार्य करने के लिए सक्षम होते हैं उतनी ही बड़ी बात यह होती है कि आपकी क्षमता बढ़ती जाती है, सामर्थ्य बढ़ेगा आपका और फिर आपको आश्चर्य लगेगा कि आप छोटी-छोटी बातों के लिए घर में परेशान होते थे, अब आपको लगेगा हम तो इतने बड़े-बड़े कार्य कर लेते हैं– यह समस्या तो समस्या है ही नहीं। अपनी बड़ी भारी शक्ति का पता लगेगा आपको।

जो आदमी बड़े भारी कार्यों को संचालित कर सकता है वह छोटी-मोटी समस्याओं के सामने उलझेगा नहीं, और जिस आदमी ने छोटी समस्याओं को ही पहाड़ मानकर घबराना शुरू कर दिया वह वहीं उलझा रह जायेगा।

कहा जाता है कि अगर अपने जीवन में खुद आप यह देखते हो कोई समस्या नहीं है तो बहुत अच्छी बात है, फिर यह करना चाहिए कि पड़ोस के लोगों की समस्याओं को अपनी समस्या समझकर उसे दूर करने के लिए प्रयत्नशील हो जाओ और यह ज़रूर होगा कि दूसरों की समस्या दूर करने वाला, दूसरे का दुःख दूर करने वाले का दुःख तो परमात्मा दूर करता है क्योंकि परमात्मा भी देखते हैं कि यह मेरी तरफ़ लग गया तो फिर इसका ध्यान रखना मेरा काम है।

भगवान कृष्ण ने हमें यह सन्देश दिया-कर्म से जुड़े रहो, कर्म को छोड़ो नहीं। आगे फिर अर्जुन ने, भगवान कृष्ण से यह प्रश्न किया –

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ।।

'केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः' – यह मनुष्य किससे प्रेरणा पाकर पाप करने के लिए जाता है? *'अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय'* हे वार्ष्णेय! न चाहते हुए भी इसके द्वारा पाप हो जाता है। मनुष्य जानता है कि यह मार्ग ग़लत है लेकिन फिर भी उस पर चल पड़ता है। पता है क्रोध नहीं करना चाहिए लेकिन हो जाता है। हम मानते हैं किसी को सताना ठीक बात नहीं, लेकिन फिर भी व्यवहार में यह बात हो जाती है, क्यों होता है ऐसा? बड़ा मार्मिक प्रश्न है और बड़ा ही सटीक, महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। और अर्जुन यहाँ तक कहता है *'बलादिव नियोजितः'* – कि बल पूर्वक जैसे खींचा जाता है ऐसा ही इन्सान चल पड़ता है। क्या कोई ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को ज़बर्दस्ती लेकर जाती है?

चला था बाजार में सामान लाने के लिए, किसी का झगड़ा देखा सुलझाने के लिए चला, सुलझाते-सुलझाते खुद उलझ गया और जिसका झगड़ा था वह तो चला गया, खुद का झगड़ा सिर पर मोल लेकर खड़ा हो गया। उसका झगड़ा तो हल्का था, अपना झगड़ा तो इतना भारी हो गया कि बात मुकदमे तक पहुँच गई, सिर फूट गए, हाथ टूट गए। नियत तो ऐसी नहीं थी।

यह क्या संयोग है? या किसी ने ज़बर्दस्ती उधर खींच लिया। ऐसा सब क्यों होता है? मनुष्य न चाहते हुए भी पाप-कर्म की ओर क्यों प्रेरित होता है? भगवान इसका उत्तर देते हैं –

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि यह काम, क्रोध, जो रजोगुण से उत्पन्न होता है, अर्जुन! इसको जानो यह वैरी हैं, *महाशनो* यह बड़ा भूखा, बहुत कुछ खा जाने वाला है, व्यक्तित्व को खा जाता है, *पाप्मा* और पाप्मा शब्द के आगे महा लगाकर कहा महापापी है–यह पाप की ओर धकेलने वाला है-इस वैरी को जानो।

रजोगुण के कारण काम, क्रोध आदि उत्पन्न होते हैं। काम के द्वारा क्रोध की उत्पत्ति और काम, रजोगुण के कारण उत्पन्न होता है और उसका प्रभाव है कि यह वैरी व्यक्ति के व्यक्तित्व को खा जाता है और ऐसा *महाशनो* बड़ा भूखा है, यह तृप्त होने वाला नहीं है, इसे कितना भी तृप्त करना, क्रोध से क्रोध बढ़ेगा, वासनाओं से वासनाएं बढ़ती जायेंगी कहीं अन्त नहीं होगा। संसार के भोग भोगते चले जाओ और यह सोचो कि इससे हमें शान्ति मिल जायेगी, शरीर और इन्द्रियाँ शिथिल हो सकती हैं लेकिन मन की वासनाएं शिथिल नहीं हो सकतीं। महाभारतकार ने इसे दूसरे अन्दाज़ से कहा –

ययाति ने संसार को जानने के लिए, और समझने के लिए, भोगों की दुनिया की वास्तविकता जानने के लिए, अपने बच्चों से कहा कि थोड़ी-थोड़ी आयु का भाग तुम लोग मुझे दो क्योंकि मैं संसार को नए ढंग से भोगना चाहता हूँ, जीना चाहता हूँ। योग-विद्या से आयु का भाग बच्चों से लेकर तीन सौ साल तक ययाति जिया, संसार के भोग भोगे, संसार में खूब रमा, बाद में उसने निचोड़ लिखा, तीन सौ सालों का निचोड़, कहा – कि मेरी ज़िन्दगी का सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण तजुर्बा यह है – *'न जातु कामः'* – काम जो है-*'उपभोगेन न शाम्यति'* – इसका भोग करते हुए इसका शमन नहीं किया जा सकता। वासनाओं को, भोगों को, तृप्ति के लिए, उनमें उतरते चले जाओ कभी तृप्ति नहीं होगी।

आगे उन्होंने कहा कि जैसे कोई ईंधन डालकर भड़कती हुई अग्नि के ऊपर ईंधन पर ईंधन डालकर कहे-बस, अग्नि अब बुझने वाली है; ईंधन पर ईंधन डालने से कभी भी अग्नि बुझने वाली नहीं, आग के अन्दर और ईंधन डालते जाओ, और लकड़ियाँ डालते जाओ आग बुझेगी नहीं, और भड़केगी-इसी तरह से भोगों में और ज़्यादा उलझते चले जाओ, उतरते चले जाओ, वासनाओं की आग और भड़केगी, और भड़केगी। उन्होंने कहा कि मैंने तीन सौ सालों तक जी कर देखा, मन नहीं थका, विभत्स होता चला गया, भयंकर होता चला गया, वह इस तरह की कल्पनाओं में और ज्यादा उलझ गया कि इसके चारों तरफ़ एक नर्क बनता जा रहा है।

इसीलिए शास्त्रकार समझाते हैं-राजसिकता के बजाय सात्विकता लाओ जहाँ से सन्तोष की बूँद जन्म लेती है, जहाँ से अन्दर से तृप्ति आती है, जहाँ से समझ आती है कि किस वैरी के चक्कर में आ गए?

भगवान यह समझाते हैं कि रजोगुण, यह वृत्तियाँ जो जागृत होती हैं यह साधारण नहीं हैं, यह ज्ञानी को और महान से महान व्यक्ति के व्यक्तित्व को हिला देती हैं क्योंकि यह तूफ़ान हैं जो मनुष्य के अन्दर छिपे हुए हैं; उठने लग जाऐं तो इतना भयंकर रूप धारण करते हैं – समझ काम नहीं करेगी, विद्या काम नहीं आयेगी, ऊँचे-पद पर बैठे हो, बड़े भारी सिंहासन पर बैठे हो ऊँचाई से नीचे की तरफ़ आने में देर नहीं लगेगी।

प्रकृति का एक बहुत बड़ा खिंचाव है – माया का – जो इन्सान को नीचे की तरफ़ खींचता है और वह खींचने वाला तत्त्व और कोई नहीं है रजोगुण के कारण उत्पन्न होने वाला यह 'काम' है और इसी का एक दूसरा स्वरूप, मनुष्य की वृत्तियों का एक उग्र रूप – क्रोध है। और इसका कहीं अन्त नहीं, इससे कहीं मनुष्य को विश्राम वाली, शान्ति वाली स्थिति मिल ही नहीं पाती। क्रोध से क्रोध बढ़ता जायेगा, वासनाओं से वासनायें बढ़ती जायेंगी – इन्हें रोकने के लिए अपने को नियन्त्रित करने के लिए पहला कार्य करो कि इसे जानो।

'विद्धयेनमिह वैरिणम्' इस दुनिया में जो तुम्हारा सबसे बड़ा वैरी है, तुम्हारे अन्दर छिपा हुआ है, जान लो पहले उसे। क्रोध प्रकट हुआ है तो मान लेना दुश्मन जाग गया है, मिटाने पर आया है, भला करने के लिए नहीं उठा

है, कोई कल्याण करने के लिए नहीं आया, कुछ देकर नहीं जायेगा, छीनकर ले जायेगा। इससे तुम्हारा कोई मंगल नहीं होने वाला, अनिष्ट ही होगा। इसे रोको।

भगवान यह भी कहते हैं कि दमन नहीं करना, जानना पहले। सारा दिन कहते रहना क्रोध नहीं करूँगा, क्रोध नहीं करूँगा, गुस्सा नहीं करूँगा, क़िस बात पर गुस्सा आता है? ऐसा सोचते-सोचते गुस्सा आ ही जाता है। समझाना है पहले अपने आपको – तुम्हारा दुश्मन कौन है?

भगवान कहते हैं जानो इस वैरी को, जब तक जानोगे नहीं, तक तक इसे दूर कैसे करोगे?

अब बच्चों को आप अगर नहीं समझाओगे किसी बात के लिए और आप ज़बर्दस्ती कोई चीज़ उनसे मनवाते हैं, मान तो जायेंगे वह, ज़बर्दस्ती कर भी लेंगे लेकिन ग़लती को दोहरायेंगे ज़रूर।

बच्चे तो शिकायत करते हैं आकर-मैं सोना नहीं चाहता, माँ ज़बर्दस्ती सुलाती है और मैं जागना नहीं चाहता ज़बर्दस्ती उठाती है, समझ में नहीं आता–ऐसा क्यों करती है माँ? जब हम सोना नहीं चाहते, ज़बर्दस्ती बैठेगी-लोरी गायेगी, सिर के ऊपर हाथ थपथपाएगी, पीठ थपथपाएगी, कभी कहेगी उल्टा होकर लेट, कभी कहेगी करवट ले, सुलाएगी ज़बर्दस्ती हम सोना नहीं चाहते और जब हम जागना नहीं चाहते तो फिर जगाने की कोशिश करती है उठ बेटा उठ-उठ। माँ और तो सब बातों में अच्छी है लेकिन यह बात अच्छी नहीं लगती उसकी। अब बच्चों की शिकायत है यह।

क्या कहोगे अब आप बच्चों को? हम तेरा भला चाहते हैं इसीलिए हम जो कर रहे हैं ठीक है-स्कूल जाना होता है, जल्दी नहीं सोयेगा तो जल्दी उठेगा कैसे? बात यह भी नहीं है। बहुत प्यार से उसके हृदय में प्रवेश करो, उनके मन तक पहुँचो।

बूढ़े आदमी की नींद चार घण्टे, पांच घण्टे में भी पूरी हो जाती है। जवान आदमी को कम से कम छह-सात घंटे की नींद चाहिए। किशोरावस्था वाले को आठ घंटे चाहिए, बच्चों को दस घंटे चाहिए। अब जवान आदमी, वह तो घोड़े बेचकर भी सोयेगा, बूढ़े आदमी की हालत यह है कि अपने आप नींद खुलती है, क्योंकि शरीर की दशा ही ऐसी है, जल्दी उठना ही पड़ेगा, जाना

ही पड़ेगा उसे। अग़र वह कहे कि देखो हम कितने सही हैं, ठीक समय पर, चार बजे आँखें खुल जाती हैं, यह जवान लोगों को देखो सोते ही रहते हैं; अब डाँटिये आप उनको और वह समझेंगे बूढ़ा आदमी पहले सब कुछ ऐसे ही करता रहा और अब हमें रोक रहा है। जब तक आप उनको समझायेंगे नहीं वह मानेंगे भी नहीं।

दूसरों की बात छोड़िये, भगवान तो यह कहते हैं खुद को भी जब तक समझाओगे नहीं आप भी मानोगे नहीं। पहले अपने को समझाओ तुम्हारा वैरी कौन है? तुम्हारा दुश्मन कौन है और दुश्मन है तो फिर यह नहीं है कि अपने अंगों को काटकर फेंक दो। स्वयं को ही बदलना पड़ेगा, समझाना पड़ेगा। तो पहले जानिये अपने वैरी को, अपने शत्रु को पहले जानिये कि यह शत्रु कौन है? क्या है? कैसा है? और फिर इस शत्रु को जानने के बाद नियन्त्रित करना शुरू कर दो।

कहा जाता है अश्लील चर्चा, अश्लील चित्र, अश्लील वार्ता और ग़लत लोगों का संग व्यक्ति के व्यक्तित्व को बहुत ज़ल्दी ख़राब करेगा। कितना बड़ा ऋषि- कण्व ऋषि-सौभरि नाम का उसका पुत्र था; पिता ने यह कोशिश की कि जो मेरे अन्दर कमी रह गई मेरे बेटे में न रह जाए। बड़े संस्कार दिए उसे–जगाया, संभाला, तपस्या में बैठाया; छोटी आयु में ही उसने तपस्या करते करते आसमान की ऊँचाईयाँ छुई; यौवन का उद्दाम उत्साह शरीर में था, सारी ऊर्जा-शक्ति साधना में लगाता जा रहा है, लोग देखकर हैरान हैं कि बस अग़र अब यह दो-चार सीढ़ियाँ और चढ़ गया तो युग परिवर्तन होगा, संसार में एक नई धारा जागेगी। लेकिन परिणाम देखिये – तपस्या करते-करते एक दिन नदी में स्नान करने के लिए गया और वहाँ मछलियों की काम-क्रीड़ा को देखने के साथ ऐसा मन में विकार जागा, तपस्या छोड़ी, सीधा राजा के महल में जाकर खड़ा हो गया और कहा मैं गृहस्थ होना चाहता हूँ।

राजा ने कहा इतना बड़ा तपस्वी, गृहस्थ में जाना चाहता है तो सबसे पहले तो स्वागत मैं ही करूँगा। मेरे ही घर में मेरी एक बेटी है विवाह के योग्य; विवाह करो।

और आप देखिए कि दार्शनिकों ने, शास्त्रकारों ने, सौभरि का उदाहरण दिया स्थान-स्थान पर, क्योंकि ऋषियों में खलबली मच गयी कि जिससे इतनी

उम्मीदें थीं, जो यहाँ तक पहुँच सकता था, युग की नई लहर को जन्म दे सकता था, जाकर कहाँ बैठ गया। बार-बार उदाहरण दिए गए।

उस समय के लिखे गए जितने भी ग्रन्थ हैं, दर्शन शास्त्र हैं उनमें सौभरि का नाम आता है बार-बार, 'सौभरि इव'—सौभरि की तरह ग़लत कुचेष्टाओं को देख भी लोगे पता नहीं कहाँ, कब मन बिगड़ जाए? कब पतन की तरफ चला जाए मनुष्य? क्योंकि ऊर्जा-शक्ति अलग़-अलग़ रूप में विस्फोट चाहती है, उसको नीचे गिरने के लिए रास्ता चाहिए और उसको अग़र थोड़ा-सा भी रास्ता मिल गया तो वह पतन की तरफ़ चली जायेगी, जहाँ जाना चाहते थे नहीं जा पाओगे।

भगवान कहते हैं काम, क्रोध, रजोगुण से उत्पन्न होता है, यह़ वैरी है, बहुत भूखा है, कभी शान्त होने वाला नहीं है, बड़ा भारी पापी है, पाप की तरफ खींचता चला जायेगा। इसीलिए जब भी मन में पाप आए अथर्ववेद की यह पंक्तियां हमेशा ही मन के अन्दर दोहराना – *'परोपेहि मनस्पाप किम् शस्तानि शंससि'* –

– मेरे मन में उठने वाले पाप, दूर भाग, क्यों मुझे गिराने के लिए आया है? मैं तुझसे गिरने वाला नहीं; मेरी संकल्प-शक्ति दृढ़ है; मेरा निश्चय दृढ़ है; मुझे बहुत आगे जाना है; मैंने यहाँ रुककर के नहीं ठहर जाना-कि ऐसा बोलो। फिर कहना कि तू मृत्यु का रूप बनकर आया है, मुझे निगलने के लिए आया है।

मृत्यु के पग को धकेलते हुए, गिराते हुए आगे बढ़ते चले जाओ क्योंकि तुम्हारा जन्म इसीलिए हुआ है तुम्हारा, गिराने वाली शक्तियों के ऊपर उठ सको। तो अपनी शक्तियों को निरन्तर जागृत करो और जानो कि हमारा शत्रु कौन है, किस-किस रूप में है।

दूसरा शत्रु है – क्रोध – मनुष्य के अन्तः करण में उठने वाली उग्रवृत्ति, जिसके जागने से हमारा रूप भी कुरूप हो जाता है।

ज़रा सोचिए तो सही – फोटोग्राफर भी अग़र आपका फोटो लेगा तो क्या कहेगा-'कीप स्माईलिंग' 'कृपया मुस्कुराईये' 'स्माईलिंग प्लीज़' बार-बार बोलता है फोटोग्राफर, 'मुस्कुराईये, कृपया मुस्कुराईये'; क्यों ऐसा कहता है? जितना आप मुस्कुराते हैं उतना आपका चेहरा अच्छा लगता है और अग़र

आपके चेहरे पर गुस्सा है, बल्कि अब तो एक और नए ढंग से फोटोग्राफर कहता है कि ज़रा गहरा सांस लेना, आँखें बन्द रखना और फिर आँखें खोलकर मुस्कुराना-जैसे ही आप मुस्कुरायेंगे वह फोटो खींच देगा। क्योंकि वह जानता है कि माथे पर शीतलता आते ही जैसे ही मुस्कुराओगे, आप अपने स्वरूप में आ गए, उस समय आपका चेहरा सबसे ज़्यादा सुन्दर होगा, उस समय आप ज़्यादा अच्छे लगोगे; और जब आपके अन्दर क्रोध आता है तो आप उस समय जितने भयंकर लगते हैं कभी आप उसका फोटा भी रखना नहीं चाहते।

हाँ, गुस्से वाले व्यक्ति को देखकर कई बार बच्चे कहते हैं-अंकल, आपका फोटो खींचूँ? व्यक्ति गुस्से में आकर कहता है "क्या करेगा?" कहता है "अपने भाई को डराया करूँगा, डराने के लिए बहुत सही रहेगा।" कभी आईने में देखना जब आपको क्रोध आता है-कैसे भृकुटियाँ तनेंगी, आँखें बाहर निकलने को हो जायें, नथुने फूल जायें, मुट्ठियाँ कस जायें, जीभ लड़खड़ाने लग जाए, कैसे होंठों को दाँतों से पीसने लगोगे। बड़ा विचित्र प्रभाव होता है शरीर में क्योंकि क्रोध की रसायन जो शरीर में प्रवेश करते हैं उनसे एक तरह का विष शरीर में फैलता है। और आज मैडिकल साईंस यह समझाती है कि अग़र आप क्रोध करेंगे तो आप अपनी आयु को ख़त्म करेंगे। कैसे? उनका कहना है कि अग़र आपको शुगर है तो बहुत गुस्सा करने से शुगर बढ़ेगी, ब्लड प्रैशर हाई रहता है तो और हाई हो जायेगा, नॉर्मल भी है तो भी 'हाई' होगा, गुस्सा करोगे और 'लो' हो गया तो ज़्यादा निराशा आयेगी, घबराहट होगी, खीज मचेगी; और तो और डॉक्टरों से पूछा जाए कि यह अलसर वगैरह जो मनुष्य को हो जाता है क्यों होता है? तो बहुत सारे कारण डॉक्टर बताते हैं, उनमें एक कारण यह भी है कि जो आदमी ज़्यादा चिन्ता करता है, ज़्यादा तनाव में रहता है, ज़्यादा गुस्सा करता है उस आदमी के शरीर में यह सम्भावना ज़्यादा है। दुनिया भर के रोग आकर लग जायेंगे।

बड़ा विचित्र प्रयोग एक डॉक्टर ने किया – यह डॉक्टर ही नहीं एक वैज्ञानिक था, रूसी वैज्ञानिक था। पॉवलॉव नाम इसका था। इसने बिल्ली पर कुछ प्रयोग किए और प्रयोग किस तरह से किए कि बिल्ली को अपनी लैब में एक जगह रखा और फिर उसको खाना खिलाया। उसको भोजन कराने के बाद अपनी मशीनें लगाकर, चारों तरफ़ उसने मशीनें लगाई हुई और स्क्रीन पर

देख रहा है, जैसे एक्सरे मशीन से व्यक्ति की हड्डियाँ दिखाई देती हैं और अल्ट्रा-साउण्ड से आंतों तक का पता लग जाता है, किडनी में क्या है यह पता लगा जाता है और आजकल एम.आर.आई और न जाने क्या-क्या इस तरह के टैस्ट और चैकिंग होती है; मस्तिष्क की स्कैनिंग वगैरह कर ली जाती है। तो सारी मशीनें लगाकर के उसने शरीर को चैक करना शुरू किया।

भोजन कराया बिल्ली को, और जैसे ही उसने खाना खाया तो थोड़ी देर के बाद उसके शरीर में कुछ खास तरह का स्राव शुरू हो गया। वह भोजन को पचाने का काम करना प्रारम्भ करने लगा। स्राव बढ़ता जा रहा है, धीरे-धीरे मिलता जा रहा है। डॉक्टर ने देखा कि अब ज़रूरी है कि इसकी ग्रन्थियों का स्राव बदलना चाहिए। उसने कुत्ते को बुलाया; कुत्ता उधर से आया और आकर के बीच में खड़ा हो गया वह; बिल्ली, शीशे के पीछे है लेकिन बिल्ली कुत्ते को देख रही है, कुत्ता भी बिल्ली को देख रहा है; अब वह भौंक रहा है और बिल्ली घबराई; अब वह जो उसके शरीर में स्राव चला था, डाइजे़शन देने के लिए, पचाने के लिए, वह बन्द हो गया एकदम, हज़्म करने वाली जो ताक़त काम करनी शुरू हुई थी, वह बन्द हो गई। कुत्ता जैसे ही थोड़ा मुड़ा बिल्ली को अब क्रोध आ रहा है। इधर डॉक्टर देख रहा है कि दूसरी तरह का स्राव शरीर में फैल रहा है। डॉक्टर ने उसके बाद कुत्ते को फिर से मोड़ दिया। अब क्रोध हटा बिल्ली को, भय आ गया फिर से। कुत्ते को वहीं बैठा दिया उसने।

यह वैज्ञानिक कहता है कि छः घंटे तक उसके शरीर में दूसरा कोई पचाने वाला स्राव उत्पन्न हुआ ही नहीं, कुत्ता तो भेज दिया गया और बिल्ली की आंतों में खाना सड़ने लगा मतलब बीमारी वाली चीजें शुरू हो गई।

अब यह जो तरह-तरह की बीमारियाँ हैं-ऐसिडीटि है या कब्ज़ या मलावरोध है या जिस भी तरह की बीमारी है, कहा गया है कि इसका एक कारण क्रोध, भय, चिन्ता, तनाव – महत्वपूर्ण कारण हैं, तो डॉक्टर ने अपने इस प्रयोग से यह समझाया कि जब बिल्ली के ऊपर इतना प्रयोग हो सकता है, मतलब उसके शरीर पर भय का इतना असर हो सकता है तो इन्सान के ऊपर तो भय, चिन्ता, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार न जाने कितने-कितने तरह के हथौड़े पड़ते हैं और सोचिए कि उसके शरीर की दशा क्या होती होगी? उसके मन की दशा क्या होती होगी? उसकी शक्तियाँ कितनी ह्रास की तरफ़

जाती होंगी। कहा कि अग़र इस पर प्रयोग किये जायें तो आश्चर्यजनक परिणाम सामने आयेंगे कि मनुष्य अपनी आयु को खुद जला रहा है।

सोचकर देखिए कितनी शक्तियाँ हमारी जलती हैं जब आप बहुत ज़्यादा क्रोध करने लग जाते हैं, ज़्यादा तनाव में हों, ज़्यादा चिन्ता में हों, आपका अन्दर का सिस्टम सारा ही बिगड़ जाता है। इसीलिए अपने को व्यवस्थित करने के लिए इन शत्रुओं को जानो जो हमें ख़राब कर रहे हैं। भगवान आगे फिर समझाते हैं –

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।

समझाया गया है कि जैसे धुँए से आग दब जाती है, जैसे धूल से शीशा ढक जाता है, जैसे जेर से गर्भ ढक जाता है इसी तरह से व्यक्ति का व्यक्तित्व क्रोध से, काम से, ढक जाता है। नहीं दिखाई देती फिर उसकी अच्छाईयाँ; फिर तो एक अलग़ ही रूप दिखाई देता है।

अग्नि सुन्दर लगती है जब वह प्रज्जवलित होती है लेकिन जब वह धुआँ ही धुआँ हो तो घुटन वाली हो जाती है, काम भी नहीं आती। इन्सान तू सुन्दर लगता है जब तू अपने रूप में होता है लेकिन जिस समय तेरे अन्दर तेरा क्रोध जागता है, तेरी सुन्दरता और तेरा प्रयोग और तेरा उपयोग सब बर्बाद हो जाता है; तू बेकार का, राक्षस-वृत्ति का हो जाता है; इसीलिए अपने को सम्भाल। अग़र आग जलेगी तो सबसे पहले क्या करती है?-जहाँ जलती है पहले उसी को जलाती है। माचिस की तीली से अग्नि प्रकट कीजिए तो आग तो प्रकट हो जायेगी लेकिन माचिस की तीली को पहले जलायेगी बाकी बाद में किसी का नुकसान हो या न हो वह बाद की बात है। क्रोध जहाँ जागेगा उसी का नुकसान करेगा।

पुराणों में कथा है – प्रचेता नाम का बड़ा भारी साधक सिद्धियाँ प्राप्त करने के बाद सिद्धियों के गर्व में झूमता हुआ चला जा रहा था। कल्याणपाद नाम का एक व्यक्ति दूसरी ओर से आ रहा था। एक छोटी-सी बाहरी पगडंडी से दोनों चल रहे हैं। अब यह तो सिद्धियों के गर्व में है-प्रचेता; सामने आने वाला व्यक्ति साधारण है लेकिन वह भी थोड़ा सा ज़िद्दी रहा होगा।

प्रचेता ने कहा – 'रास्ता छोड़ो'। कल्याणपाद ने कहा – 'तुम रास्ता छोड़ो।' प्रचेता कहता है – 'जानते हो हम कौन हैं?' उसने कहा – 'कोई भी हो हमें क्या लेना-देना? लेकिन हम रास्ते से नहीं हटेंगे।'

कथा विचित्र है लेकिन उसका सार यह है कि प्रचेता ने गुस्से में आकर के कहा – मेरे पास सिद्धियाँ है; जो चाहूँ कर सकता हूँ। कल्याणपाद ने कहा – कर तो हम भी कुछ भी सकते हैं। अब प्रचेता कहता है – बताऊँ तुझे अभी? और ऐसा कहते हुए उसने अपनी सिद्धियों का प्रयोग किया और कहा– 'तू राक्षस हो जा।'

तो पुराण की कथा है कि कल्याणपाद राक्षस हो गया। राक्षस होते ही उसने पहला काम क्या किया।? प्रचेता को पकड़ा और उसी को खा लिया। झंझट ख़त्म।

पुराणकार आगे लिखते हैं -प्रचेता कौन है? प्रचण्ड रूप धारण करने वाला क्रोध। इसमें जो भी तुम कुछ करोगे, ध्यान रखना वह विस्तार पाकर के राक्षस-जन्म लेगा; किसी और को नुकसान पहुँचाये या न पहुँचाये लेकिन पहले तुम्हें ही खायेगा। इसीलिए अपने क्रोध को छोड़ो और बचो।

ध्यान रखने योग्य बात यह है कि हमारे अन्दर अद्‌भुत शक्तियाँ हैं लेकिन यह सारी शक्तियाँ कभी काम में प्रकट होती हैं, कभी क्रोध में प्रकट होती हैं, वासनाओं में प्रकट होती हैं, लोभ में प्रकट होती हैं, इनको सम्भालना बहुत आवश्यक है और कहा इनका उपयोग कीजिए-प्रचेता जिस तरह से क्रोध को बढ़ावा देकर नष्ट हो गया; अग़र वह चाहता तो अपनी ऊर्जा-शक्ति को सम्भालता, थोड़ा-सा झुककर के कह देता – 'अच्छा भाई, तुम पहले आओ' – जब हम झुकना सीख जाते हैं, विनम्रता आ जाती है; कहते हैं क्रोध को अक्रोध से जीतो, विनम्रता से, शालीनता से, सौम्यता से, शिष्टता से, मधुरता से अपने क्रोध को जीतो; व्यवहार को माधुर्यपूर्ण बनाओ, शान्ति से युक्त हो, शालीन हो।

एक बात और ध्यान रखना-गाँव में कहावत है कि 'गाल फुलाना और हँसना दोनों एक साथ नहीं हो सकता' – मतलब हँसना और क्रोध करना दोनों साथ-साथ नहीं हो सकता। आदमी यदि हर समय प्रसन्न रहेगा, हँसता रहेगा,

क्रोध से बचता रहेगा। आग में पानी डालने से आग बुझती है, ज़्यादा पानी पीने से क्रोध की आग बुझती है। आदमी ज़्यादा पानी पिये, पूरी तरह से रोज़ नियम और व्यवस्था में रहे, सवेरे उठकर के सही समय से जागकर प्रकृति के बीच में जाए, प्रकृति में फैली हुई शान्ति को लेकर के घर में लौटकर के आए, उसी तरह से शान्त रहे, समय पर अपना काम करे, आज के काम को कल पर न टाले, दुनिया में उलझने की कोशिश न करे, किसी से कड़ुवा बोलकर कड़वाहट को बढ़ाए नहीं, किसी के दो कड़ुवे शब्दों को सुनकर मन में शान्ति करे – कोई बात नहीं, कह दिया तो कह दिया, उसकी गन्दगी में मुझे नहीं उतरना है। वह मुझे अपने कीचड़ में लाकर खड़ा करना चाहता है, मैं वहाँ नहीं पहुँचना चाहता हूँ।

एक बात फिर भी याद कर लेना – भगवान ने यह क्रोध दिया ही क्यों है? यह मन में विचार आयेगा आपको बार-बार। क्रोध क्या रूप लेकर प्रकट होता है, यह है क्या चीज़? आपके विरोध में जब भी कोई चीज़ खड़ी होती है और आप उसे सह नहीं पाते तब आपकी ऊर्जा का विस्फोट होता है, वह विस्फोट क्रोध कहलाता है। विरोध से शुरू होता है क्योंकि आपको विरोध करना होता है अपने बचाव के लिए, अपनी सुरक्षा के लिए। अब अग़र अपने बचाव के लिए, अपनी सुरक्षा के लिए आप इसका प्रयोग कर रहे हैं तो इसका मन्यु वाला रूप रखना – ऐसा बनाए रखना जब रोकना चाहो तो रोक लो। असल में तो सीधे ढंग से कहा जाए – इतना तो अन्दर बचा रह ही जायेगा जिससे आपका ठीक ढंग से काम चल जाए, इसीलिए इससे घबराओ नहीं, जितना हो सके रोको, हटाओ, मिटाओ, पोंछ डालो, जो कुछ बाद में थोड़ा बहुत बचेगा उससे आपके संसार के व्यवहार अच्छे ढंग से पूरे हो सकते हैं, इसीलिए यह मत सोच लेना कि अगर सारा ही ख़त्म हो गया तो फिर जिया कैसे जायेगा? दुनिया में रहा कैसे जाएगा?

अग़र इसी बात को थोड़ा विशुद्ध रूप में कहा जाये तो यह भी कह सकते हैं-आग जब तक आपके नियन्त्रण में है तब तक वह उपयोगी है, नहीं तो फिर वह आपको ही जलाएगी और घर को जलाएगी, तबाह करेगी। जब आप यह समझने लग जाओ कि मैं आपे से बाहर होने लग जाता हूँ, कुछ का कुछ बोलने लग जाता हूँ तो यह सोच लेना कि यह आग बर्तन में रहने वाली

है नहीं, चूल्हे में रहने वाली नहीं है, अब यह तो जलाने को तैयार खड़ी है, तब समझ लेना ख़तरा है, अब सम्भालो अपने आपको। अपने से कमज़ोर को सताने में, दबाने में पूरी ताक़त दिखाते हो; और किसी को नहीं डाँट पाते पत्नी को डाँट लगा देते हो, पत्नी किसी को नहीं डाँट पाती बच्चों को डाँट लगा देती है, बच्चे किसी को नहीं डाँट पाते गुड़िया की टाँग तोड़ देते हैं-आगे से आगे अपना क्रोध अपने से कमज़ोर पर उतारते चले जाते हैं यह कोई लाभ नहीं है, यह कोई उपयोग नहीं है दुरुपयोग है।

क्रोध, बड़े भाई से डरता है, भय से डरता है और सरल के ऊपर उभरता है। जिसका कहीं वश न चले अपने मातहत को दबा लेगा, उस पर गुस्सा प्रकट करेगा। बड़े आदमी की बड़प्पन या उसकी बड़ाई तभी है जब पूरी शक्ति उसके पास में है लेकिन उसके बाद भी दूसरों को क्षमा करना सीख जाए, क्रोध को क्षमा से, हिंसा को क्षमा से, सहनशीलता से, शान्ति से, प्रसन्नता से, सौम्यता से, मधुरता से, शिष्टता से जीतने की कोशिश करो-विशेषता आयेगी।

किसी बात को कहने के अलग़-अलग़ अन्दाज़ हो सकते हैं – कहीं गाँधी जी वाला रूप अच्छा है, तो कहीं सरदार पटेल वाला रूप अच्छा है – न तो हर जगह सरदार पटेल वाला रूप काम कर पायेगा और न ही हर जगह गाँधीजी वाला रूप काम कर पाएगा, तालमेल बनना चाहिए। इतनी विशेषता तो रखो कि जब अपने आपको रोकना हो तो अपने क्रोध का उपयोग करो; दूसरों को दबाने के लिए अपनी शक्ति न लगाओ। भगवान ने कहा –

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।

बड़े-बड़े ज्ञानियों को इस वैरी ने दबा रखा है, बड़े-बड़े ज्ञानी लोग इस वैरी से दबे पड़े हैं, कहा है कि जो इसको दबा जाए तो असली ज्ञानी तो वही है-दबाने से मतलब है इसको मिटाए। इसका एक प्रयोग और कीजिए-जिधर जाना चाहते हो उधर का अभ्यास करो लगातार और जिधर से अपने को रोकना है उधर का वैराग्य उत्पन्न करो। क्रोध की हानियाँ, काम की हानियाँ, लोभ की हानियाँ, अपने आप को गिनाओ, बुद्धि को समझाओ और क्रोध न करने से जो लाभ होता है वह विशेषतायें बताओ; धीरे-धीरे यह समझेगा, ठीक होगा।

इससे भी अलग एक बात – परमात्मा के नाम के स्मरण की जो औषध है वह ऐसी संजीवनी है कि जैसे सर्प काटे तो नेवला कोई ऐसी जड़ी बूटी चबा लेता है कि उसका विष काम नहीं करता – कहते हैं कि जब संसार की वासनाओं का विषधर काटे, तब परमात्मा के नाम की जड़ी-बूटी को चबाना चाहिए, किसी विषय वासना का असर काम करेगा ही नहीं, ज़हर चढ़ेगा नहीं।

वर्णन आता है, झील में सैर करने वाले कुछ मनचले नौजवान नौका में बैठे हुए हैं और झील के बीचों बीच एक टापू है जिसमें सुन्दर पेड़ खड़े हुए हैं, छोटी-सी झोंपड़ी डालकर एक साधक वहाँ बैठा हुआ है और उसके साथ में उसका एक शिष्य। साधक साधना में लीन थे। मनचले नौजवान पास से गुज़रे तो उन्होंने नौका में जल क्रीड़ा करते हुए, नौका विहार के समय कँकड़ उठाकर फेंकने शुरू किए। मज़ाक में आपस में साधक को देखकर कहते हैं – मैं अभी हिलाऊँगा इसे, मैं अभी इसकी हालत बिगाड़ दूँगा और उन्होंने उठा करके जैसे ही कँकड़ फैंकने शुरू किए, महात्मा तो साधना में बैठे रहे किन्तु, शिष्य को ज़रूर गुस्सा आ गया।

थोड़ी देर के बाद एक नौजवान ने मोटा सा कँकड़ उठाकर जो फेंका, साधना करते हुए महात्मा के माथे पर खून बहने लगा और उसका ध्यान एकदम भंग हो गया, आँखें खुलीं; शिष्य को गुस्सा आया और उसने अपने गुरू से कहा – 'कहो तो मैं डण्डा लेकर के जाऊँ और नहीं तो महाराज ऐसे-ऐसे धूर्त लोगों के लिए कभी तो प्रार्थना कर लिया करो, भगवान से कहो कि इनकी नौका उलट दे; एक बार हाथ जोड़कर भगवान से कहो तो सही कि भगवान इनकी नौका उलट; हमने इनका क्या बिगाड़ा है? शान्ति से बैठे हैं, साधना कर रहे हैं तो भी चैन से नहीं रहने देना चाहते? इस झील के अन्दर बीच में तैर के यहाँ पहुँचे, कन्दमूल उखाड़कर खाते हैं किसी से कोई लेना-देना नहीं, दुनिया से दूर रहते हैं यहाँ भी नौका लेकर पहुँच गए! महाराज, प्रार्थना करो, भगवान से बोलो अभी, एक बार आप प्रार्थना करोगे इनकी नौका उलट जायेगी, कुछ डूबेंगे, कुछ बच के जायेंगे और उसके बाद किसी की हिम्मत नहीं होगी इधर आने की।'

गुरू शान्त बैठे रहे; शिष्य कहता है-महाराज, क्या कर रहे हो? गुरुदेव, प्रार्थना करो। गुरुजी ने कहा-हाँ, प्रार्थना कर रहा हूँ। उलटने की प्रार्थना कर रहे हो न? गुरुजी ने कहा हाँ, उलटने की प्रार्थना कर रहा हूँ। हाँ, गुरुदेव ज़रा ज़ोर शोर से प्रार्थना करना, उलट जाए नौका।

गुरु ने क्या कहा कि हाँ मैं प्रार्थना कर रहा हूँ कि उलट जाए, लेकिन मैं प्रार्थना यह कर रहा हूँ कि भगवान उल्टी बुद्धि वाले नौजवानों की नौका न उलटे इनकी उल्टी बुद्धि उलट जाए, सीधी हो जाए, ज़िससे परमात्मा, तेरी बुद्धि का जल इनकी बुद्धि के पात्र में भर जाए, इनका भी भला हो जाए, यह भी सुखी हों।

क्रोध से क्रोध भड़क सकता है, अग्नि से अग्नि जलती है लेकिन यहाँ देखिए, महापुरुष ने प्रार्थना करनी शुरू की हे – मेरे प्रभु! सुबुद्धि प्रदान करना इनको, जिससे इनका भी भला हो।

बुरा करने वालों के लिए जो व्यक्ति अपनी प्रार्थना के आसन पर बैठकर मंगलकामना करना शुरू कर दे भगवान उनका भला करता है। सोच लेना आध्यात्मिक स्तर पर आपकी ऊँचाई बढ़ने लगी है और अगर अपनी प्रार्थनाओं का भी उपयोग क्रोध में लाने लग जाओगे-भगवान मुझे कुछ दे न दे लेकिन इसका बुरा ज़रूर करना, इसने मुझे सताया है, एक बार तो इसका भी ऐसा हाल होना चाहिए कि मेरे सामने गिड़गिड़ाता फिरे, रोता फिरे-अब हम भगवान को भी अपने क्रोध में शामिल कर लेना चाहते हैं, अपनी लड़ाई में खड़ा कर लेना चाहते हैं, अपने जैसा बना लेना चाहते हैं। अपनी प्रार्थनाओं को इस रूप में मत लेकर जाओ, अपनी प्रार्थनाओं को विशिष्टता दो, अपना भाव बदलने की कोशिश करो।

देखिए, दुनिया में जितने बड़े-बड़े लोग हुए वासनाऐं तो उनकी तरफ़ भी आईं लेकिन उन्होंने कितना अपने आपको व्यस्त करते हुए अपने कार्यों में लगाया क्योंकि जो आदमी जितना ज़्यादा व्यस्त है, कार्यों में लगा हुआ है, सही दिशा में ऊर्जा लगी हुई है वह ग़लत तरफ़ नहीं जा सकता। जो खाली बैठा हुआ है, ग़लत अन्न खा रहा है, ग़लत विचार कर रहा है, निश्चित बात है पतन होगा। जो आदमी निरन्तर कर्मशील, परमात्मा की भक्ति को मन में बसाकर

कार्यों में लगा हुआ है, हर समय जन-कल्याण सोचता है, पतन की सम्भावना वहाँ नहीं होती। खाली मन शैतान का घर है, जो खाली बैठा है वहीं शैतान अपना कार्य करेगा। व्यस्त रहना बहुत ज़रूरी है, क्रोध को सम्भालिये।

मनुष्य के अन्दर तीन तरह की आवृतियाँ होती हैं – जो हमारी वृत्तियाँ हैं उनका तीन तरह का रूप है – एक है सात्विक, एक है राजसिक और एक है तामसिक। जब व्यक्ति का मन ज़्यादा से ज़्यादा शान्त रहे, सरल रहे, दूसरे की कड़ुवी बात को भी सह जाए, कड़ुवाहट का जवाब कड़ुवाहट में न दे, लक्ष्य की तरफ़ ध्यान है, जीवन पूरी तरह से नियमित है, जीवन पूरी तरह से अनुशासित है, आहार अपना शुद्ध है, संगति अपनी अच्छी है, लेन-देन में पवित्र है, सदैव मंगलकारी कार्य करता है, देकर खुश होता है, लेने की कामना नहीं, निरन्तर षड्यन्त्र वाली योजनाएं नहीं बनाता, सोचता है कैसे अपनी ऊर्जा-शक्ति का ज़्यादा से ज़्यादा उपयोग करूँ, समय का कैसे ज़्यादा से ज़्यादा सही उपयोग करूँ, कैसे थोड़ी-सी आयु में बड़े बड़े कार्य कर सकूँ, जब ऐसे विचार आ रहे हों समझना कि अब सात्विकता उभरी है, मेरे अन्दर सात्विक गुण हैं।

इसीलिए हमारे यहाँ एक व्यवस्था दी गई कि प्रभात का जो समय है, यह समय सात्विक वेला का है, प्रभात का समय सात्विक वृत्तियों का समय है – तीन बजे से लेकर छः बजे तक का समय-वैसे तो चार से छः बजे तक भी आप यह आनन्द ले सकते हो। इसके लिए एक कार्य करना है कि सवेरे-सवेरे जिस समय सात्विक वातावरण हो उस समय जागना और जैसे मनु महाराज ने कहा –

"ब्राह्मे मुहुर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्" ब्रह्म वेला में जागो *धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्* और धर्म-अर्थ का चिन्तन शुरू करो। सवेरे जागकर धार्मिक चर्चा, धर्म-चिन्तन, प्रभु का भजन, थोड़ा-सा योगाभ्यास, फूलों के बगीचे में सैर, हरियाली के बीच में, पक्षियों की मधुर आवाज़ को सुनते हुए दुनिया के कोलाहल से दूर कुछ समय गुज़ारो – जहाँ किसी इन्सान के शोर-शराबे की कोई स्थिति ना हो। नहीं ऐसी कोई जगह जा सकते तो अपनी छत को ही एक बगीचे का रूप दो, चाहे बौनसाई पद्धति से या दूसरे ढंग से या बेलें आप चढ़ाओ, उसी पर सैर करो, वहीं चिन्तन करो, पक्षियों को दाना डालो, पक्षियों

को आमन्त्रित करो और जो आपके पिंजरों में कैद हैं वह तो वैसी भाषा नहीं बोल सकते, लेकिन जो उन्मुक्त गगन में उड़ने वाले पक्षी हैं वह जब आकर के बोलते हैं चाहे कबूतर गुटर-गूँ करता है या चिड़िया चहचहाती है या पेड़ों की सघन छाया के बीच से किसी कोयल की गाने की आवाज़ आती है – वह प्रकृति का जो एक सुन्दर स्वर है उससे सवेरे तालमेल बैठाओ; सवेरे ही आप अगर टेलीफोन की घण्टियां सुनने बैठ गए, अखबार पढ़ने बैठ गए, संसार के व्यवहार की बात करने बैठ गए तो सात्विकता गई आपकी।

सात्विक वातावरण बनाईये जिससे कि आपका मन सात्विकता से भरपूर हो जाए और फिर सात्विकता का प्रभाव हो आपके व्यवहार में, जीवन में। सात्विक आहार, सात्विक व्यवहार--यह दोनों पहले तालमेल बनाकर के जीवन में अपनाने चाहिएं; उसके बाद अपनी संगति – कैसे लोगों के बीच में आकर आप बैठते हैं? अगर अच्छे लोगों के बीच बैठोगे, चर्चाए अच्छी होंगी, प्रभु की चर्चा, जीवन-जागृति की चर्चा-आप अपना भला करोगे, अन्यथा बुरे लोग बुराई की तरफ़ आपको खींचते चले जायेंगे, बुराई पनपती जायेगी, सात्विकता की जगह राजसिकता आयेगी।

राजसिकता में क्या होता है? जब व्यक्ति को थोड़ा-सा ही छेड़ने से क्रोध आए, बदला लेने की भावनाएं जाग जायें, जल्दी से जोश में आना, बहुत बड़ी-बड़ी कामनाएं, योजनाएं बनाकर रात-दिन उलझने के ख्वाब, अहंकार का विस्तार, दूसरे को दबाने की इच्छा, अपनी 'मैं' की कामना, मिर्च-मसाले से युक्त भोजन अच्छा लगे, चटपटी मसालेदार चीज़ें ज़्यादा स्वादिष्ट लगें, विषय-वासनाओं की चर्चा करने वाले लोग, उसी तरह के चित्र, उसी तरह की फिल्में, वैसे ही सारी चीज़ें सुनने की और जानने की इच्छा जागे, सोच लेना राजसिकता जागृत हुई है।

पतन हो जाए, तो फिर तामासिकता। एक बार किसी ने बुरा किया आपका या तामसिक व्यक्ति का, फिर तो, जैसे, कहा जाता है, ऊँट का वैर प्रसिद्ध होता है, जिसे फ़ारसी वाले लोग क्षुतुरकीना बोलते हैं-क्षुतुर होता है न 'ऊँट' (क्षुतुरमुर्ग-ऊँट की तरह से जो मुर्गा होता है उसे 'क्षुतुरमुर्ग' बोलते हैं,) "क्षुतुर" मतलब ऊँट जैसा "कीना" मतलब 'बदला लेने की भावना'। ऊँट का वैर बड़ा भयंकर होता है, जिसने उसे एक बार छेड़ दिया ऐसा पहचानता है

और याद रखता है वह-एक बार मिल जाए सही, पीछे से जायेगा, मुंह खोलेगा और सिर को पकड़कर उठाएगा, दाँत गढ़ाता जायेगा, छोड़ेगा नहीं। कई लोग ऐसे ही सर्प-बिच्छुओं जैसी ज़िन्दगी जीते हैं। एक बार ग़लती से भी किसी से कष्ट पहुँच जाए तो फिर तो उसकी जान लेकर के ही छोड़ेंगे, बदला लेंगे, दबायेंगे, गिरायेंगे, चोट पहुँचायेंगे और तब तक उनका गुस्सा शान्त नहीं होता जब तक अगले व्यक्ति को अच्छी तरह झुका न दें, दबा न दें, मिटा न दें, मरे जैसी स्थिति न कर दें तब तक वह व्यक्ति शान्त नहीं होगा। नहीं ताक़त का इस्तेमाल कर पायें तो षड्यन्त्र रचते रहेंगे-कुछ न कुछ बुरा करते रहेंगे, योजना बनाते रहेंगे, हर समय निन्दा, चुगली, आलोचना, दबाना, काटना, पीटना, मारना, बुरा करना स्वभाव ही बन जाए।

कहते हैं तामसिक-वृत्ति वाला व्यक्ति या तो सोता रहता है या झगड़ा करता है या ज़िद् में पड़ा रहेगा या किसी ऐब में लगा रहेगा–चाहे नशा करे या बुरे काम करे, समझाने से मानेगा नहीं, समझाने वाला दुश्मन नज़र आयेगा उसे, नशे वाली चीज़ें ज़्यादा पसन्द आयेंगी, ऐसे लोगों के बीच में बैठेगा, रात में ज़्यादा घूमने की इच्छा होगी। आप देखते हैं न कि रात्रि होती है तो कुछ जीव जन्तु ऐसे हैं जो तामसिक जीव-जन्तु होते हैं, वह रात में ही निकलते हैं वे दिन में निकलते ही नहीं, वह कीड़े-मकौड़े रात को ही पसन्द करते हैं, उनको 'निशाचर' कहा गया–हमारे यहाँ; राक्षसों को निशाचर कहा गया अर्थात् जो रात को विचरण करते हैं और आजकल तो इन्सान भी निशाचर होता जा रहा है क्योंकि निशा में ही चरता रहता है, खाता रहता है, चलता रहता है, रात्रि में ज़्यादा से ज़्यादा देर तक जागते रहना और दिन में देर तक सोते रहना इसे कोई अच्छी बात नहीं मानी गयी।

बहुत-बहुत बीमारियाँ मनुष्य के शरीर में घर करती जा रही हैं – उसका एक कारण तो यह है कि बहुत ठण्डा खाना या बहुत गर्म खाना – भोजन करते समय दृश्य देखना या तो अश्लील या मार-धाड़ वाले; और नहीं तो गन्दी पत्रिका सामने रखकर के खाने बैठ जायेंगे, पन्ने पलटते जा रहे हैं रोटी खाते जा रहे हैं। यह सब विकार को पैदा करते हैं। तो हमारे अन्दर सात्विकता या राजसिकता या तामसिकता कोई भी स्थिति हो उसी के अनुरूप फिर हमारा व्यवहार बदलने लगता है।

अब कुछ समय से वैज्ञानिक लोगों ने एक और व्यवस्था निकाली है – ब्रेन-वाश करने की व्यवस्था। उन्होंने एक व्यवस्था बनाई है कि व्यक्ति के ऊपर ध्वनि का प्रभाव डालते-डालते, मस्तिष्क पर झटके देते-देते, किसी चीज़ को बार-बार दोहराते हुए एक वातावरण में रखकर उसके पूरे दिमाग़ को वाश किया जाता है, पहले वाले को धुलाया जाता है। लेकिन एक चीज़ फिर भी होगी, कितना भी धुला देना, पहले वाले को भुला देना लेकिन अग़र उसकी तामसिक-वृत्ति है तो उधर की तरफ़ ही चलेगा, लड़ाई-झगड़े वाली बात ही पसन्द आयेगी। बच्चे सबसे ज़्यादा लोच पूर्ण होते हैं, उनको आप किसी भी तरह के वातावरण में ढाल सकते हैं, सात्विक बनाना चाहो तो सात्विक हो जायेंगे, राजसिक बनाना चाहो तो राजसिक हो जायेंगे-बच्चों को तो, आपने देखा होगा भाषायें नहीं जानते लेकिन फिर भी उनको अग़र आप साथ-साथ बैठा दें; तो बहुत जल्द ही बड़े प्यार से आपके साथ में घुल-मिल जायेंगे।

मैंने देखा है-विदेश यात्रा जाते समय हवाई जहाज में बैठे हुए दो परिवार-एक फ्रैंच था और एक जर्मन। जो फ्रांस के लोग बैठे हुए थे उनका भी एक बच्चा था जो जर्मनी का परिवार था उसका भी एक बेटा उसके साथ था। अब दोनों बच्चे एक दूसरे की भाषा नहीं जानते। जिस समय कुछ खाने-पीने का कार्यक्रम चल रहा था, वह प्रोग्राम होते ही कुछ लोग हिल-डुल रहे हैं, जा रहे हैं, निवृत होने के लिए, जो फ्रैंच बच्चा है वह जर्मन बच्चे की तरफ ईशारा करता है कि 'मेरे पास आ', भाषा नहीं आती, ईशारा करता है कि तू आ और उसका निमन्त्रण है कि हम खेलें और इस तरह से उसने कहा ईशारे में कि – तू आता है या मैं आऊँ। या तो तू आ, नहीं तो मैं आ रहा हूँ। बहुत लोचपूर्ण मन होता है उसका, सात्विक धारायें होती हैं-कितना झुकने के लिए तैयार है-या तो तू आ, नहीं तो मैं तो आ ही रहा हूँ तुम्हारे पास में; या तू मुझे मिल नहीं तो मैं तुझे मिलने के लिए तैयार बैठा हूँ; या तो तू मेरा हो, नहीं तो मैं तेरा होने के लिए तैयार हूँ। तू थोड़ा झुकता है तो बहुत अच्छी बात है, नहीं तो मैं गर्दन झुकाने के लिए तैयार हूँ। यह स्थिति अलग है। और जहाँ तामसिकता आती है – मैं नहीं झुकुँगा और तुझे झुकाऊँगा-यह अहँकार का

विशाल रूप दिखाई देने लग जाए तो सोच लेना चाहिए तामसिकता है; और जब तामसिकता हो तो उस समय हमें सबसे पहले तो अपना आहार ठीक कर लेना चाहिए।

देखिए, जिस ढंग से आपने कमाई की है, रोज़ी-रोटी कमाई है, उसका बड़ा भारी प्रभाव आपके ऊपर पड़ता है-किन साधनों से, किस तरह से आपने रोज़ी रोटी कमाई है?

ग़लत ढंग से कमाया हुआ अन्न खाने के बाद व्यक्ति के मन और मस्तिष्क पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है और कभी-कभी यहाँ तक भी होता कि अग़र किसी स्थान पर किसी साधक ने बहुत समय तक साधना की, किसी गुफा में, किसी शिला पर, उस जगह जाकर बैठ भी जाओगे अनायास मन टिकता है, स्थिरता आने लग जाती है एकदम। सात्विक संस्कार अग़र कहीं किसी के रहे हों तो उसका बड़ा भारी प्रभाव पड़ेगा। तो सात्विक-संगति, सात्विक-अन्न, सात्विक-कमाई, सात्विक व्यवहार, सात्विक वेश-भूषा – यह सब अपनाओ तो सात्विकता अन्दर आयेगी और फिर आप देखिए कि चाहे काम है, क्रोध है या अलग़-अलग़ वृत्तियाँ हैं यह कभी भयंकर रूप धारण करेंगी ही नहीं। किसी-किसी व्यक्ति का क्रोध ऐसा होता है जैसे पानी के ऊपर खींची गई कोई लकीर-तुरन्त मिट जाता है। गुस्सा आ तो गया लेकिन वह कोई बीच में प्रभाव छोड़कर नहीं जाता; आया, ख़त्म हो गया। किसी का क्रोध ऐसा होता है कि जैसे किसी मोम के ऊपर आप लाईन खींच दें-लकीर गहरी हो गई लेकिन फिर जैसे ही समय बदलता है तो रेखा मिट जाती है लेकिन किसी-किसी का, तामसिक-वृत्ति वाले व्यक्ति का ढंग क्या होता है – जैसे पत्थर के ऊपर खींची गई कोई लाईन; कोई रेखा, कोई लक़ीर – इतनी गहरी और ऐसी अमिट – नहीं मिटने वाली। यदि किसी व्यक्ति को एक बार गुस्सा आ गया किसी के प्रति और ऐसे ज़िद्दी कि फिर मन साफ़ हो ही नहीं, बार-बार दोहरायें तो फिर समझ लेना चाहिए तामसिकता बहुत अधिक है। वह लोग बहुत अच्छे हैं गुस्सा आया, तुरन्त गए माफी माँग कर आ गए – चलो छोड़ो कोई बात नहीं। लेकिन बार-बार गलती करना, बार-बार माफ़ी माँगना

अग़र यह चलता रहेगा तो फिर लोग इसको कहेंगे ड्रामा है, नाटक है; फिर भी तुरन्त आकर निकल जाए क्रोध और अहित न करे मनुष्य किसी का तो भी समझना चाहिए कि सात्विकता बढ़ रही है। सात्विकता जब सम्पूर्ण रूप में जागृत हो जाती है तो फिर तो क्रोध किसी पर आता ही नहीं।

राबिया बसरी बड़ी ऊँची साधक थी, ऊँची संत थी – उसे एक सन्त, हसन ने कहा कि धर्म-ग्रन्थ में लिखा है "ईश्वर से प्यार करो शैतान से नफ़रत" तो क्या यह तुम्हें पसन्द है? तो रबिया ने – "शैतान से नफ़रत करो" – वाली पंक्ति काट दी और कहा– नहीं, मुझे तो अपने रब् से, अपने मालिक से प्यार करते-करते इतना अन्दर प्यार हो गया है कि 'अब न कोई शैतान नज़र आता है, न किसी के प्रति घृणा नज़र आती है' – यह सात्विकता की सबसे ऊँची कसौटी है।

हसन ने कहा, वह भी बड़े भारी सन्त थे, "राबिया, तू बैठकर प्रभु के गीत गाती है, अपने रब्, अपने मालिक के लिए, उसके गीत गाती है, उसकी बन्दगी करती है तो तेरे आस-पास पशु-पक्षी आकर खड़े हो जाते हैं। लेकिन जब हम तेरे करीब आते हैं तब वे पक्षी डरकर भाग जाते हैं, ऐसा क्यों? क्या वे तेरे परिचित हैं? तेरे पालतू हैं?

राबिया कहती है – आप लगता है मीट-मांस खाते हो? इससे आपकी वृत्तियां, आपके संस्कार, आपके शरीर से प्रकट होने वाली जो किरणें हैं वे पशु पक्षियों के ऊपर बहुत दूर से ही प्रभाव डालती हैं और उसके कारण वह दूर चले जाते हैं और मैं घृणा, द्वेष, वैर विरोध को मिटाकर बैठी हुई हूँ और मांस आदि का प्रयोग नहीं करती। तो जैसे जंगल में बहुत सारे पशु-पक्षी बैठे हैं उनके बीच में कोई एक दो और पक्षी कहीं दूर देश से आकर भी बैठ जाते हैं – कोई विरोध नहीं, कोई झगड़ा नहीं – ऐसे ही यह पशु-पक्षी समझ रहे हैं कि हमारे बीच का ही कोई आकर के हमारे बीच बैठ गया है। इसीलिए प्यार से मेरे साथ बैठे हुए हैं।

विचार कीजिए – घृणा है तो घृणा बढ़ती जा रही है, क्रोध है तो क्रोध बढ़ता जा रहा है, पशु-पक्षी उसे समझते हैं; कुत्ते से बचकर के आप भागिए

वह पीछा करता है, बन्दरों के सामने से डरकर के भागिए वे पीछा करते हैं क्योंकि जब आप भयभीत हैं आपके शरीर से ग्रन्थियों का स्राव प्रसारित होता है, शरीर में उसकी एक स्मैल, एक गन्ध उन जानवरों को आने लगती है कि आप डर रहे हैं, डरे हुओं को वे डराते हैं; जैसे ही आप उनके सामने स्थिर होकर खड़े होते हैं, ग्रन्थियों का स्राव बन्द हो गया, स्थिरता वाली चीज़ आपके सामने आ गई, अब आपके शरीर की गन्ध बदल गई, अब वह भी जानते हैं कि दूर हटना ठीक है। सारे शरीर में जैसे-जैसे आप जिस वृत्ति में आते हैं, यह आपका जो चेहरा है, चवालिस प्रकार की भाव-मुद्रायें चेहरे पर प्रकट होती हैं-क्रोध में आपका चेहरा अलग़ होगा, घृणा में अलग़ होगा, ईर्ष्या में अलग़ होगा, निन्दा करते समय अलग़ होगा, जब आप प्रेम का व्यवहार कर रहे होंगे तो अलग़ होगा, अपने बच्चे को आप प्यार कर रहे होंगे तो व्यवहार अलग़ होगा, आदर दे रहे होंगे तो अलग़ तरह का व्यवहार होगा, जिस समय आप किसी की निन्दा में, चुगली में, व्यवहार करते हैं तो उस समय आपका चेहरा अलग़ तरह से होता है, जब आप गिड़गिड़ते हैं तो चेहरा अलग तरह से होता है; चवालिस प्रकार की भाव-भंगिमायें आती हैं चेहरे पर; लेकिन उनका स्राव शरीर में फैल रहा होता है। यह जो हमारी पीयूष-ग्रन्थी है – पिचुअरी गलैण्ड हमारे हिसाब से इसमें दो तरह का स्राव होता है – एक स्त्री वाले भाग को जागृत करता है, दूसरा पुरुष वाले भाग को जागृत करता है; एक से हमारे अन्दर जोश आता है, दूसरे से सौम्यता आती है – दोनों का सन्तुलन शरीर में रहता है तो सन्तुलन ठीक बनने से जीवन ठीक बनता है। और जो भी हम अन्न खाते हैं, अन्न के हिसाब से ही मन बनता है – ऐसा कहा जाता है न–कि जैसा अन्न हम खाएं, वैसा हमारा मन बनता है, उसका मतलब क्या है – सीधा-सा मतलब है इसका कि अन्न के हिस्से विभाजित हो गए – कुछ हड्डियों के लिए, कुछ चर्बी के लिए, कुछ खून बनाने के काम आयेंगे, कुछ वे होंगे जो आपका स्वभाव बनाऐंगे, इसीलिए नियम है–

जैसा खाओ अन्न वैसा बने मन ।
जैसा पियो पानी वैसी होगी वाणी ।।

बड़ा प्रभाव पड़ता है इस सबका। बड़ी गहराई में जाकर भगवान कृष्ण ने समझाया—रजोगुण से यह उत्पन्न होता है, ज्ञानियों को भी यह ढक लेता है और कहा इन्द्रियों से परे है मन, मन से परे है बुद्धि और बुद्धि से भी आगे-आत्मा। इन्द्रियों से महान् मन, मन से महान बुद्धि और बुद्धि से महान आत्मा। इस क्रम के साथ अपने को नियन्त्रित करना चाहिए। इन्द्रियों को पकड़ो मन के द्वारा, मन को पकड़ो बुद्धि के द्वारा, बुद्धि को ठीक करो आत्मा के द्वारा। यह प्रयोग भगवान कृष्ण ने बताया और कहा कि इस तरह से तुम अपने को सम्भालो।

अध्याय-तीन

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्सकर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ।।१।।

अर्जुन ने कहा:

हे जनार्दन (कृष्ण), यदि तू समझता है कि बुद्धि (का मार्ग) कर्म (के मार्ग) से अधिक अच्छी है, तो हे केशव (कृष्ण) तू मुझे इस कर्म भयंकर कर्म को करने के लिए क्यों कह रहा है?

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।।२।।

इस मिली-जली-सी प्रतीत होने वाली उक्ति द्वारा तू मेरी बुद्धि को भ्रमित-सी कर रहा है। (मुझे) निश्चय से एक बात बता, जिसके द्वारा मैं अधिकतम कल्याण प्राप्त कर सकूँ।

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।३।।

श्री भगवान ने कहा:

हे अनघ (निर्दोष), इस संसार में बहुत पहले मैंने दो प्रकार की जीवन प्रणालियों का उपदेश दिया था। चिन्तनशील व्यक्तियों के लिए ज्ञानमार्ग का और कर्मशील व्यक्तियों के लिए कर्म मार्ग का।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।।४।।

कर्म न करने से ही कोई व्यक्ति कर्म से मुक्ति नहीं पा सकता। और न केवल (कर्म के) सन्यास से ही उसे पूर्णता (सिद्धि) प्राप्त हो सकती है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

कोई भी व्यक्ति क्षण भर के लिए भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। प्रकृति से उत्पन्न गुणों के कारण प्रत्येक व्यक्ति को विवश होकर कर्म करना ही पड़ता है।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

जो व्यक्ति अपनी कर्मेन्दियों को तो संयम में रखता है, परन्तु अपने मन में इन्द्रियों के विषय का स्मरण करता रहता है, जिसकी प्रकृति मूढ़ हो गई है, वह पाखंडी (मिथ्या आचरण करने वाला) कहलाता है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

परन्तु हे अर्जुन, जो व्यक्ति मन द्वारा इन्द्रियों को नियन्त्रित रखता है और अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों को कर्म के मार्ग में लगाता है, वह अधिक उत्कृष्ट है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥८॥

तेरे लिए जो कार्य नियत है, तू उसे कर; क्योंकि कर्म अकर्म से अधिक अच्छा है। बिना कर्म के तो तेरा शारीरिक जीवन भी बना नहीं रह सकता।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥९॥

यज्ञ के लिए या यज्ञ के रूप में किए जाने वाले कार्यों को छोड़कर यह सारा संसार कर्म बन्धन में डालने वाला है। इसलिए हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), सब प्रकार की आसक्ति से मुक्त होकर यज्ञ के रूप में तू अपना कार्य कर।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥

प्राचीन समय में प्रजापति ने यज्ञ के साथ प्राणियों को उत्पन्न किया और कहा: "इसके द्वारा तुम सन्तान उत्पन्न करो और यह यज्ञ तुम्हारी अभीष्ट इच्छाओं को पूर्ण करने वाला होगा।"

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

इसके द्वारा तुम देवताओं का पोषण करो और देवता तुम्हारा पोषण करें। इस प्रकार एक-दूसरे का पोषण करते हुए तुम सब परम कल्याण को प्राप्त करोगे।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

यज्ञ से प्रसन्न होकर देवता तुम्हें वे सब सुख-भोग प्रदान करेंगे, जिन्हें तुम चाहते हो। जो व्यक्ति उनके द्वारा दिए गए इन उपहारों का उपभोग देवताओं को बिना दिए करता है, वह तो चोर ही है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

वे सन्त व्यक्ति, जो यज्ञ के बाद बची हुई वस्तु (यज्ञशेष) का उपभोग करते हैं, सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, परन्तु जो दुष्ट लोग केवल अपने लिए भोजन पकाते हैं, वे तो समझो पाप ही खाते हैं।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

अन्न से प्राणी होते हैं। वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है। यज्ञ से वर्षा होती है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

(यज्ञ से ढंग के) कर्मों का मूल ब्रह्म (वेद) को समझ और ब्रह्मा का जन्म अक्षर (अनश्वर) से होता है। इसलिए सर्वव्यापी ब्रह्म सदा यज्ञ में विद्यमान रहता है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

इस संसार में जो व्यक्ति इस प्रकार घुमाए जा रहे इस चक्र के चलने में सहायता नहीं देता, वह दुष्ट स्वभाव वाला और इन्द्रियों के सुखों में मग्न रहने वाला व्यक्ति, हे पार्थ (अर्जुन), व्यर्थ ही जीवन बिताता है।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

परन्तु जो मनुष्य केवल आत्म में आनन्द अनुभव करता है, जो आत्म से सन्तुष्ट है और जो आत्म से तृप्त है, उसके लिए कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसे करना आवश्यक हो।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थ व्यपाश्रयः ॥१८॥

इसी प्रकार इस संसार में उसके लिए कोई ऐसी वस्तु नहीं रहती, जो उन कर्मों द्वारा प्राप्त होनी हो, जो उसने नहीं किए हैं या उन कर्मों द्वारा प्राप्त होनी हो, जो उसने नहीं किए हैं। वह किसी भी प्राणी पर अपने किसी स्वार्थ के लिए निर्भर नहीं रहता।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

इसलिए तू अनासक्त होकर सदा करने योग्य कर्म करता रह; क्योंकि अनासक्त रहकर कर्म करता हुआ मनुष्य सर्वोच्च (परम) को प्राप्त करता है।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

जनक तथा अन्य लोग कर्म द्वारा ही पूर्णता तक पहुँचे थे। तुझे संसार को बनाए रखने के लिए (लोकसंग्रह के लिए) भी कर्म करना चाहिए।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो कुछ करता है, सामान्य लोग वैसा ही करने लगते हैं। वह जैसा आदर्श उपस्थित करता है, उसी का लोग अनुगमन करने लगते हैं।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एवं च कर्मणि ॥२२॥

हे पार्थ (अर्जुन), मेरे लिए तीनों लोकों में कोई भी ऐसा कर्म नहीं है, जो करना आवश्यक हो और न ऐसी ही कोई वस्तु है, जो मुझे प्राप्त न हो और मुझे प्राप्त करनी हो; फिर भी मैं कर्म में लगा ही रहता हूँ।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

यदि मैं निरालस्य होकर सदा कर्म में न लगा रहूँ, तो हे पार्थ (अर्जुन), सब लोग सब प्रकार मेरे ही मार्ग का अनुसरण करने लगें

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

यदि मैं कर्म करना छोड़ दूँ, तो यह लोक (संसार) नष्ट हो जाएँ और मैं संकर (अव्यवस्थित जीवन) को उत्पन्न करने वाला बनूँ और इस प्रकार इन लोगों का विनाश कर बैठूँ।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

हे भारत (अर्जुन), जिस प्रकार अविद्वान् व्यक्ति आसक्त होकर कर्म करते हैं, उसी प्रकार विद्वान व्यक्ति अनासक्त होकर लोकसंग्रह (संसार की व्यवस्था को बनाए रखने) की इच्छा से कर्म करते हैं।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए की वह कर्म में आसक्त अज्ञानी व्यक्तियों के मन को विचलित न करे। योग की भावना से कर्म करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों को (भी) कर्म में लगाए।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहटारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

वस्तुतः जब कि सब प्रकार के कार्य प्रकृति के गणों द्वारा किए जा रहे हैं, मनुष्य जिसकी आत्मा अहंकार की भावना से मूढ़ बन गई है, यह समझता है कि 'कर्ता मैं हूँ'

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८॥

परन्तु जो व्यक्ति (आत्मा के) इन दो भेदों के, प्रकृति के गुणों और कार्यों से उनकी भिन्नता के, सच्चे स्वरूप को जानता है और इस बात को समझता है कि केवल गुण ही गुणों पर क्रिया कर रहे है, हे महाबाहु (अर्जुन), वह उन कर्मों में आसक्त नहीं होता।

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥29॥

जो लोग प्रकृति के गुणों के कारण भ्रान्ति में पड़ जाते हैं, वे ही उन गुणों द्वारा उत्पन्न हुए कर्मों में आसक्त होते हैं। पर जो व्यक्ति सम्पूर्ण बात को जानता है, उसे उन अज्ञानियों के मन को विचलित नहीं करना चाहिए, जो कि केवल एक अंश को जानते हैं।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वर : ॥३०॥

अपने सब कर्मों को मुझमें त्यागकर और अपनी चेतना को आत्मा में स्थिर करके इच्छा और अहंकार से शून्य होकर तू निरुद्वेग होकर युद्ध कर।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

जो लोग श्रद्धा से युक्त होकर और असूया से रहित होकर मेरे इस उपदेश का निरन्तर पालन करते हैं, वे कर्मों (के बन्धन) से मुक्त हो जाते हैं।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

परन्तु जो असूया से भरे होने के कारण मेरे इस उपदेश का तिरस्कार करते हैं और इसका पालन नहीं करते, समझ लो कि वे सम्पूर्ण ज्ञान के प्रति अन्धे हैं, बेवकूफ हैं और वे नष्ट होकर रहेंगे।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

ज्ञानी मनुष्य भी अपनी प्रकृति (स्वभाव) के अनुसार आचरण करते हैं। सब प्राणी अपनी प्रकृति के अनुसार काम करते हैं। निग्रह (दमन या रोकथाम) क्या कर सकता है?

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

(प्रत्येक) इन्द्रिय के लिए (उस) इन्द्रिय विषयों (के सम्बन्ध) में राग-द्वेष नियत हैं। मनुष्य को इन दोनों के काबू में नहीं आना चाहिए, क्योंकि वे उसके शत्रु हैं।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

अपूर्ण रूप से पालन किया जा रहा भी अपना धर्म पूर्ण रूप से पालन किए जा रहे दूसरे के धर्म से अधिक अच्छा है। अपने धर्म का (पालन करते हुए) मृत्यु भी हो जाए, तो भी वह कहीं भला है, क्योंकि दूसरे का धर्म बहुत खतरनाक होता है।

अर्जुन उवचा

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरित पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

परन्तु हे वार्ष्णेय (कृष्ण), वह क्या वस्तु है, जिससे प्रेरित होकर मनुष्य न चाहता हुआ भी पाप करता है, जैसे कोई बलपूर्वक पाप करवा रहा हो?

श्री भगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

यह वस्तु काम और क्रोध है, जो रजोगुण से उत्पन्न हुए हैं। ये सब कुछ निगल जाने वाले हैं, और अत्यन्त पापपूर्ण हैं। इस संसार में इन्हीं को शत्रु समझो।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

जैसे आग धुएँ से ढक जाती है, या दर्पण धूल से ढक जाता है, या भ्रूण गर्भ द्वारा सब ओर से घिरा रहता है, उसी प्रकार यह उस (रजोगुण) से ढका रहता है।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), इच्छा की इस तृप्त न होने वाली आग से, जो कि ज्ञानी मनुष्य की चिरशत्रु है, ज्ञान आवृत रहता है।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इसका रहने का स्थान कही जाती हैं। इनके द्वारा ज्ञान को आवृत करके यह शरीरधारी (आत्मा) को पथभ्रान्त कर देता है।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

इसलिए भरतों में श्रेष्ठ (अर्जुन), तू शुरू से ही इन्द्रियों कोअपने नियन्त्रण में रख और ज्ञान और विवेक के इस पापी विनाशक को मार डाल।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

कहा जाता है कि इन्द्रियां बड़ी है; मन इन्द्रियों से भी बड़ा है; बुद्धि मन से भी बड़ी है; परन्तु बुद्धि से भी बड़ा वह है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

हे महाबाहु (अर्जुन), इस प्रकार जो बुद्धि से भी परे है, उसे जानकर और (निम्नतर) आत्मा को आत्मा द्वारा स्थिर करके तू इस कामरूपी शत्रु को मार डाल, जिस तक कि पहुंचना बहुत कठिन है।

गीता दर्शन
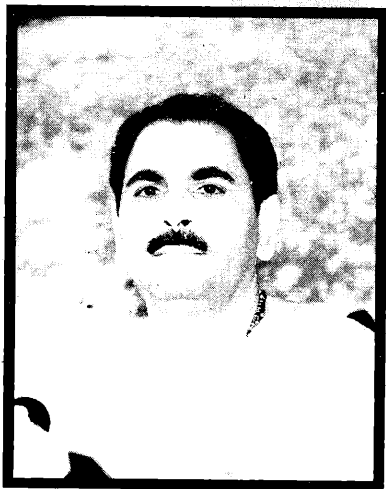
न, कर्म, संन्यास योग का एक सुन्दर स्वरूप यह चतुर्थ अध्याय-आईये इसमें प्रवेश करें। भगवान कृष्ण ने उपदेश देते हुए अर्जुन से कहा–

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।।

हे अर्जुन! यह ज्ञान जो तुम्हें दिया जा रहा है यह कल्प के आदि में, सृष्टि की शुरुआत में विवस्वत को मैंने दिया, उसके बाद विवस्वत ने मनु को कहा, मनु से इक्ष्वाकु को मिला, इक्ष्वाकु के माध्यम से यही ज्ञान राजर्षियों को मिला और इस प्रकार से परम्परा से यह ज्ञान लगातार चलता आ रहा है।

भगवान ऐसा कहते हैं कि जो ज्ञान दिया जा रहा है यह पहले भी दिया गया था; सृष्टि के आदि में इस ज्ञान को दिया गया, यही ज्ञान फिर अन्य ऋषियों को प्राप्त हुआ, उसके बाद राजर्षियों को प्राप्त हुआ और उसी ज्ञान को फिर से मैं तुम्हें दे रहा हूँ। *'इम'* इस प्रकार से यह ज्ञान फिर तुम्हारे पास धारा के साथ आ रहा है।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।।

– वही ज्ञान परम्परा से चलते हुए अब तुम्हें दिया जा रहा है क्योंकि तुम मेरे भक्त हो और मेरे सखा हो, मेरे मित्र हो। इसीलिए शिष्य होना, भक्त होना और मित्र होना-यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है कि मैं तुम्हारे माध्यम से इस ज्ञान को फिर से प्रकट कर रहा हूँ। देखा जाए तो इस संसार में जितना भी ज्ञान-विज्ञान है उसे कोई भी कहे लेकिन वह धारा पीछे से चली आ रही है; आदि स्रोत तो परब्रह्म परमेश्वर ही है, उसी आदि स्रोत से ही यह ज्ञान आगे से आगे मिलता जा रहा है। कहने वाला मुख कोई भी हो, आगे भी होंगे, लेकिन ज्ञान की धारा–परम्परा से चलती आ रही है।

महात्मा बुद्ध जब भिक्षु बनकर अपने पिता शुद्धोदन के सम्मुख उपस्थित हुए, राज-द्वार पर खड़े हुए भिक्षु के वेश में अपने बेटे बुद्ध को देखते ही शुद्धोदन ने पूछा – 'यह वेश किसलिए? इस वेश को किसलिए धारण किया है?'

महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया – 'यह मेरी जाति की परम्परा है।' अब राजा, वे तो यह वेश धारण नहीं करते, तो शुद्धोदन यह जानना चाहता है कौन-सी जाति? कौन-सी बिरादरी? किस जाति के हो भाई? कोई अलग से जाति है क्या?

महात्मा बुद्ध ने कहा – मैं उन्हीं की जाति से हूँ जो पहले ज्ञानी लोग हुए हैं, जिन्होंने पहले इस संसार में ज्ञान की दीपशिखा प्रज्वलित की, जिन्होंने मशाल पहले भी जलाई और जो जलाते रहे हैं उसी परम्परा की मशाल को लेकर मैं फिर आया हूँ; यह निश्चित था कि कोई राजद्वार के सामने खड़ा होकर भिक्षु का रूप धारण करे, कोई राजा आयेगा और उसका राजकुमार बेटा साधु का वेश धारण करके खड़ा होगा; मैं वही तपस्वी फिर से आया हूँ, यह परम्परा चलती रहेगी, कोई न कोई राजा का बेटा फिर से जायेगा वन में तपस्या करने के लिए, साधु का वेश धारण करके आयेगा; लेकिन वह राजा का पुत्र नहीं उसकी बिरादरी है, ज्ञानियों की बिरादरी है, जगाने वालों की एक बिरादरी है वह उसी परम्परा से लगातार आ रहे हैं। वह तुम्हारे शरीर की परम्परा वाली बिरादरी नहीं है; यह ज्ञान की धारा चलती रही है, आगे इसको सम्भालने वाले सम्भालते रहेंगे। महात्मा बुद्ध ने कहा कि मैं पहले भी था, पहले भी आया था, अब भी हूँ, आगे फिर मेरी तरह के लोग खड़े होंगे, इसी तरह से, ऐसा ही रूप धारण करके आयेंगे; वेश से मतलब नहीं होगा, उनका रूप अन्दर से जागा हुआ होगा, फिर से आयेंगे, फिर जगायेंगे।

ऑग्स्टाईन ने भी कहा है- यह ज्ञान नया नहीं है, पहले था, आगे भी होगा; जो था उसे मैं प्रकट करने के लिए नहीं आया हूँ। परम्परा के अनुसार दे रहा हूँ, मतलब यह ज्ञान आयेगा लोगों तक। ईसा मसीह ने भी ऐसा कहा – इब्राहिम के पहले भी मैं था अर्थात् यह ज्ञान पहले भी दिया गया, दिया जाता रहेगा। तो ज़रा सोचकर के देखिए – यह कहना कि 'मैं देख रहा हूँ' यह मौलिक रूप से कहना भी ग़लत हो जायेगा, यहाँ "मैं" है ही नहीं, परम्परा चली आ रही है।

भगवान कृष्ण कहते हैं मैंने पहले भी यह ज्ञान दिया था–अब भी दे रहा हूँ और तुम्हें इसीलिए माध्यम बनाया क्योंकि तुम मेरे भक्त हो, प्रिय हो, शिष्य हो, सखा हो, इसीलिए मैं तुम्हें माध्यम बनाकर यह ज्ञान दे रहा हूँ।

बात ध्यान रखना – इस ज्ञान को अगर कोई प्राप्त करना चाहता है, जैसे महात्मा बुद्ध के पिता ने भी, उनके ज्ञान से प्रभावित होकर के पूछा – "क्या मैं भी शिष्य बन सकता हूँ?" महात्मा बुद्ध ने कहा – 'शिष्य बन सकते हो लेकिन एक बात का ध्यान रखना, शिष्य बनकर के ही आना, यह याद करके नहीं आना कि मैं पिता हूँ और बुद्ध मेरा बेटा है। यह याद करके आना कि एक जलते हुए दीपक के सम्मुख एक बुझा हुआ दीपक आ रहा है और वह बुझा हुआ दीपक एक नए प्रकाश को धारण करने के लिए आ रहा है। यदि ऐसा मन बन जाए, तो आओ मेरे पास, मैं तुम्हें अपने अन्दर का प्रकाश दूँ तुम्हें शिष्य बनाकर और अगर अहंकार है कि मैं पिता, यह पुत्र, तो फिर तुम आ तो सकते हो लेकिन पा नहीं सकते। ज्ञान प्राप्त करने के लिए सिर झुकाना ही पड़ेगा, "मैं" को हटाना ही पड़ेगा।

प्रश्न उठता है कि सखा बनने में भी तो एक रिश्ता है। लेकिन यहाँ पहला शब्द – *भक्तोऽसि* – तुम मेरे भक्त हो, भक्त बनना बहुत ज़रूरी है। भक्त बनने का मतलब है कि उसकी सेवा में तत्पर हो। अगर अपने रब को, अपने मालिक को, अपना बनाने की इच्छा है तो उसके रंग में रंगना पड़ेगा। जब तक आप भक्ति के रंग में पूरी तरह से रंगेंगे नहीं तब तक वहाँ से जो कुछ बह रहा है वह प्राप्त नहीं होगा। अपने आपको एक बार अर्पित करना ही पड़ेगा और ध्यान रखिए – यह शीष देने वाली बात है; जैसे कबीर ने कहा–

जो शीष दिए गुरु मिले तो भी सस्ता जान

अगर सिर देने से गुरु मिल जाए तो भी इसे सस्ता समझना, सस्ता समझने से मतलब है कि आसान मामला हो गया। तो वहाँ शीष दिये का मतलब क्या होता है? पूर्ण समर्पण कर देना, फिर आगे कुछ बचा ही नहीं, अपनी गर्दन उठाकर चढ़ा दी। और देखिए कि शीष दिए का मतलब कोई खोपड़ी माँगने के लिए गुरु तैयार नहीं है। यह जो दिमाग घूमता है न "मैं" वाला, यह जो अहंकार वाली बुद्धि है, जो अपनी "मैं" है उसका पूर्णरूप से दान करना पड़ेगा। तो जैसा मैंने आपसे कहा – भगवान कृष्ण ने कहा कि तू

मेरा भक्त है और सखा है इसीलिए मैंने तुझे यह ज्ञान दिया है। उसका सखा और भक्त बनकर देखिए; वह तो आने के लिए तैयार खड़ा है, आप निमन्त्रण दे रहे हो लेकिन निमन्त्रण देने से पहले स्वागत की तैयारियां तो कर लो और स्वागत किस रूप में–

'मैं मैं ना रहूँ तू तू ना रहे' वाला भाव; एक ऐसा रूप जैसे कोई नदी सागर में जाकर मिल गई, कोई बूँद गिरी सागर में; कोई कहे बूँद से कि समुद्र में गिरना नहीं, नहीं तो तेरी पहचान ख़त्म हो जायेगी। बूँद कहती है कि मैं अपनी पहचान और अपनी "मैं" को ख़त्म करना चाहती हूँ और जैसे ही गिरती है फिर परिणाम देखिये, फिर बूँद-बूँद नहीं रही, "मैं" तो ख़त्म हो गई लेकिन बूँद सागर हो गई; अपने आपको गिराया, अर्पित कर दिया, फिर परमात्मा का रूप ही सामने होगा; परमात्मा हमारे सम्मुख हर समय है– आगे-पीछे, दायें-बांये। लेकिन अग़र हम चाहते हों कि हमारे अन्दर उतर आए तो थोड़ा झुकना पड़ेगा, पूर्णरूप से समर्पण करना पड़ेगा।

इब्राहिम अदहम नाम के अच्छे चिन्तक हुए और कहना चाहिए सन्त परम्परा के एक जागृत मनुष्य – जो भी सूफ़ी लोग रहे हैं उनकी एक अलग़ तरह की परम्परा रही – ज्ञान कहीं से भी निकला हो, किसी के मुँह से भी आया हो, भाषा अलग़ हो सकती है, वेश अलग़ हो सकता है लेकिन धारा उसी तरह से जागती है।

इब्राहिम ने एक बार किसी व्यक्ति को समझाते हुए कहा कि अग़र तू अपने मालिक का दास है तो इस बात का ख़्याल रखना कि उसके राज्य में तू बसता है और उसका दिया हुआ खाता है इसीलिए उससे प्यार करना सीख ताकि तेरा मालिक सम्पूर्ण रूप से तेरा ही हो सके। उसने कहा कि जब मालिक के हुक्म की अवज्ञा करो, मतलब तुमसे कोई गुनाह हो जाए तो एक काम करना कि मालिक की दी हुई रोज़ी न खायें। उस व्यक्ति ने पूछा – तो फिर कहाँ से खायें? इब्राहिम ने जवाब में कहा कि यह अच्छा नहीं है कि जिसकी तुम रोज़ी खाते हो और उसका कहा हुआ न मानो; या तो इतनी हिम्मत करो कि जिसकी आज्ञा नहीं मान रहे हो, जो तुम्हारा मालिक है, उसकी दी हुई रोज़ी को भी छोड़ दो; अग़र उसकी दी हुई रोज़ी-रोटी खाते हो तो इस बात का

ख़्याल रखना कि उसका हुक्म मानना है, उसके कहे हुए के अनुसार चलना है और अग़र हो सके तो जहाँ तक उसका राज चलता है वहाँ से बाहर चले जाना।

उस व्यक्ति ने फिर पूछा कि कहाँ जाऊँ, क्योंकि उसका राज तो हर जगह है? इब्राहिम ने उत्तर दिया कि जब तू यह मानता है कि उसका राज हर जगह है, तो फिर जिसके प्रशासन में रहता है, उसका कानून तोड़कर के तू रहना चाहता है यह तेरे लिए ठीक नहीं है। अग़र उसे मानता है तो उसकी अवज्ञा नहीं करना, हुक्म उलुली नहीं करना; जैसा-जैसा आदेश उसने दिया है वैसे ही हिसाब से चलना।

सोच करके देखिए, जिसको हमने मान लिया यह हमारा मालिक, यह हमें रोज़ी-रोटी दे रहा है और उसकी आज्ञा न मानें हम, उससे उल्टे खड़े हो जायें, तो फिर रिश्ता कहाँ रहा?

इब्राहिम ने आगे फिर कहा कि एक बात का ख़्याल रखना-अग़र मन में गुनाह करने का भाव आ जाए, उसके हुक्म को नहीं मान रहे हो; क्योंकि उसका हुक्म है नेक कर्म करना, तो राज्य से बाहर जाना, ऐसी जगह ढूँढना जहाँ वह न हो, हो सके तो उससे छिपा के करना। तो सवाल करने वाला सवाल करता है कि यह कैसे सम्भव है? सभी के दिलों की बातों को वह जानता है, सबके दिलों में वह रहता है, वह तो हर बात को समझ लेता है, फिर जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? इब्राहिम ने कहा कि जब तू उसके राज्य से बाहर जा ही नहीं सकता तो यह भी सोच लेना कि उसके कानून की पकड़ से भी बाहर नहीं जा सकता, तुम्हें फिर सज़ा भोगनी ही पड़ेगी।

फिर इब्राहिम कहता है एक काम और भी करना-मौत का फरिश्ता जब तेरे सामने आए, उसे कहना ठहर, पहले प्रायश्चित कर लूँ, तौबा कर लूँ। सवाल किया उसने कि ऐसा तो मुश्किल होगा, फरिश्ता तो हमारे कहने पर नहीं चलेगा? कहता है कि फिर एक बात का ख़्याल रख-मौत के फरिश्ता के आने से पहले प्रायश्चित कर ले और अपनी ज़िन्दगी को सुधार ले, नहीं तो मौत न जाने कब आ जाए? और तेरा सामना मौत से हो जाए। पूछा ऐसा करने से क्या होगा? मालिक का प्यार पायेगा, हो सकता है कि मालिक का दास बनते-बनते तू उसके इतने करीब हो जाए कि तुझमें और मालिक में कोई

अन्तर ही न नज़र आए। मतलब अग़र मित्र बनना है, उसका भक्त बनना है, तो पहले भक्त बनने वाली शर्त पूरी करो, दासत्व स्वीकार कर लो। इसीलिए कहा जाता है कि अग़र मालिक के सामने गुनाह करते हो तो एक बात ध्यान रखना—एक और फकीर ने कहा, एक और चिन्तक ने कहा कि अग़र मालिक के सामने सीना तानकर गुनाह कर लिया है तो यह भी ध्यान रखना कि जब प्रार्थना में बैठो तो अपना गुनाह स्वीकार करना और कहना मैं ग़लत था, ग़लती हुई और सिर झुकाकर मानना कि मेरे द्वारा ग़लतियाँ हुईं; अपनी ग़लतियों को कहने में संकोच नहीं करना और सवाल इतना ही नहीं-नाक से लकीर खींचना और कहना, कानों को हाथ लगाकर 'अब नहीं होगा, जो बीत गया सो बीत गया, अब नई ज़िन्दगी, नया अध्याय शुरू होगा।' जैसे हर दिन शुरू होता है और शाम होते ही जैसे दिन समाप्त हो गया, अन्धेरा सामने है तो फिर नया सूरज निकलेगा, हर रोज़ नया सवेरा होता है, तो ऐसे ही मेरी ज़िन्दगी में अब नया सवेरा आया है।

भक्त होने के लिए एक बात का और ख़्याल रखना पड़ेगा – जिसको तुमने अपना मन, अपना दिल अर्पण किया है—अपने मालिक को – तो उसमें एक शर्त होगी। जिसको तुमने बहुत करीब मान लिया, सारा दिन ख़्याल तो फिर उसी का ही आयेगा, अग़र अपने परमात्मा को सब कुछ माना है तो फिर ख़्याल उसका क्या नहीं आता सारा दिन? उसका नाम क्यों नहीं जपते? इसका मतलब तुम झूठे दावेदार हो, तुम्हारा यह कहना ही ग़लत है कि मैंने तुझे सब कुछ मान लिया; अग़र सब कुछ माना है तो फिर एक पल भी ऐसा नहीं होगा कि उसको भूलकर रह सके आदमी। कहा गया है कि अग़र अपने परमात्मा को तू अपना मित्र मानता है, अपना स्वामी मानता है और कह दिया कि यह मन अब तेरा हो गया, यह दिल अब तेरा हो गया, तो इसका मतलब क्या है-यह मन अब और चिन्तन नहीं करेगा, अब यह चिन्तन करेगा तो केवल तेरा; तो फिर सारे दिन में और किसी का ख़्याल नहीं आना चाहिए। मतलब यह कि सारा दिन सिमरन में ही बीतेगा। कर्म भले ही कुछ भी करोगे लेकिन ख़्याल तो आयेगा ही ज़रूर। कबीर ने लिखा –

जो तिरहया पीहर बसे सुरत रहे पीये मा

विवाह हुआ, अभी दो-चार महीने ही हुए और मायके जाने का मौका मिला। अब वह मायके में रहती तो है, मायके के काम भी कर रही है, वहाँ सहेलियों से बातचीत भी करती है लेकिन पूरा ध्यान अपने पति की तरफ़ हर समय जाता है। कहा है कि तुम जिससे बिछुड़ कर इस दुनिया में आए हो, यह तो मायका है, वापिस अपने ससुराल में जाना है, तो जहाँ वापिस जाना है वहाँ का ख़्याल लगातार बना रहे तब तो तुमने अपने आपको अर्पण कर दिया।

यद्यपि यह ऐसा प्रसंग है कि अग़र एक ही श्लोक को लेकर या एक ही शब्द को लेकर के चिन्तन करने लग जायें तो गहराई में उतरते-उतरते यह समस्या हो जायेगी कि फिर पूरी गीता की व्याख्या नहीं की जा सकती। लेकिन कहीं-कहीं शब्द जब आते हैं वहाँ हम लोग भी अपना लोभ संवरण नहीं कर पाते, वहाँ डूबने को मन करता ही है।

भगवान ने कहा कि अर्जुन तू मेरा प्रिय है, मेरा भक्त है और मेरा सखा है लेकिन भक्त होने की कसौटी क्या है – अपने आपको उसके प्रति अर्पण करना पड़ेगा। *भज सेवायाम्* – उसका नाम भजना और उसकी सेवा करना। भज-सेवायाम् से ही भक्त शब्द सिद्ध होता है; इसका अर्थ ही है – जो सेवक है; और सेवादार की अपनी पहचान नहीं होती, उसकी पहचान तो अपने मालिक से होती है। बात-बात में यही कहता है – 'मैं' उनके यहाँ काम करता हूँ, 'वह मालिक हैं' मतलब पहचान उनकी, उनकी पहचान से उसकी पहचान हो रही है।

एक बात ध्यान रखना–कोई आदमी बादशाह का प्यारा हो जाए, (शब्दों पर ध्यान देना, भावना को पकड़ना), कोई व्यक्ति राजा का, बादशाह का, प्यारा हो जाए, संसार उसके लिए नम्र हो जाता है, दुनिया उसको बड़ी नम्रता से देखती है, प्यार से बात करती है, कठोरता से बात नहीं करती। हर आदमी सोचता है यह बादशाह का आदमी है, कहते हैं कि जो संसार का बादशाह है अग़र तू उसका प्यारा हो जायेगा तो सारा संसार तेरे लिए नम्र हो जायेगा। उसका होने की कोशिश करो। कहा जाता है न कि –

कोई राजा के पास गया और जाकर के उसने कहा मैं आपसे कुछ माँगना नहीं चाहता और आप मुझे कुछ देना भी नहीं लेकिन मेरे ऊपर एक कृपा करना – यह दुनिया जो है न, जो मेरा अपमान करती है, इनकी नज़रें ठीक कर दो। राजा ने कहा – तो कल मिलना बाज़ार के अन्दर।

राजा हाथी पर बैठा हुआ आ रहा था, राजा की सवारी निकल रही थी; राजा ने उसको इशारा किया-आ इधर; हाथी पर अपने साथ बैठाया, पूरे बाज़ार में घूमे; राजा ने कहा – उतर के जा अब। बात हो गई इतनी ही काफ़ी है; न मैंने तुझे कुछ दिया न तूने कुछ लिया लेकिन आज के बाद देखना संसार को।

अब वही व्यक्ति जैसे ही नीचे उतरा, लोग कहते हैं – 'कमाल है, राजा तुझे इतना मानता है और तू इतना सीधा बनकर रहा। राजा ने तुझे देखा, एकदम बुलाकर के अपने पास बैठाया।' अब पास बैठाने का परिणाम देखिये हर आदमी प्यार देता है। लोग जब प्यार देने लगे तो यह व्यक्ति आँख में आँसू भरकर कहता है – राजा तेरे करीब दो घड़ी बैठे कितना मान हमारा भी बढ़ गया। अग़र सबसे बड़े राजा के निकट जाकर बैठ गए तो फिर हमारी हालत क्या होगी? और उसके बाद वह व्यक्ति लोगों के बीच में नहीं बैठा, एकान्त में गया, वन में जाकर बैठा और वहाँ जहाँ कोलाहल नहीं है, जहाँ उसकी आवाज़ हृदय में सुनाई देती है वहाँ जाकर बैठ गया।

इसीलिए यह निवेदन करूँगा आपसे-भगवान के भक्त बनो, उसके प्यारे बनो और उससे कहो कि मेरी बुद्धि के रथ को, मेरे जीवन के रथ को तुम सम्भालो मेरे भगवान, जहाँ ले जाना हो तुम ले जाओ, मैंने तो तुम्हें अपने जीवन का रथ अर्पित कर दिया। तो निश्चित बात है जब चलाने वाले भगवान होते हैं तो सारा ज़माना भी अग़र विरोध में खड़ा हुआ हो कुछ बनने वाला नहीं, ज़माने को झुकना ही पड़ेगा, उसे हारना ही पड़ेगा और यह भी मन में बात लेकर के नहीं चलना कि दुनिया को झुकाना है। असल में तो अपने को झुकाने से ही अपने मालिक को पाया जाता है और उसको पाने के बाद फिर किसी को झुकाने की इच्छा होती ही नहीं। फिर तो लगता है कि सभी अपने हैं।

भगवान ने कहा कि यह ज्ञान मैंने पहले भी दिया था और यह ज्ञान परम्परा से चलता रहा। अर्जुन लुप्त हुए ज्ञान को फिर से मैं प्रकट करने लगा हूँ, तेरे माध्यम से प्रकट कर रहा हूँ क्योंकि तू मेरा प्रिय है, मेरा भक्त है, मेरा शिष्य है इसीलिए मैं इस ज्ञान को तुम्हें दे रहा हूँ।

ज्ञान हमें भी मिल सकता है, कृष्ण हमारे सम्मुख भी उपस्थित हो सकते हैं लेकिन अर्जुन जैसी स्थिति बनाओ तो सही, अपने मन को वैसा बनाओ तो सही, वह सरलता अपनाओ, वह श्वेत रूप अपनाओ, कृष्ण अपना रंग भरने के लिए तैयार खड़े हैं।

अर्जुन ने एक प्रश्न किया, मन में शंका जाग गई—हे कृष्ण, मैं आपको देख रहा हूँ, आप तो अभी हैं, बहुत पहले यह ज्ञान आपने कैसे दे दिया? भगवान उत्तर देते हैं –

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥

हे परन्तप अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत जन्म हुए हैं, जिनको मैं जानता हूँ लेकिन तुम नहीं जानते। बहुत-बहुत जन्म हुए इसीलिए पहले आया हूँ मैं, अब फिर आया हूँ मतलब यह कि पहले भी आकर के मैंने रूप धारण करके यह ज्ञान दिया था, अब दे रहा हूँ और सम्भव है, यह सम्भावना सदा रहेगी कि मुझे फिर आना होगा और आगे चलकर भगवान कृष्ण ने यह घोषणा भी की है।

दुःख तो यह है कि परमात्मा की शक्तियाँ धारण करके, परमात्मा के प्यारे लोग संसार में आते हैं और उसका सन्देश देते हैं, हम गर्दनें भी हिला देते हैं; लेकिन फिर भी हमारा अहंकार आढ़े आ जाता है, फिर हम लोग जानने के बाद भी मानने को तैयार नहीं और यही हम लोगों का दुर्भाग्य होता है। उसकी अनुभूति और प्रतीति कराने के लिए कोई न कोई शक्ति, किसी न किसी रूप में फिर प्रकट होती है।

आश्चर्यजनक बात यह रही है कि जब भी परमात्मा का सन्देश लेकर के कोई भी दुनिया में आया, उसे दुनिया ने अपने जैसा ही साधारण समझा। क्योंकि उसने कोई ख़ास तरह का वेश धारण नहीं किया था, कोई अलग़ तरह की पहचान नहीं बनाई थी और व्यक्तियों की दशा तो बिल्कुल ऐसी रही जैसे नेत्रहीन कुछ लोगों ने हाथी को जानने की कोशिश की, कैसा होता है हाथी? तो किसी ने पाँव को स्पर्श करके कहा कि हाथी खम्बे जैसा होता है क्योंकि उन्होंने टांग को ही छुआ। किसी ने पूँछ को छुआ, छूने के बाद, कहा – समझ में आ गया हाथी कैसा होता है -- झाड़ू की तरह से होता है। एक व्यक्ति पेट

तक पहुँचा, दोनों हाथ लगाकर उसने अनुभव किया हाथी कैसा होता है –तो उसने बता दिया – ढोल की तरह होता है। एक ने कान को छुआ और छूने के बाद कहा जैसे सूप होता है न अनाज़ साफ़ करने वाला बिल्कुल ऐसा ही होता है हाथी, हम छूकर आए, जान कर आए।

अग़र कोई उनकी बातें सुने तो क्या कहेगा? जो बता रहा है बिल्कुल ठीक बता रहा है, यह भी सच है, लेकिन यह भी सच है कि झूठ बता रहे हैं क्योंकि उन्होंने एक अंग देखा, एक रूप अलग़ से देखा, सम्पूर्ण रूप नहीं देखा था। ऐसे समझ लीजिए-अन्धेरा हो और ऐसा ही कोई ऊँट हो या हाथी हो, जिसने कभी देखा नहीं, अन्धेरे के बीच में आँखों वाले भी हों और वे सब इसी तरह से टटोल-टटोल कर देखें-कोई कहे टांग पकड़कर मैंने इधर से समझ लिया, ऐसा हाथी होता है; कोई पेट पकड़कर कहे और एक आदमी सबकी सुनने के बाद कहे कि तुम जो कह रहे थे अपनी-अपनी सच कह रहे थे, लेकिन अभी भी सच नहीं कह रहे। अचानक वह लाईट जलाए और कहे अब बताओ? तो आदमी फिर कहेगा–ओह! हम लोग कितनी भूल में थे।

तो भगवान को या फिर किसी महापुरुष को हम लोग एक रूप से देखकर सोच लेते हैं शायद ऐसे हों, सम्पूर्ण रूप में देखना आसान नहीं है। लेकिन जिस दिन देख लोगे, जैसे भगवान कृष्ण ने अपना विराट रूप दिखाया और अपना स्वरूप प्रदर्शित किया, तब अर्जुन की समझ में आया, तब उसने कहा – न जाने मुझसे कितनी ग़लतियाँ हुई, मैं अवज्ञा कर गया, मैं आपको समझ नहीं पाया – जितना-जितना विराट स्वरूप तक पहुँच कर व्यक्ति जान लेगा, सिर झुकता चला जाएगा। भगवान ने इसीलिए कहा–

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममयया ।।

अर्जुन, मैं अजन्मा हूँ, प्राणीमात्र का स्वामी हूँ, अपनी प्रकृति को और माया को अपने वश में करके प्रकट हुआ हूँ। क्योंकि-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

भगवान यह जो शब्द कह रहे हैं *तदात्मानं सृजाम्यहम्* – तब मैं अपने आप का सृजन करता हूँ, मैं अपने आपको प्रकट करता हूँ, जब-जब धर्म की

ग्लानि होती है, धर्म के प्रति लोगों का ध्यान हटता है, धर्म से ग्लानि हो, धर्म से विमुख हो जाए, जब धर्म का ह्रास हो, धर्म तिरोहित होने लग जाए, अधर्म जब बढ़ने लग जाए, पाप और अत्याचार जब सामने प्रकट हो जाए तब धर्म को प्रकट करने के लिए मैं अपने आपका प्राकट्य करता हूँ, अवतरण करता हूँ, फिर मैं उतर आता हूँ किसलिए?

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

सज्जनों की रक्षा के लिए, दुष्ट-वृत्तियों को मारने के लिए, दबाने के लिए, *धर्मसंस्थापनार्थाय* – धर्म की संस्थापना करने के लिए, *'सम्भवामि युगे युगे'* हर युग में मैं आता हूँ अर्थात् मैं किसी न किसी रूप में फिर प्रकट होता हूँ, संसार में आकर फिर लुप्त हुई धाराओं को प्रचलित करता हूँ। फिर से संसार में अधर्म को तोड़ा जाता है, दुष्ट वृत्तियों को दबाता हूँ मैं। अब यहाँ यह प्रश्न नहीं है कि भगवान मारने के लिए आते हैं क्या? आदर्श स्थापित हो सके और दुष्ट-वृत्तियाँ दबें, सज्जनों का मनोबल बढ़े क्योंकि जब भी दुष्टता उभरती है उसे ललकारने की हिम्मत जिनके अन्दर जागृत होती है, समझना कहीं परमात्मा ने उनके ऊपर कृपा की है।

परमात्मा से तालमेल बैठाता-बैठाता विभीषण, रावण के दरबार में उसकी चाटुकारिता करने वाले लोगों के बीच में ललकार कर कह देता है– 'रावण, ग़लत है यह सब'। यह हिम्मत हर किसी में नहीं जागती। वहाँ से तार जुड़े थे तो इसीलिए ललकारने के लिए, चुनौती देने के लिए खड़ा हो गया।

सोचिए, तैमूर लंग ने बगदाद के अन्दर किसी समय एक लाख इन्सानों को, जिन्हें उसने मरवाया था, उनकी खोपड़ियों को इकट्ठा कराया, पहाड़ बनाया और पहाड़ बनाकर के हँसा और सिर ऊँचा किया उसने। इतने सारे लोग, कीड़े-मकोड़ों की तरह मेरे पांव के नीचे रौंदे गए।

एक दिन उसने बहुत सारे गुलामों को सामने बुलवाया। अब जिसके हँसने-हँसने में ही दूसरे की मौत हो जाए उस जैसे आदमी के सामने दास खड़े हुए हों तो इस समय मनुष्य की हालत क्या होती है ज़रा सोचकर के देखिए? तुर्किस्तान का एक प्रख्यात कवि, जिसके तार अपने रब से, अपने मालिक से

जुड़े हुए थे, उसको भी कैद करके बुला लिया गया। दास बनाकर के तैमूर ने उसको सामने खड़ा करके कहा – बड़ा ज्ञानी है, समझदार है, हिसाब-किताब लगाता है कर्म का, ज़रा हिसाब तो लगा यह जो गुलाम खड़े हुऐ हैं इनकी कितनी-कितनी कीमत है?

तो जितने गुलाम वहाँ खड़े हुए थे, उन गुलामों की तरफ़ नज़र डालकर अहमदी ने कहा– 'चार-चार हज़ार अशर्फ़ी का एक-एक व्यक्ति है' – बहुत कीमत लगाकर के कहा। सुनते ही तैमूर लंग को आश्चर्य हुआ। एक अशर्फ़ी में एक-एक, दो-दो गुलाम खरीद लिए जाते हैं, कितनी कीमत लगा रहा है यह?

उसने कहा – अच्छा, तो फिर हिसाब लगाने ही लगे हो तो फिर हमारा भी हिसाब लगाओ। हमारी कीमत क्या होगी? अहमदी ने कहा – 'आपकी कीमत चौबीस अशर्फ़ी।'

तैमूरलंग ने कहा – 'अच्छा, मूर्ख हो? समझ में नहीं आई बात? अरे, चौबीस अशर्फ़ी के तो हमारे कपड़े ही कपड़े हैं।' अहमदी बोला – 'उसी की तो कीमत लगाई, तेरी कीमत तो दो पैसे की भी नहीं।'

तैमूर लंग गर्ज़ा – खबरदार! उससे भी ज्यादा ऊँची आवाज़ में अहमदी बोला – 'जो आदमी ताक़त वाला होकर कमज़ोर को सताए, दूसरे के हिस्से की रोटी को छीन ले जाए, हँसते-खेलते चेहरे के ऊपर पीड़ा भर दे उसकी कीमत दो कौड़ी की भी नहीं होती, उससे तो अच्छे हैं कीड़े-मकौड़े, दुनिया के काम तो आते हैं।'

इतनी बड़ी हिम्मत की बात उसने कही; और कहा जाता है कि तैमूरलंग को न जाने क्या हुआ, उसने सुना और सुनने के बाद कहा – 'अच्छा तू तो जा यहाँ से।'

तो जो रब् के, अपने मालिक के, नज़दीक बैठने लगते हैं, उसका ध्यान करने लगे जाते हैं उनके अन्दर इतनी हिम्मत हो जाती है; क्योंकि वहाँ से तार जुड़ गया। लेकिन जब भगवान अपना स्वरूप प्रकट करता है, तो न जाने कितने-कितने उसके बन्दों के अन्दर एक साथ फिर से वह दीप्ति, वह प्रकाश, प्रकाशित होने लगता है। संसार को जगाने के लिए, संसार में फिर से वह लहर पैदा करने के लिए, किसी न किसी रूप में परमात्मा अपना स्वरूप प्रकट करता है।

इसीलिए कहा जाता है कि किसी में कोई अंशावतार है–कोई चौदह कला, बारह कला का अवतार है लेकिन कृष्ण षोड्श कला सम्पूर्ण अवतार हैं। सम्पूर्ण रूप लेकर के प्रकट हुए – *कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्* –कृष्ण जगत के गुरु हैं, सारे संसार के सामने जो शिक्षा दे रहे हैं, यह जीवन जीने का महान अंदाज़ है। भगवान ने कहा –

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसापूता मद्भावमागताः ।।

अर्जुन, बहुत लोग पहले भी पवित्र-भाव में मुझको प्राप्त हुए हैं। जिन्होंने *वीतरागभयक्रोधाः* – राग को छोड़ दिया, भय से ऊपर उठ गए, क्रोध को अपने अन्दर से पोंछ डाला और जो मेरी शरण ग्रहण कर गया, ऐसे ज्ञान और तप से जिन्होंने अपने आपको पवित्र किया है ऐसे बहुत लोग मेरे भाव को प्राप्त हो गए हैं, मुझे प्राप्त हो गए हैं, मेरे आनन्द को उन्होंने प्राप्त कर लिया है।

यहाँ भगवान ने रास्ता दिया कि अग़र मेरे रूप को पाना चाहते हो तो उसका रास्ता क्या है? बताया – *वीतरागभयक्रोधाः* – राग को, भय को और क्रोध को पूर्णरूप से परित्याग करो, *मामुपाश्रिताः* – मेरे अन्दर जो अपने आपे को अर्पित कर चुके वह लोग ज्ञान और तप के द्वारा मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए हैं, मेरे धाम तक पहुँचे हैं। ज्ञान और तप से अपने को पकाओ-सीढ़ी है यह और इसको ध्यान पूर्वक सुनकर और समझकर पकड़िये। अग़र उधर जाने की इच्छा है, तो हमें तैयारी कर लेनी चाहिए; अपने रब् की तरफ़ जाने की इच्छा हो, अपने स्वामी की तरफ़ जाने की इच्छा हो, तो सीढ़ी पकड़ो। सीढ़ी क्या है?

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसापूता मद्भावमागताः ।।

भगवान कह रहे हैं – सबसे पहले राग को त्यागो, भय को मुक्ति दो, क्रोध को अपने अन्दर से पोंछ दो, ज्ञान और तप से अपने को पवित्र करो, प्रभु का धाम सम्मुख है।

प्रश्न आता है कि यह सब कैसे करें? कोई आदमी डूब रहा हो, मौत उसके सम्मुख विकराल रूप लेकर आ जाए और अचानक वह व्यक्ति बच जाए – उपनिषदों में कहा है कि फिर उससे पूछना क्या अनुभव किया था

उसने? तो वह कहेगा कि आज ज़िन्दगी समाप्त थी, संसार छूट रहा था, अपने-पराये छूट रहे थे। लेकिन सबसे ज़्यादा ध्यान क्या आया? दुश्मन हँसेंगे और मेरा अपना जो प्यारा था – किसी का छोटा बेटा, किसी का मित्र, किसी को अपनी पत्नी, किसी को अपना पति, तो ज़्यादा जहाँ लगाव होगा आँखों के सामने वह दिखाई देता है संसार से जाते समय, उसे छोड़ना बड़ा मुश्किल होता है। उस समय व्यक्ति को अपना ध्यान नहीं मेरे बिना उसकी हालत क्या होगी–मेरे बच्चे की, मेरी पत्नी की? मेरे भाई की? बड़ी मुश्किल से जोड़-तोड़ करके दुकान बनाई थी, मकान बनाया था सुख नहीं ले पाया – वह याद आता है। मतलब यह है कि राग याद आयेगा; और राग के कारण व्यक्ति तड़पेगा और मौत दु:खदायी हो जाती है, जाना पीड़ा दायक हो जाता है क्योंकि राग होता है।

भगवान कहते हैं मुझ तक पहुँचना है तो राग को छोड़ो पहले। नहीं तो होगा क्या? कि उस राग के बन्धन के कारण तुम फिर संसार में उलझोगे, तुम्हें फिर संसार में वैसा ही चोला धारण करके आना पड़ेगा। बहुत-बहुत मोह रखा दुकान से, कर्म तो अच्छे नहीं थे, दोबारा शरीर धारण दुकान में आए, करके लेकिन मनुष्य बनकर नहीं, चूहे बनकर आ गए, अपनी दुकान की बोरियों को कुतर रहे हैं बैठे-बैठे और बेटा आयेगा, चूहे को पकड़कर पार्क में छोड़कर आयेगा, मारता वह भी नहीं है और कमाल यह है कि पिछले दरवाज़े से फिर आकर उसी बोरी पर बैठ जाता है।

राग जब तक छोड़ेंगे नहीं संसार छूटेगा नहीं और परमात्मा का धाम मिलेगा भी नहीं । कितना ज़ल्दी अपने को पका लो यह तुम्हारे ज्ञान पर और तुम्हारे वैराग्य पर निर्भर है, तुम्हारा वैराग्य सम्पूर्ण है। राग से विपरीत जब जाओगे तो वैराग्य होता है।

'ज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यम्'

ज्ञान चरम पर पहुँच गया तो वैराग्य का जन्म हुआ।

ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः बिना ज्ञान के मुक्ति होगी नहीं, मोक्ष मिलेगा ही तभी जब ज्ञान बढ़ता चला जायेगा।

इसके बाद कहा कि जब ज्ञान आया और वैराग्य जागा तो फिर भय हट जायेगा। इसीलिए आपने देखा है कि साधु-महात्मा लोगों की हाथ की मुद्रा

आशीर्वाद देते हुए रहती है-गुरुनानक देव जी, महात्मा बुद्ध – यह जो भाव-मुद्रा है हाथ की, आशीर्वाद वाली, यह क्या है? आशीर्वाद, मंगलकामना, अभय की मुद्रा कि हम सबका भय हट जाए, चिन्तायें हट जायें, दुःख हट जायें, सबका भय मुक्त हो जाएं दुःख हट जाए। क्योंकि भय है तो चिन्ता है, चिन्ता है तो फिर निराशा भी है – वह एक मुद्रा है, जिस मुद्रा का मतलब है अभयता दे रहे हैं, अभयता का वरदान दे रहे हैं, आशीर्वाद दे रहे हैं या दूसरे ढंग से कहो कि उनकी शरण में आने का मतलब है भय से रहित हो जाना, टूट जायेगा भय। वेदों में प्रार्थना है –

अभयं मित्रादभयममित्रात्

भगवान मुझे मित्र से अभय करना, बाद में कहा – *अमित्राद अभयम्* – फिर कहा शत्रु से अभय करना। कमाल की बात है यह! पहले यह नहीं कहा कि मुझे दुश्मनों से बड़ा भय है भगवान, तू मुझे उनसे बचा; कहा – नहीं, पहले तू मुझे मित्र से अभय कर; जो मेरे करीब, मेरा बनकर रहा, वह शत्रु बनकर खड़ा हो जाए तो ज़्यादा ख़तरनाक और ख़तरनाक उतना हो न हो हृदय को चोट बहुत लगती है; किं या तो इसका अपना होना ही ग़लत था, ढोंग था, हो सकता है पहले प्रच्छन्न रूप में शत्रु रहा हो; तो बहुत ज़्यादा चोट लगती है, सबसे ज़्यादा डर उन्हीं से है जो मित्र बनकर आस्तीन में बैठे हुए सर्प की तरह हैं, जिन्हें अपनी छाया में संभालकर रखा, शत्रु बनकर सामने खड़े हो गए।

लेकिन परमात्मा की शरण तो अपने आपे में अभयता देती है। भगवान के निकट होने का मतलब है भय से रहित हो जाना। इसीलिए महापुरुष कभी भी किसी से भयभीत नहीं हुए, निडर होकर चलते रहे। किसी का एक विरोधी हो जाए लोगों को उसी से डर लगने लग जाता है। लेकिन महापुरुषों के सामने तो ऐसा भी हुआ कि दुनियाभर के लोग विरोधी बनकर खड़े हो गए लेकिन फिर भी काँपे नहीं, डरे नहीं और एक समय ऐसा आया कि लोगों ने समझा उनको विरोध टूटते हुए देर नहीं लगी और सारे ही फिर प्यार के फूल लेकर के खड़े हो गए।

टैगोर ने अपनी एक कविता में कहा, बड़ी प्यारी कविता है कि फूल खुशबू बाँटता हुआ, हँसता-मुस्कुराता हुआ, आवाज़ देता है फल को – आ मेरे सामने प्रकट हो, मैं तुझे ढूँढ रहा हूँ, मैं आया तो इसीलिए हूँ कि तुझे निमन्त्रण

दे सकूँ। क्योंकि जब भी फल आयेगा तो पहले फूल आता है; फूल ने कहा कि तू आ, मैंने खुशबू रखी है तेरे लिए, कोमलता रखी है तेरे लिए, मिठास बसाई है तेरे लिए, तू आ।

कहते हैं कि जब ऐसा निमन्त्रण दिया तो फल की आवाज़ आई मैं तो आया हुआ हूँ, तेरे पास हूँ और तेरे ही दिल में छिपा हुआ बैठा हुआ हूँ। तूने इतना निमन्त्रण दिया तो तेरे हृदय में मैं हूँ और अब प्यार से प्रकट होने ही वाला हूँ और आप लोग जानते हैं फल हमेशा ही फूल के हृदय में बैठा हुआ होता है।

कहा जाता है कि इन्सान अपने जीवन में प्रसन्नता और मुस्कुराहट लेकर, अपने पास जो भी कुछ गुणों की सुगन्ध हो सकती है, उसे लुटाता चला जाए, फल की तरफ़ देखने की ज़रूरत नहीं है उसके हृदय में फल अपने आप प्रकट होगा और वह फल कोई और नहीं परमात्मा की कृपायें होती हैं – जो रस बनकर हृदय में प्रकट होती हैं। इसीलिए उसको निमन्त्रण देना भी नहीं पड़ेगा कि मैं तुझ तक कैसे पहुँचूँगा? अपने आपको खोओ तो वह सामने खड़ा हुआ है, उसे पाने में फिर कोई देर नहीं लगेगी। इसीलिए हमेशा यही हुआ है कि जब भी किसी महापुरुष ने किसी ग्रन्थ का बहाना लेकर के कुछ कहा, माध्यम ज़रूर वह होता है, बहाना ज़रूर वह होता है, लेकिन होता यही है कि उसके हृदय में भी जब वह फूल बनता है तो परमात्मा फल बनकर के प्रकट होता है और वाणी के माध्यम से दूसरों पर रस बनकर के बरसा करता है। यह तो उसका ढंग है अपने आपको प्रकट करने का।

लेकिन सीढ़ी यही है – पहले राग को तोड़ो और अगर राग को तोड़ने के लिए ऐसे समर्थ नहीं हो पा रहे फिर तो एक तरीका और है – विस्तार करो इसका, फैलाओ, इतना विस्तार करो, इतना अपने प्यार को बढ़ाओ कि फिर अपने तक नहीं, परिवार तक नहीं, मोहल्ले तक नहीं, अपने नगर तक नहीं, अपने राष्ट्र तक अपने प्यार को ले करके जाओ और हो सके तो सारे विश्व तक अपने प्यार को फैला दो। किसी व्यक्ति विशेष का नहीं; वस्तु विशेष का नहीं, परिवार का नहीं, विश्व को अपना परिवार मानकर के निकल पड़ो। विश्वरूप, विराट रूप, परमात्मा है – सामने वहाँ खड़ा मिलेगा आपको। सेवा करने के लिए आप लोग निकल पड़ो; परमात्मा की तरफ़ जाने के जितने-जितने

रास्ते हो सकते हैं उनमें सेवा बहुत बड़ा माध्यम है, प्यार बहुत अच्छा माध्यम है – *"ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होए"* कबीर साहब ने लिखा है यह।

मुझे याद आता है, पुराने पृष्ठों की तरफ़ जैसे-जैसे दृष्टि जाती है। इतिहास के पन्नों को पलट कर देखते हैं तो नाम उभरते हैं सामने कैसे-कैसे लोग थे? सुश्रुत-संहिता जिन्होंने संसार को दी—सुश्रुत महाराज—आयुर्वेद का महान् ग्रन्थ संसार को उन्होंने दिया और आयुर्वेद, मैडिकल-साइंस – कोई भी जानना चाहे, उधर की तरफ़ डुबकी लगाना चाहे तो चरक को पढ़ेगा, वागवट को पढ़ेगा, तो सुश्रुत को भी पढ़ाना होगा।

सुश्रुत अपना ग्रन्थ लिख गए-रोगों से लोग कैसे बचें? बीमारियां क्या क्या हैं? उनकी दवाईयाँ क्या हैं? कौन-सी जड़ी-बूटी किस रोग को दूर करेगी – यह सारा ज्ञान उनको था। एक बार ऐसी स्थिति आई, उनका मन करने लगा कि तुमने संग्रह करके अपने पास रख लिया, लोगों को चलो दे भी दिया, लाभ भी हो गया लेकिन पूरा आनन्द इसका अग़र उठाना है तो दुनिया के बीच उतरना पड़ेगा और वह लोगों के बीच गए, सेवा करनी शुरू की, हर जगह सेवा करें, कोढ़ियों का कोढ़, रोगियों का रोग मिटायें, रोते हुओं को खुशियाँ बाँटे, कराहते हुए लोगों के अन्दर ऐसी दवाई दी जैसे किसी ने गुद्‌गुदी कर दी हो, प्रसन्नता बाँटते घूम रहे थे।

नारदजी उधर से गुज़र रहे थे, सुश्रुत महाराज के पास आए, प्यार से उनकी तरफ़ देखा, देखकर बोले – भगवान का आनन्द लूट रहे हो, आनन्द बाँट रहे हो, आनन्द में जी रहे हो?

सुश्रुत ने बात बदलने के लिए कहा – नारदजी आपके बगल में यह पोटली क्या है?

नारदजी कहने लगे परमात्मा के प्यारे भक्तों के नाम हैं इसमें।

भगवान के प्यारे भक्त कौन से?

नारदजी बोले – जो भगवान को याद करते हैं, उनका नाम है इसमें; और वह नाम दिखाने के लिए पोथी पकड़ाई सुश्रुत महाराज को।

सुश्रुत महाराज ने अपनी दवाईयां नीचे रखीं; सेवा में जो हाथ अभी लगे हुए थे उनको धोया। नारद जी ने कहा – तुम्हारे हाथ तो पवित्र हैं, धोने की

आवश्यकता नहीं। सुश्रुत महाराज ने पोथी पकड़ी, देखा, देखने के बाद पोथी वापिस की, सेवा में लगने लगे।

नारद जी बोले – 'देख लिया न, तुम्हारा नाम कहीं नहीं है।' सुश्रुत मुस्कुराते हुए फिर सेवा में लग गए।

रात-दिन सेवा में लगे हुए हैं सुश्रुत, परमात्मा के प्यार में हर समय डूबे हुए हैं और यही कहते हैं कि मैं नहीं किसी को ठीक करता, उसी ने दवाईयाँ दी हैं, अपनी-अपनी ग़लतियों से लोगों ने अपने शरीर के अन्दर रोग बसाए हैं, मेरा परमात्मा दयालु है, उसने जगह-जगह यह औषधियां खड़ी की हैं लोगों का दुःख दूर करने के लिए; और वही ज्ञान भी कराता है, मैं कुछ भी नहीं, ज्ञान वही करा रहा है-तो सेवा करते चले गए।

दो-चार महीने के बाद नारदजी फिर आए और आते ही कहने लगे – तुम्हारी सेवा तो बढ़ती जा रही है, तुम्हारा प्यार बढ़ता जा रहा है। सुश्रुत कहने लगे इसमें मेरा स्वार्थ है। नारदजी ने पूछा – 'कौन-सा स्वार्थ?' बोले उसका आनन्द लूटने का रास्ता यही है, सेवा करते-करते अपने परमात्मा का आनन्द लूटता हूँ।

नारदजी ने कहा – 'पोथी लेकर आया हूँ, पढ़ोगे नहीं?'

नारद जी ने जैसे ही कहा- 'पढ़ोगे नहीं' तो सुश्रुत पूछते हैं – 'वही वाली पोथी है या दूसरी लाए हो?' बोले – 'इस बार दूसरी लाया हूँ, पहली वाली पोथी वह थी जिसमें उनका नाम था जो भगवान को याद करते हैं।' इस बार वह पोथी लाया हूँ जिनको भगवान याद करते हैं। पोथी पकड़ाई, सुश्रुत देखना नहीं चाहते।

नारद जी ने खुद ही कह दिया – 'वैद्यराज, सुश्रुत महाराज, इस पोथी में पहला नाम आपका ही लिखा हुआ है। परमात्मा को, रब् को, मालिक को, याद करने वाली दुनिया होगी उनमें से चुने हुए लोगों का नाम भगवान की लिस्ट में आया होगा लेकिन जिनको भगवान याद करता है वह तो तुम हो।' उसके प्रति इतना प्यार जगाओ कि फिर वह भी तुम्हें प्यार करना शुरू कर दे।

कहते हैं न कि भगवान मैं पकडूँ तो बात नहीं बनेगी, मैं तुम्हें याद करूँ तो इतनी बात नहीं बनेगी, बात तब बनेगी जब तुम मुझे याद करो और मेरा हाथ पकड़ लो, उस दिन मेरा कल्याण हो जायेगा।

इसीलिए रास्ता यही है। या तो राग रहे नहीं और अग़र है तो उसका विस्तार करके उसको सच्चा-प्यार बनाओ – परमात्मा के प्रति, उसकी क़ायनात के प्रति, उसकी सृष्टि के प्रति। सेवा में उतर पड़ो, भय को तोड़ दो। क्योंकि जब परमात्मा की कृपा सम्मुख आयेगी फिर कोई भय रहेगा भी नहीं, उसका होने के बाद भी यह विशेषता तो अपने आप जागती है। एक ऐसी व्यवस्था बन जाती है कि व्यक्ति को किसी से भी डर नहीं लगता। महात्मा बुद्ध अगर अंगुलिमाल डाकू की तरफ़ चल पड़े और उनको डर नहीं लगा तो किस कारण? हृदय में प्रभु का रूप प्रकट हो गया, अब कहीं भय नहीं लगता। जिधर जायेगा उधर उसका ही स्वरूप नज़र आता है।

तो कहा कि – ज्ञान से, तप से जिसने अपने – आपको पकाया, सेवा करते करते उसके प्यार में अपने को जोड़ दिया, न भय देता किसी को, न भय में जीता, अभयता में रहता है और प्रेम बाँटता है।

आप देखिए कि जो लोग दुनिया में आतंक फैलाते हैं, डर पैदा करते हैं वह सोचते हैं कि हम तब तक ही प्रभावशाली हैं जब तक हमारा भय दुनिया में क़ायम है और मज़े की बात यह है कि भय बाँटने वाले लोग खुद इतने भयभीत होते हैं, हर समय चौकन्ने रहते हैं। भय बाँटोगे तो खुद भी भयभीत रहोगे।

निर्भय रहो, प्यार बाँटो और खुद भी निर्भय रहो क्योंकि परमात्मा निर्भय है, अभय है और उसकी शरण अभयता प्रदान करती है।

किसी भी तरह से पढ़ लीजिए, दूसरी परम्परा से पढ़िये-एक "ओंकार सत नाम" पढ़ते-पढ़ते एक शब्द आयेगा "निर्भोओ" जो भय रहित है, संसार का कर्त्ता, संसार का संचालन करने वाला, संसार का मालिक, जो एक ओंकार है वह निर्भय है, भय-रहित है, उसमें भय का स्थान नहीं है, अभय है वह, उसकी शरण में आने से भय मिटता है।

राग को छोड़कर, भय को हटाकर, क्रोध से ऊपर उठकर, ज्ञान और तपस्या से अपने को पकाकर जो पवित्र हो गए, भगवान कहते हैं वह मेरी शरण में आए, मुझे प्राप्त हो गए, वह मेरे धाम तक पहुँचने में सफल हो गए। इसीलिए उधर जाने की अग़र इच्छा है तो कोशिश कीजिए ज्ञान और तप से अपने-आपको पकाने की।

प्रश्न उठेगा कि यह ज्ञान और तप है क्या? सिर्फ ज्ञान कह दिया जाता तो भी बात तो हो ही जाती, ज्ञान के माध्यम से भगवान को पाया जा सकता है। लेकिन भगवान कहते हैं ज्ञान ही नहीं, ज्ञान के साथ तप चाहिए।

पुराने समय में बड़ा ध्यान दिया जाता था – गुरु, शिष्य को ज्ञान देने से पहले तप करना सिखाते थे। तप ज़्यादा, ज्ञान थोड़ा – तो वह ज्ञान टिकता था शिष्य के अन्दर, शिष्य अपने आपे में अनोखा बनता जाता था, पकता जाता था।

उपनिषदों में तो यहाँ तक वर्णन आता है कि गुरु के सम्मुख शिष्य गया और गुरु ने उसको कहा – ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आए हो तो जाओ बारह वर्षों तक गऊओं को चराओ फिर आना हमारे पास।

आज तो अगर यह कह दिया जाए कि बारह दिन तक तुम्हें गऊओं को चराना है, वन में जाकर रहना है, आदमी कहेगा बारह दिन की बात छोड़ो मैं तो बारह घण्टे क्या, बारह मिनट के लिए भी जाने को तैयार नहीं हूँ। ऐसे ही कुछ बताना है तो बताओ – इधर से स्विच दबाओ और उधर से कुछ ऑन हो जाए, कोई चीज़ एक्टीवेट हो जाए, ऐसी कुछ बात कर सकते हो तो करो। इसका परिणाम यह भी है गुरु का नाम लेकर दिखावा करने वालों की दुकानें सज़ी हुई हैं। थोड़ा–सा, दो–चार से सुनकर के आगे कह दिया – अनुभूतियाँ नहीं आती।

बड़े मज़े की बात यह है कि जिनके पास परमात्मा का स्रोत अन्दर से खुल जाए तो ऐसा ही होगा कि कुएं में से जितना पानी निकालते जाओगे कुआँ निर्मल होता जाएगा। जल और सुन्दर होता जाएगा, कुएं में कमी नहीं आती। तो जिसका स्रोत परमात्मा से जुड़ गया उसके अन्दर से तो ज्ञान प्रकट होता चला जायेगा। वह बाँटता जायेगा और जितना भी बाँटेगा उतना ही ज्ञान अन्दर से प्रकट होता चला जायेगा; और जहाँ स्रोत नहीं जुड़ा हुआ वहाँ यह है कि बस फिर एक पुस्तक को लेकर थोड़े ही दिन चर्चा करने के बाद चर्चा समाप्त। फिर वहाँ के बाद आगे जाना पड़ेगा, पहचान है यह। किसी कवि के अन्दर थोड़े दिनों तक एक प्रतिभा जागृत होती है – नई–नई कविताएं प्रकट होती हैं। उसके बाद कवित्व मरने लगता है; लेकिन जो परमतत्व से जुड़ जाता है, उसके अन्दर एक अंश में भी जुड़ गया, थोड़ा–सा भी स्वाद वहाँ से मिल गया

तो आप देखिए, उम्र उसकी कितनी भी हो जाए उसके अन्दर की कविता निरन्तर जन्म लेती रहेगी; और व्यक्ति कहता ही रहेगा-उसको मनाने के लिए, उसकी मनुहार करने के लिए अभी और जो गीत मैंने लिखना था, गाना था, कहना था वह तो मैं कह ही नहीं पाया, अभी तो और बहुत कुछ बाकी है।

इसीलिए टैगोर ने भी अन्तिम-दिनों में कहा था, जब उनसे पूछा गया कि इतनी कविताऐं आपने लिखीं, तो जो कहना था कह चुके क्या? उन्होंने कहा कि अभी वह गीत प्रकट नहीं हुआ जिसको गाने के बाद मुझे सम्पूर्ण सन्तुष्टि मिल जाती। अभी तो बहुत कुछ कहना बाक़ी है, अभी वह चीज़ तो मैं कह ही नहीं पाया जिसे कहने से मैं तृप्त होता क्योंकि अभी तो बहुत कुछ अनकहा अन्दर है। न जाने कितने गीत अन्दर से प्रकट होते हैं।

मीरा, गाती चली गईं, कितने गीत सम्भाले गए, कितने गीत उनके लोगों ने कहीं लिख लिए और कितने ऐसे ही रहे जो हवा में उड़कर ही रह गए।

पुरन्दर दास, दक्षिण भारत के महान् सन्त हुए, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि बीस हज़ार गीत उन्होंने कहे; और कुछ तो कहते हैं कि बीस हज़ार तो अभी गणना है उससे भी ज़्यादा न जाने कितने गीत उन्होंने कहे होंगे परमात्मा की महिमा में, उसके ज्ञान को बाँटने में और लोगों को देखो कि सिर्फ़ बीस हज़ार गीत ही उनके सुरक्षित कर पाए। सम्भालने वाले नहीं सम्भाल पाए लेकिन उन्होंने बाँटने में कसर नहीं छोड़ी, आता गया अपने आप। तो फिर जब उससे, परमात्मा से, सम्बन्ध जुड़ जाता है, न जाने कहाँ-कहाँ से कितना कुछ प्रकट होता जाता है।

जरथ्रुस्त – पारसियों के धर्म गुरु, गुफा में साधना करते-करते जब परमतत्व से जुड़ गए, गुफा से बाहर निकले, सूर्य की तरफ़ देखकर के कहा – 'तेरा तेजस्वी रूप अब इधर जागृत हो गया, जैसे तू बाँटते हुए हर्षित होता है आज मैं भी बाँटने के लिए चला हूँ। मधुमक्खियों के पास जब शहद इकट्ठा हो जाता है उसमें से बूँद-बूँद करके टपकता है। निमन्त्रण देता है कि आओ, ले लो हमने इकट्ठा कर लिया; अब हमारे पास भी शहद इकट्ठा हो गया, हम भी आज बाँटने निकल पड़े।' उन्हें आनन्द आता है बाँटकर, रोक लेने से माधुर्य ख़त्म हो जाता है। इसका तरीका यही है – अपने को जोड़ना शुरू कीजिए उस परमपिता परमात्मा से, तप से अपने को तपाएं और जब तार जुड़

जायेंगे तो फिर एक बात होगी, पॉवर-हाऊस से क्नैक्शन जुड़ते ही तारों के अन्दर से पॉवर प्रवाहित होते-होते अपना चमत्कार दिखाएगी – कहीं प्रकाश बनेगी, कहीं यन्त्र चलाएगी, कहीं पंखा बनकर के हवा करेगी और कहीं ऐयर कण्डीशन वाला रूप धारण करके एयर कण्डीशन में से ठण्डी हवाऐं देगी। अब यह आपके ऊपर है – वहाँ से तो ऊर्जा-शक्ति बहते-बहते आप तक आ रही है, अब आप पर निर्भर है कि उसका उपयोग आप कैसे करोगे?

पॉवर हाउस परमात्मा है, हम सब उपकरण हैं, अपने आपको उससे जोड़ दें; जब तक वहाँ से नहीं जोड़ेंगे और वहाँ का ऊर्जा-प्रवाह यहाँ तक नहीं पहुँचेगा तब तक यन्त्र बिल्कुल बेकार है। पॉवर न हो, विद्युत् न हो, तो यन्त्र रखे रह जायेंगे और अग़र इनका चमत्कार देखना हो तो फिर वहाँ से क्नैक्शन जोड़ना बहुत ज़रूरी है। अग़र यह देखना हो कि इस शरीर में क्या-क्या है? हम कहाँ तक पहुँच सकते हैं? हमारे अन्दर कितनी विशेषतायें आ सकती हैं? हम कितनी ऊँचाईयाँ छू सकते हैं? तो थोड़ी ऊर्जा-शक्ति से काम चलने वाला नहीं है। परम ऊर्जा से सम्बन्ध जोड़कर के देखिए और फिर आप देखना कि कितने-कितने विशाल रूप आपके अन्दर प्रकट होंगे। कितनी महानतायें दिखाई देने लग जायेंगी। इसीलिए महापुरुषों ने किया क्या–यह जो समाधि लगाने के लिए बैठते थे, किसलिए बैठते थे? वहाँ से क्नैक्शन जोड़ते थे, बिना तार का तार होता था वह; बिना किसी उपग्रह चैनल के सम्बन्ध जोड़ा हुआ था। बीच में कोई ऐसी चीज़ दिखाई नहीं दे रही कि सम्बन्ध कैसे जुड़ा हुआ है? लेकिन वहाँ से ऊर्जा आ रही है और इधर समाहित हो रही है। ज्ञान, तप से इन लोगों ने अपने आपको ऊँचा उठाया, तब बाँटा। भगवान आगे फिर कहते हैं –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

अर्जुन, इस संसार में जो व्यक्ति जैसा भाव लेकर मेरे पास आता है, मैं फिर उसके सामने वैसे ही रूप में प्रकट होता हूँ।

मतलब यह है कि परमात्मा को आप जिस भी भाव से भजोगे; वैसा ही स्वरूप वह प्रकट करेगा अपना। आप सोचिए कि भगवान के जो चित्र बनाए गए हैं, दुनिया भर में प्रिन्ट हुए सारे चित्रों को एक जगह रख लेना, सारे कुछ न कुछ भिन्न दिखाई देंगे; लेकिन फिर भी सब चित्रों में कृष्ण ही दिखाई देगा।

शक्लें थोड़ी-थोड़ी अलग़-सी दिखाई देगी क्योंकि बनाने में कुछ तो अन्तर हो जाता है, पर एक चमत्कार वाली बात है – आप एक स्वरूप को सामने रखकर लगातार ध्यान करना, उसी को पूजना, उसी को जपना, वही कल्पना अपने सम्मुख रखना और एक दिन वह बात घट जायेगी। चलते-चलते जब गहराई तक तार जुड़ जायेंगे, तब प्रत्यक्ष होगा प्रभु का। तो जो कुछ आप कल्पना लेकर, जो चित्र लेकर आप बैठे थे भगवान फिर अपने स्वरूप को उसी रूप में प्रकट करेंगे, वैसे ही सम्मुख आ जायेंगे क्योंकि तुमने जिस भाव से ज़पा भगवान ने उसी भाव से सामने प्रकट कर दिया। तुम अग़र कोई और आकार नहीं सामने रखना चाहते, एक ज्योति स्वरूप में ही याद करना चाहते हो, प्रकाशपुंज के रूप में ही याद करना चाहते हो, एक नूर के रूप में याद करना चाहते हो फिर वह नूर के रूप में ही सामने प्रकट होगा।

और अग़र कोई आँखों से रहित है तो फिर क्या होगा? वह जो उसका स्पर्श या जो वह अनुभूतियाँ करता रहा है – मेरा प्रभु एक मीठा स्पर्श है – वैसा ही रूप उसके अन्दर प्रकट होगा। ध्यान करते-करते आखिर में वैसा रूप ले लेगा भगवान। इसीलिए यहाँ सारा ही भाव का सौदा है। जिस रूप में तुम पूजते हो अपने अन्दर वही एक रूप बसाते-बसाते आख़िर तक उसी को महसूस करते चल पड़ो। आख़िर में वैसा ही अनुभव में आयेगा।

सूरदास ने कृष्ण को भजा, उनके लिए गीत गाए, अपने कृष्ण को इस तरह से महसूस किया कि जैसे सम्मुख है और गीत गाने शुरू किए-

'अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल,
काम क्रोध का पहन चोलना गल विषयन की माल।'

– कि हे कृष्ण, मैं दुनिया में बहुत नाचता घूमा हूँ – काम, क्रोध का चोला मैंने पहना, गले में विषयों की माला पहनी और ऐसा रूप धारण करके दुनिया में नाचता घूमा हूँ कि थक गया हूँ। कुछ ऐसी कृपा हो जाए गोपाल, अब तेरे प्यार में नाचूँ और तेरे प्यार में ही गाऊँ, तुझे ही मनाऊँ, और तुझे ही रिझाऊँ और तेरा हो जाऊँ, ऐसी कोई कृपा कर दे मेरे ऊपर।

यहाँ सूरदास का समर्पण दिखाई देता है लेकिन सूरदास ऐसा ध्यान करते-करते भी अपने श्याम को एक बालक के रूप में ही अनुभव करते रहे, उनके कृष्ण कभी बड़े नहीं हुए।

बहुत लोग कृष्ण का वही रूप देखना चाहते हैं और उसके पीछे तर्क भी है – तर्क यह है कि लोग कहते हैं कि अब भी कृष्ण, बाल गोपाल बनकर घूम रहे हैं। कभी भी किसी बच्चे को देखना, उसके अन्दर परमात्मा के दर्शन होते हैं क्योंकि उसके अन्दर पाप की छाया होती ही नहीं, वह कृष्ण का ही रूप है। बड़ा हुआ, पाप का संस्कार बढ़ता चला गया। सूरदास के कृष्ण बाल रूप में हैं, वे बालकृष्ण हैं और उसी रूप में आकर के सामने बचाते भी हैं।

लेकिन यहाँ सूरदास पर नहीं कहना-कृष्ण की भक्ति करने वाले बहुत-बहुत लोग हुए-मीरा भी हैं, सूरदास भी हैं, गीता-गोविन्द को लिखने वाले जयदेव भी अनोखी शैली में वर्णन करते हैं, उसके पहले के बहुत सारे कवि लोग, इधर अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते चलता-चलता ब्रज के अन्दर आकर, बैठकर कृष्ण के गीत गा-गाकर खुश होने वाला-रसख़ान और ऐसी महिलाऐं भी-मुस्लिम महिलायें, कृष्ण के स्वरूप को धारण करके गीत लिखती रहीं।

असल में तो कोई भी हो, यहाँ किसी हिन्दु-मुस्लमान का तो सवाल ही नहीं। यह रंग ही ऐसा है कि जिसके अन्दर भी उतर गया वह और सारे रंग भूल जाता है, कृष्ण रंग में रंग जाता है। जिस रूप को लेकर के आप पूजोगे अपने भगवान को उसी रूप में वह अपने-आपको प्रकट करेगा।

लेकिन एक बात ध्यान रखना, कृष्ण का सम्पूर्ण-स्वरूप जब तक नहीं देखोगे, ध्यान में नहीं लाओगे, तो फिर षोड्शकला सम्पूर्ण कृष्ण को हम कैसे पूज पायेंगे? फिर गीता वाला कृष्ण कैसे सम्मुख आयेगा? गीता वाला कृष्ण तो बालकृष्ण नहीं है।

देखिए, रामजी ने रामायण का जो स्वरूप दिया है तो वहाँ पर कोई उपदेश रामजी ने नहीं दिया, इस तरह से गीता नहीं दी। यद्यपि हैं तो वह भी नारायण के ही अवतार, लेकिन वहाँ मतलब है कि उपदेश कहकर नहीं, जी कर दिखाना है। इसीलिए वहाँ जी कर दिखाया है। यहाँ कृष्ण, लीलाओं का रूप भी संसार के सामने रखते हैं लेकिन साथ में गीता का अमृत भी देते हैं जिससे कि यह बढ़ता जाए, बीज दे दिए गए कि अब इन बीजों के द्वारा अपने-अपने आँगन में तुम फूलों की खेती कर सकते हो, उसकी सुगन्ध में बसो, उसकी सुगन्ध में जियो, वह आनन्द लो, वह महक, वह कोमलता, वह खिलखिलाहट, वह प्रसन्नता तुम्हारे जीवन में उतर सके। इसीलिए भगवान

कृष्ण ने गीता के माध्यम से फूलों के बीज दिए हैं। गीता को गीत की तरह दिया और गीत की तरह दिया तो यह भी एक चमत्कार है।

ज़रा सोचिए कि संसार भर में, भारत-देश ही ऐसा रहा, जहाँ ज्ञान और विज्ञान भी अग़र प्रकट किया गया तो कविता के माध्यम से-आयुर्वेद के ग्रन्थ लिखे गए तो वह भी छन्दों में हैं; गणित भी लिखा गया तो वह भी छन्द में; ज्योतिष-शास्त्र वह भी कविता में है; वेद, कविता में हैं; उपनिषद् कविता में हैं; भगवान कृष्ण की गीता-वह कविता ही नहीं, गीत है, कमाल यह है कि गीत वह जो गाया जाए, जो गाया गया, गीता का मतलब है – 'जो गाई गई।' कविता को जब स्वर मिलते हैं और स्वर-संगम बनकर के जब वह चीज़ उतरती है तो फिर कानों के रास्ते आकर के फिर हृदय में ठहरती है; और हृदय में आकर जब ठहरती है तो वहाँ अपने प्यार के दर्शन कराती है। इसीलिए यह गीत ही नहीं, यह संगीत है, स्वर लहरियाँ ही नहीं, जीवन-जागृति का माध्यम है।

इसीलिए कृष्ण समझाते हैं कि जो रूप लेकर मेरे सम्मुख आओगे, जैसी मेरी भावना बनाओगे, मैं वेसा ही तुम्हारे सामने अपने – आपको प्रकट करूँगा, वैसा ही तुम्हारे सम्मुख आ जाऊँगा; तुम अपना स्वरूप मेरे तक पहुँचाओ, मतलब, मेरे हो जाओ। तुम्हारा, मेरा होना ज़रूरी है फिर मैं तो तुम्हारा होने में देर तो लगाऊँगा नहीं, मैं तो तुम्हारा हूँ ही।

गीता के इस चतुर्थ–अध्याय भगवान ने हमें जीवन का उत्थान करने के लिए मार्गदर्शन दिया। अर्जुन को माध्यम बनाकर भगवान फिर आगे उपदेश करते हैं :–

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्त्तारमव्ययम् ।।

भगवान कहते हैं कि चारों वर्णों की सृष्टि, सृजना, रचना, गुण, कर्म, स्वभाव को देखते हुए की। *तस्य कर्तारमपि* – उसके कर्त्ता होने के बाद भी, निर्माण करने के बाद भी, अर्थात् जो मैंने संरचना की, निर्माण किया उस समस्त विभाग का निर्माण कर्त्ता होने के बाद भी *अकर्त्तारमव्ययम्*–मैं कर्त्ता नहीं हूँ। अर्जुन से कह रहे हैं कि हे अर्जुन! गुण, कर्म, स्वभाव को ध्यान में रखते

हुए, प्रत्येक व्यक्ति के अलग-अलग स्वभाव, उसके गुण, उसके कर्मों को ध्यान में रखकर चार तरह के वर्णों की संरचना मैंने की। *कर्त्तारमपि विद्धि:* तुम मुझे इस सब का कर्ता जानो; लेकिन यह भी जानो कि यह सब निर्माण करने के बाद भी *अकर्त्तारमव्ययम्* – मैं अकर्त्ता हूँ, अव्यय हूँ, कर्म करने के बाद भी कर्म से ऊपर हूँ।

भगवान समझा रहे हैं कि संसार के कर्मों को करने के बाद भी कर्म से ऊपर उठे रहो। कर्म का संग, कर्म की आसक्ति, अपने अन्त:करण पर नहीं आने दो। यह भी बताया कि अलग-अलग स्वभाव को ध्यान में रखकर मैंने चार वर्णों की संरचना की है। वेदों को यदि हम पढ़ें तो वहाँ उपदेश है –

ब्राह्मोऽस्य मुखम् आसीत् बाहू राजन्य: कृत: ।
उरु तदस्य यद् वैश्य: पद्‌भ्याम् शुद्रोऽजायत ।।

जो ब्रह्म है उसके मुख से जो उत्पन्न हुए हैं वह ब्राह्मण हैं; *बाहू राजन्य: कृत:* – बल वाले भाग से अर्थात् भुजाओं से क्षत्रियों की रचना हुई, *उरु तदस्य यद् वैश्य:* – उरु वाला भाग, अर्थात् पेट से-जहाँ भोजन आता है और सबको बँट जाता है रस बनकर, वह बाँटने वाला विभाग ध्यान में रखकर वैश्यों की, वणिक लोगों की, संरचना हुई। *पद्‌भ्याम् शुद्रोऽजायत* – और जिस पर सारा शरीर ठहरा हुआ है, वह जो स्तम्भ है शरीर का, उस दृढ़ता को ध्यान में रखकर, उस सहनशीलता को ध्यान में रखकर भगवान ने अपने स्तम्भ से अर्थात् पांव से उस शक्ति को ध्यान में रखकर चौथे वर्ण की संरचना की–शूद्र वर्ण की।

अब यहाँ यह प्रश्न नहीं है कि एक वर्ग पाँव वाला है, तो दूसरा वर्ग सिर वाला है। याद रखिये अगर पाँव की उंगली में चोट लगेगी, समाज का चौथा वर्ग रोयेगा, मतलब तड़पेगा, दर्द वहाँ होगा, तो आसूँ इस ब्राह्मण के बहेंगे – ऊपर आँख से आँसू बहते हैं न? समाज की समस्त पीड़ा को समझने वाला कोई और नहीं है–ज्ञानी तत्व है।

यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का मतलब भी ऐसे न समझकर ऐसे समझिये-समाज का एक वर्ग वह है जो ज्ञान की उपासना करता है – बुद्धि वाले लोग, जो अज्ञान से लड़ रहे हैं, चाहे वह वैज्ञानिक हैं, शिक्षक लोग

हैं, समाज को शिक्षा देने वाले लोग हैं, जो बुद्धि के आधार पर जी रहे हैं, वह सब मस्तिष्क वाला कार्य करने वाले लोग – एक वर्ग में आ जायेंगे – ब्राह्मण-वर्ग में हैं।

दूसरा वर्ग वह है – जो इन सबकी रक्षा करता है – सिर पर चोट पड़े, कोई डण्डा मारना चाहे तो हाथ एकदम बचाने के लिए आगे आ जाता है। नीचे की तरफ चोट लगेगी तो हाथ एकदम वहीं पहुँचेगा। शरीर के किसी भी अंग में पीड़ा होगी, कौन तड़प रहा है? किसके अन्दर दर्द है-इसकी जानकारी ज्ञानी कर रहा है तालमेल है इस बलशाली से कि तुम समाज को सुरक्षित रखो, अन्याय से बचाओ।

और जो समाज से कमा रहा है अर्थात् वैश्य वर्ग तीसरा वर्ग – उससे कहा गया है कि तू इकट्ठा कर लेकिन सब में बाँट।

चौथा वर्ग वह है, उसे सर्वहारा वर्ग नहीं कहिए, सबसे हारा हुआ वर्ग नहीं है वह, न ही वह शोषित है, न वह दलित है – वह आधार है जिस पर पूरा शरीर टिका हुआ है, पूरा समाज टिका हुआ है। इसीलिए जब भी प्रणाम करना होगा, इस सिर को प्रणाम नहीं किया जाता बल्कि सिर को उठाकर के उसी के चरणों में झुकाया जाता है – यह हमारी परम्परायें हैं।

दुर्भाग्य यह रहा कि समाज को तोड़ दिया गया। भगवान ने तो मनुष्य के लिए ऐसी कल्पना नहीं की थी, कभी सोचा भी नहीं होगा कि इन्सान इस विभाग का इस तरह से बँटवारा करेगा कि सारे समाज को तोड़ेगा।

सोचिए, सर्दियों के दिन हों और आप सोने लगे हैं। तो सोते समय जब आपको सर्दी लगती है और आप कम्बल ओढ़ते हैं तो सबसे पहले कम्बल क्या सिर पर डालते हैं ? – सबसे पहले आप पाँव पर डालते हैं। पाँव के बाद लालाजी बोलते हैं कि थोड़ा ज़रा-सा हमें भी कुछ कम्बल दो, तो पेट की तरफ आयेगा। वक्ष तक ढक लिया; भुजाऐं देख लेती हैं सब पर कम्बल आ गया है उसके बाद वह भी अन्दर दुबक जाती हैं। लेकिन देखिए तपस्या करने वाला ब्राह्मण फिर भी कम्बल के बाहर रहता है – यह सिर, यह चेहरा, यह कभी भी इस कोशिश में नहीं रहता कि मुझे मिले।

जिस समाज का बुद्धिजीवी अपनी सुख-सुविधाऐं त्यागकर समाज के सब वर्गों का कल्याण करने के लिए तत्पर रहे; और जिस समाज का क्षत्रिय अन्याय को मिटाने के लिए सदैव कमर कस के रहे; और जिसका पूँजी-वादी व्यक्ति पूँजी को अपने लिए इकट्‌ठे न करके समाज के सब लोगों को बाँटना शुरू कर दे और जहाँ कोई कामचोर न हो, कर्म से जी न चुराता हो, समाज का आधार बनकर सबसे आगे आए, कहा जाता है ऐसा जो समाज है वह ब्रह्म का रूप है, ब्रह्म का शरीर है। यह भगवान का सम्पूर्ण स्वरूप बनता है। समाज को अग़र भगवान का स्वरूप बनाना चाहते हो तो समाज का यह रूप धारण करो और अग़र अलग़-अलग़ रूप में आ गए तो समाज बँटेगा, समस्याऐं खड़ी होंगी।

और कमाल यह है कि समाज जब भी बँटा है पाँच चीज़ें सामने आईं -भाषा के नाम पर बँटा है, वेश-भूषा के नाम पर बँटा है – भोजन-खानपान, के नाम पर बँटा है, भजन का प्रकार और एक और चीज़ – भाव, विचार-दर्शन, फिलोसोफी – उनके हमारे विचार नहीं मिलते इसीलिए हम एक नहीं हो सकते; इनका हमारा खानपान नहीं मिलता इसीलिए हम एक नहीं हो सकते; इनकी हमारी भाषा एक नहीं है इसीलिए हम एक नहीं हो सकते; इनका पहनावा और हमारा पहनावा मेल नहीं खाता इसीलिए हम एक नहीं हो सकते – यह लोग कारण देते हैं। लेकिन यहाँ केवल एक ही श्लोक को लेकर हम व्याख्या नहीं कर पायेंगे क्योंकि भगवान कृष्ण की ज्ञान-धारा विस्तृत है, उसका कहीं अन्त नहीं है, इसीलिए हमें आगे बढ़ना चाहिए।

भगवान ने कहा कि मैंने स्वभाव को भी ध्यान में रखकर चारों वर्णों की रचना करी – कुछ लोग वह हैं जो केवल ज्ञान के ही उपासक हैं, ज्ञानी लोग हैं, उनकी रुचि फ़ौज में जाने की नहीं होगी, शिक्षा के क्षेत्र में जाने की होगी। इसीलिए उनको शिक्षा के क्षेत्र में ही भेजा जायेगा। कुछ लोग वह हैं कि जो शिक्षा वाले क्षेत्र में नहीं जा सकते, वह चाहते हैं कुछ करें हम। तीसरी तरह के वह लोग हैं जिनके अन्दर कमाने की इच्छा है, कुछ इकट्‌ठा करें हम- एक आदमी हमेशा यह कहेगा – 'ज्ञान ही सब कुछ है, जानना बड़ी चीज़ है।' दूसरा आदमी कहेगा – 'ज्ञानवान सब ताक़त वाले के आगे दबते हैं।' तीसरी तरह का व्यक्ति कहेगा – 'नहीं पैसे वाले के सामने यह सब दबते हैं।' चौथा

व्यक्ति कहेगा कि जो कर्म वाला आदमी है उसके आगे यह सब हाथ बाँधे खड़े हुए हैं क्योंकि वही तो कमाकर देगा इनको। अब यह सब के सब अलग-अलग भावना वाले लोग। सब के कर्मों को ध्यान में रखकर नाम दे दिए गए – यह सिर्फ नामकरण हुआ है।

लेकिन एक चीज़ आपको और बताऊँ – हर आदमी ब्राह्मण भी है, क्षत्रिय भी है, वैश्य भी है और शूद्र भी है। अपने हिसाब का जो भी थोड़ा बहुत ज्ञान व्यक्ति रखता है, उस हिसाब से वह ब्राह्मण है; अपनी रक्षा के लिए वह जो भी कर्म करता है उस हिसाब से वह क्षत्रिय है; पूँजी कमाता है, अपने लिए ख़र्च करता है, परिवार के लिए ख़र्च करता है, कुछ दान-पुण्य भी करता है, तो वहाँ वह वैश्य है; अपनी शुद्धि का ध्यान करेगा, पुरुषार्थ करेगा, अपना आधार स्वयं बनेगा, परिश्रमी होगा तो यहाँ वह शुद्र भी है। तो एक ही व्यक्ति में चारों चीज़ें हैं-चारों चीज़ आपके शरीर में भी हैं, चारों चीज़ें आपके समाज में भी हैं और अगर देखा जाए तो यह चारों मिलाकर के ब्रह्म का स्वरूप बनता है।

इसीलिए एक परम्परा रखी गई- यह जो हमारी भौंहे हैं इससे ऊपर का जितना भाग है यह ब्रह्मपुरी है। ब्रह्म से मिलने का स्थान ब्रह्मरन्ध्र है, लेकिन इस भौंह से लेकर ठोडी से ऊपर वाला भाग यह देवपुरी है-ब्राह्मण समाज का स्थान है यह। सारी ज्ञानेन्द्रियाँ यहीं पर हैं – सब यहीं बैठे हुए हैं, ज्ञान कराने वाली आँख भी यहीं है, रूप का दर्शन करा रही है; स्वाद चखने वाली जीभ जो स्वाद की जानकारी देती है – यह सारा विभाग यहीं है; सुगन्ध की जानकारी देने वाले नाक का भाग भी यहीं है, शब्दों की जानकारी देने वाले भी यहीं हैं। इसीलिए भौहें से लेकर ठोडी तक, इतने में ही इन सबको बैठा दिया गया है। इसीलिए जब भी व्यक्ति सेल्यूट करेगा तो बाईं ओर की भौहों के ठीक कोने पर उंगलियाँ रखता है, किसी भी परम्परा में करे; और विचित्र चीज़ यह है कि इस मुट्ठी को फिर यहाँ से आगे ले चलिए, तो कोहनी तक जहाँ तक आता है भाग वह क्षत्रिय वाला भाग आ गया। फिर इसको आगे मोड़ दीजिए-फिर जितना भाग है, वैश्य वाला भाग आ गया। परम्परायें विचित्र रखी गईं। उसके बाद में कहा गया जिस पर सब स्थित है वह चौथा वर्ग आ गया।

यह सारा, सब विभाग करने के बाद, भगवान कहते हैं कि सबके गुण, कर्मों को देखकर मैंने स्थान, नाम, बदले हैं। समाज के चार रूप सामने रखे हैं लेकिन यह चारों ही मेरा शरीर है, इससे मिलकर के स्वरूप बनता है और अगर इसमें से एक भाग भी अलग खड़ा होगा, समाज ही नहीं टूटेगा, जीवन टूटेगा, जीवन की डोर टूटेगी, व्यवस्थायें भंग होंगी; और कोई न कोई भड़काने वाला बीच में आयेगा ज़रूर जो कहेगा – यह ग़लत, वह ग़लत, तुम यहाँ क्यों? तुम्हारा स्थान तो वहाँ होना चाहिए; पांव को उठाकर के सिर पर रखो और सिर को उठाकर के नीचे रखो – यह बिल्कुल मॉर्डन आर्ट जो बनाने की कोशिश होती है वह केवल चित्र में ही थोड़ी देर के लिए अच्छा लगेगा लेकिन वह भी विभत्स रूप-कि शरीर के अंगों को उठाकर कहीं से कहीं जोड़ दो आप।

कभी किसी समय, किसी ज्ञानी ने यह कहा था अपने बच्चों से कि मैं तुम्हें संसार का नक्शा दे रहा हूँ, इसे जोड़ो; फटा हुआ नक्शा दे दिया, टुकड़े-टुकड़े करके जो कागज़ के रखे हुए थे वह बच्चों को उठाकर दिए और कहा – यह लो, चलो, सारे विश्व को जोड़कर दिखाओ।

बच्चे चार घण्टे तक लगे रहे, नहीं जुड़ पाया नक्शा, कैसे, कहाँ बनायें? कहाँ यूरोप है? कहाँ ऐशिया? कहाँ अफ्रीका? कहाँ भारत है? कहाँ अमेरिका है? कहाँ चीन है? कहाँ जापान है? हिसाब बनाना ही मुश्किल हो गया। बच्चे परेशान गुरु का आदेश था।

फिर कोई समझदार, ज्ञानी व्यक्ति उधर से गुज़रा, उसने कहा एक ही पक्ष न देखो, इस कागज़ के दूसरी तरफ़ भी देखो क्या कुछ है? बच्चों ने देखा तो दूसरी तरफ कहीं दिखाई दिया मुँह है, कहीं सिर है, कहीं हाथ है, कहीं गर्दन है। ज्ञानी व्यक्ति ने कहा इसका मतलब एक तरफ़ यह नक्शा था दूसरी तरफ इन्सान की आकृति थी। तुम ऐसा करो यह नक्शा तो जुड़ नहीं पायेगा इन्सान की आकृति जोड़नी शुरू कर दो–शुरू करो सिर कहाँ है? उन्होंने सिर ढूँढ़ा; उसके बाद कहा गर्दन जोड़ो; गर्दन जोड़ी; कहा हाथ, धर, पाँव सब जोड़ते जाओ – तो बच्चे जोड़ते गए, तो जैसे ही बच्चों ने कहा कि मनुष्य की आकृति पूरी मिल गई उस व्यक्ति ने कहा उल्ट दो अब इसको। जैसे ही उल्टा तो बच्चे क्या देखते हैं कि विश्व का नक्शा बन गया है। उन्होंने कहा बस

मनुष्य को जोड़ दो, विश्व बन जायेगा सामने। इन्सान को जोड़ने की कोशिश करो पूरा समाज जुड़ जायेगा। तुम इन्सान को तोड़ने की कोशिश कर रहे हो तो इसीलिए पूरा समाज टूट रहा है, सभ्यताएं टूट रही हैं।

भगवान कृष्ण ने तो सारी दवाईयाँ दी हुई हैं लेकिन इस अमृत को न चखकर समाज के सिर पर चोट मारना अच्छी बात नहीं। हम सबके देवी-देवता एक, परम्पराएं एक, मान्यताएं एक, सबके शरीर में खून एक, हम सबका ईश्वर एक, जीवनधारा एक, फिर कहाँ विभाग? कहाँ अलग-अलग परम्पराएं?

लेकिन भगवान आगे कहते हैं कि मैंने निर्माण किया अर्थात् मैंने समाज को, विश्व को, राष्ट्र को, व्यक्ति को, पदार्थ को, कण-कण को, सबकी संरचना की लेकिन फिर भी मैं कर्त्ता नहीं हूँ, इस सबसे ऊपर हूँ, अर्जुन, तुम भी कर्म करो, कर्म से ऊपर उठ जाओ। आगे फिर समझाया –

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ।।

– कर्म की गति बड़ी ही गहन है, कर्म को समझना बहुत मुश्किल है अर्जुन। इसीलिए तुम कर्म को भी जानो और जो विकर्म हैं उन्हें भी जानो, और जानना चाहिए अकर्म क्या है? कर्म, विकर्म, अकर्म-इन तीनों को जानो। कर्म की गति गहन है; समझना आसान नहीं।

तीन चीजें भगवान ने कहीं-कर्म को जानो, विकर्म को जानो, अकर्म को जानो। लेकिन इसको सरल-ढंग से कैसे कहें-कहा जाता है कि विद्यार्थी फेल नहीं होता, फेल होता है शिक्षक कि वह उन तक पहुँच नहीं पाया। अपने विद्यार्थी तक पूरी तरह पहुँच नहीं पाया उसके हृदय में उतर नहीं पाया। इसीलिए विद्यार्थी फेल नहीं हुआ है अध्यापक फेल हुआ है।

भगवान ने तो बड़ी सरलता से हमारे लिए ज्ञान दिया है लेकिन फिर भी थोड़ी-सी गहराई में उतरने के लिए बुद्धि पर ज़ोर डालना चाहिए। सबसे पहली बात कर्म को जानो – *कर्मणो ह्यपि बोद्रव्यं* – कर्म को जानना चाहिए। यहाँ कर्म से मतलब है शुभ कर्म, निष्काम भाव से किए जाने वाले कर्म, यज्ञीय कर्म, जिनसे आसक्ति टूटती है ऐसे कर्म। ऐसे कर्म जो बन्धन में नहीं बाँधते।

ऐसे कर्म जो स्वार्थ से रहित हैं। ऐसे कर्म जिनको करते हुए आपका हाथ मुड़कर के केवल आपके मुँह की तरफ़ न आ कर के दूसरे के मुख की तरफ़ जाए। ऐसे कर्म जिनको करके आपके मन का लालच न बड़ा हो बल्कि आपके हृदय की प्रसन्नता और उल्लास बड़ा हो। ऐसे जो कर्म हैं, उनको कर्म कहा गया है, वे सुकर्म हैं; जिनको करने से सन्तुष्टि आती है, प्रसन्नता आती है, आनन्द मिलता है।

अपनों के लिए जोड़-जोड़कर कितना भी दे देना लेकिन फिर भी उनको शिकायत है-बेटा भी कहेगा क्या कमाकर दिया है आपने मुझे? क्या दिया है आपने मुझे? आपने मेरे लिए क्या किया है? सारी ज़िन्दगी आपने अपनी दाँव पर लगा दी, शरीर अपना ख़राब किया, नींद अपनी ख़राब की, उसके बाद भी शिकायत कर रहा है। भगवान के लिए थोड़ा-सा भी कर्म किया हो, कोई भी व्यक्ति जिसका उपकार आपने किया हो, किसी का भी भला आपने किया हो, उसके हृदय से जो हिलोर उठेगी, वह जो आपके सामने हाथ जोड़कर कहेगा– 'भगवान ने ही आपको भेजा है, मेरे सामने तो आप भगवान का रूप बनकर आए, भगवान का दूत बनकर के आए, कितना धन्यवाद आपका करूँ' और आप कहेंगे 'नहीं, कोई धन्यवाद नहीं करना, बोलना भी नहीं, बताना भी नहीं किसी को' – ऐसा कहकर के जब आप आगे निकलते हैं, उस समय हृदय में जो आनन्द उल्लास उमड़ता है, मन करता है भगवान से कहने का मुझे इतना क्यों नहीं दिया कि दुनिया में हर किसी की पीड़ा हर लूँ और हर किसी का अभाव दूर कर दूँ। आप देखिए कैसी प्रसन्नताऐं जागती हैं। एक तरफ़ आप सब कुछ देकर के भी आपसे शिकायतें हैं क्योंकि आप उस समय मोह में जी रहे थे। अपना जिन्हें कह रहे हैं वह अपने हैं नहीं। उन्हें कहो कि तुम सब अपना-अपना भाग्य लेकर के दुनिया में आए हो; बाप के कँधे पर बैठकर संसार को देखने की कोशिश नहीं करो; अपने पाँव पर खड़े होकर देखने की कोशिश करो। खुद कमाओ अपना रास्ता बनाओ। फिर भी अग़र आप अपना धन देना ही चाहते हैं लेकिन यह सोचकर कि कितना भाग उनका, कितना समाज का, कितना परमात्मा के लिए, कितना आत्मा-कल्याण के लिए – यह थोड़ा-सा विभाग कर लेना। अन्यथा शिकायतें बनी रह जायेंगी-कहीं भी किसी भी कर्म को करते हुए अग़र स्वार्थ है तो लालच भी आयेगा। लालच विस्तृत

होता जायेगा और उसका कहीं अन्त नहीं है। निष्काम-भाव से किया जाने वाला कर्म आपके मन के ऊपर कोई रेखा नहीं खींचेगा, वह बाँधेगा नहीं।

दूसरे ढंग से भी समझिये – जब भी आप कोई कर्म करते हैं– अथर्ववेद में ऐसा उपदेश है कि जहाँ कहीं दो बात करते हैं वहाँ एक तीसरा भी होता है – वरुण देव। वह अपने पाश लेकर के खड़ा हुआ होता है और वह जैसे ही कोई बात करता है, बातचीत सामान्य चल रही है तब तो कोई बात नहीं, लेकिन जैसे ही निन्दा में लगा, दोष देने लगा, बुरी योजनायें बनाने लगा, षड्यन्त्र रचने लगा – कहते हैं कि जैसे ही उसने अपना कर्म करना शुरू किया – इधर से वरुण देव जो पीछे खड़े हुए हैं, अर्थात् भगवान का वह रूप जो बन्धन में बाँधता है तो उनके – *येते शतम्* – जिनके सौ नहीं सहस्त्रवाँ, हज़ारों असंख्य पाश हैं कि उनमें वह वरुण देव मनुष्य को बाँध लेते हैं। जब तक बीज आपके हाथ में है तब तक कोई बात नहीं, जैसे ही ज़मीन पर गिरा वह अंकुरित होना शुरू हो गया।

आपने कोई भी कर्म संसार में किया उसकी याद मस्तिष्क पर अंकित होगी। उसका स्वभाव और बीज आपके मन में अंकुरित होगा। यहीं से आप बन्धन में आ गये हो – वह अच्छे और बुरे तरह का संस्कार देगा। यहीं से कामना होगी कि इसका लाभ मुझे क्या मिलना है, यहीं से आप पकड़ में आ रहे हैं। फिर स्थिति बनती है कि अगर आपने अच्छा किया है तो अच्छा भोगना है, बुरा किया तो बुरा भोगना है। लेकिन भोगने के लिए बँधना पड़ेगा संसार में और जो भी संसार में बँधा, शरीर धारण करके आया वह हँसा भी है, रोया भी है, उसने तरक्की भी की है, वह नीचे भी गिरा है, उसे मान भी मिला है, अपमान भी मिला है। वह दिन की धूप में भी रहा है और रात की छाया में भी रहा है, उसने संसार में तरह-तरह के उतार-चढ़ाव देखे हैं; बहुत बार हँसा, बहुत बार रोया, बहुत बार बिलखा, बहुत बार तड़पा, बहुत बार उत्साह में भी आया, उमंगों में भी आया-इनके बीच में रहेगा ज़रूर। यही है संसार की चक्की इसमें बँधता है व्यक्ति। जिसे कबीर इस प्रकार कहते हैं :–

चलती चाकी देखकर दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में बाकी बचा ना कोय ।।

भगवान कहते हैं कि तुम कर्मों को यज्ञ बना लो। भगवान के अर्पण करो अपने कर्मों को, कर्मों को करते जाओ यह सोचकर कि मैं अपने प्रभु के लिए कर रहा हूँ – भोजन बनाओ तो भगवान का ध्यान करते हुए – यह मानते हुए कि उसका प्रसाद बन रहा है। भगवान को भोग लगाकर फिर जो बच जायेगा वह यज्ञ-शेष है, अग्नि में आहुति देने के बाद जो बच जायेगा वह यज्ञ-शेष है, गऊ को खिलाने के बाद जो बच जायेगा वह यज्ञ-शेष है, अतिथि को खिलाने के बाद जो बच जायेगा वह यज्ञ-शेष है, किसी ग़रीब और दुःखी को खिलाकर के जो बच जायेगा वह यज्ञ-शेष है, चिड़ियों को दाना डालने के बाद, अपने भोजन का हिस्सा डालने के बाद जो बच जायेगा वह यज्ञ-शेष है, उस पर आपका अधिकार है और वह आपको पुण्य देगा। ऐसी व्यवस्था बनाओ, इस तरह से अपने को संतुलित करो।

इसीलिए वह अन्न जो पवित्र है वह हमेशा ही शान्ति देगा आपको। जिस रोटी में गुनाह बसा हुआ है, किसी बेगुनाह का खून, किसी के बच्चों की चीखें, किसी के आँसू, किसी का हक़, वह अन्न ग्रहण कर तो लिया लेकिन अन्दर चैन नहीं आने देगा, शान्ति नहीं आने देगा। इसीलिए अपनी कमाई को पवित्र करना शुरू कीजिए। भगवान का भोग लगाने के बाद जो प्रसाद बनता है उसका आनन्द लो, कार्य करो लेकिन यह मानकर कि उसकी नौकरी कर रहे हैं – हम तो मैनेजर हैं, मालिक कोई और है, हम तो ट्रस्टी हैं उपयोग हम नहीं कर सकते, सेवा के लिए हमें संगठन में रखा गया है। बस, ऐसा ही मानकर अपने कार्यों को करो, पदार्थों का सेवन करो, त्यागने की बारी आए तो त्यागने में देर न लगाओ।

कोई 'आया' जब किसी बच्चे को अपने पास रखकर पालती-पोसती है, बड़े प्यार से पाले-पोसेगी, सारा दिन उसके साथ हँसेगी, बोलेगी, लेकिन शाम को उसे प्यार कर अपने घर लौट जायेगी। बच्चा उसके लिए रोता रहेगा लेकिन वह नहीं रोएगी। ऐसे ही मानना कि हमारा कर्त्तव्य पोषण करने का है, पालन करने का है, उसके बाद अपने पाँव पर वह खड़े हों और हम अपने प्रभु की तरफ़ चलते चले जायें। ऐसी व्यवस्था मन की बनाओ।

तो कहा गया कर्म को सुकर्म बनाओ, विकर्म नहीं बनाना, विकर्म इससे उल्टा है – जहाँ स्वार्थ है, अन्याय है, अत्याचार है, लोभ है, क्रोध है, वासना

है, मोह है, छीनने की प्रवृत्ति है – जो भी अयज्ञीय भावना है, जो भी असामाजिक है, जो भी अशिष्ट है, जो भी असत्य है वह सब विकर्म है।

आगे फिर कहा, एक बात और समझना यह दोनों चीज़ें हों लेकिन एक तीसरी चीज़ और भी है – आदमी कहेगा कि कुछ ठीक करेंगे तो भी कुछ न कुछ बन्धन में आयेंगे और अग़र कुछ ग़लत कर दिया तो और ज़्यादा बन्धन में आयेंगे, इससे अच्छा तो यही है कि चुप बैठ लिया जाए। भगवान कहते हैं जो चुप बैठ गया, ख़ाली बैठ गया, कुछ भी नहीं करना चाहता, उसका नाम अकर्म है; वह नहीं करना, वैसा भी नहीं हो जाना, आलसी बनकर नहीं बैठ जाना। समाज का वह वर्ग जो सब कुछ छोड़ने के नाम पर कि हमने तिलाञ्जली दे दी सब चीज़ की, वैसे संन्यास का मतलब ही होता है-'सम्' कहते हैं विशेषपूर्वक, अच्छे ढंग से; 'न्यास' का अर्थ होता है छोड़ देना, सोच समझकर के किसी चीज़ को छोड़ देना। तो संन्यास जीवन की वह स्थिति है जहाँ त्याग चरम पर पहुँचता है। लेकिन जितने भी ज्ञानी सन्त हुए हैं, संन्यासी हुए हैं, कर्मों के संग से ऊपर उठ गए – आदि शंकराचार्य, स्वामी रामतीर्थ, कर्म से कर्म करते रहे जीवन-पर्यन्त इस शरीर से – तन से, मन से, बुद्धि से, आत्मा से जन-कल्याण करते रहे, प्रकाश देते रहे लेकिन कर्महीन बनकर के कभी नहीं बैठे और यह भी एक बात ध्यान रखा कि कर्मों में संग भी पैदा नहीं होने दिया, निःसंग होकर के रहे।

कमल की तरह खिले रहना और पानी में डूबना भी नहीं और डूब भी गए तो लिप्त नहीं होना और अग़र एक भी बूँद पत्ते पर पड़ी हुई है कमल के, तो वह मोती की तरह चमकती है, तो ऐसे जो मोती की तरह संसार में चमकते हैं कि –

न हर भूलो न जग भूलो रहो इस तरह से ज़िन्दगानी में।
जिस तरह से कमल रहता है तालाब के बन्द पानी में।।

इस तरह से जीवन को जियो निसंग होकर, लेकिन निठल्ले होकर बैठ जाना, कुछ भी नहीं करना, इसको अकर्म कहा है। भगवान ने इसको भी मना किया है।

मुझे ध्यान आता है-पण्डरपुर में विठ्ठलनाथ का मन्दिर है। तो पण्डरपुर में विनोबाभावे गए। विनोबा जी पण्डरपुर के मन्दिर के चबूतरे पर बैठकर कुछ लोगों से विचार-विमर्श कर रहे थे, ज्ञान की चर्चाऐं चल रही थीं। बता रहे थे कि कर्म से जी नहीं चुराना, सृष्टि की प्रत्येक वस्तु कर्मरत है, परमात्मा का यज्ञ चल रहा है उसमें आहुति डालनी चाहिए।

एक महिला गेरुए वस्त्र – धारण किए हुए वहाँ आई। उसने विनोबा जी से कहा कि आप साधु जैसे लगते हो लेकिन साधु जैसे वस्त्र नहीं हैं आपके। आपकी शिष्टता, सौम्यता देखकर लगता है कि आप संतत्व को, संत की ऊँचाई को छू गए हो लेकिन फिर भी सांसारिक-कृत्य करते नज़र आते हो?

विनोबाभावे जी ने पूछा – तुम यहाँ कैसे आयी? उसने कहा-अपने मालिक, भगवान, के सामने अपना दु:ख कहने के लिए और अपने आँसू प्रकट करने के लिए आई हूँ। विनोबा जी ने कहा तो एक बात बताओ-आँसू तो तुमने बहाए हैं, थोड़ी देर के लिए शान्ति भी मिली लेकिन तुम्हें पूर्ण-सन्तुष्टि हुई? उसने कहा कि यही तो मैं कहना चाहती हूँ कि इतने बरस बैठे-बैठे तेरे विग्रह के सामने बीत गए, कब तू खबर लेगा? कब तेरे तक मेरी आवाज़ जायेगी? कब तू मेरा हाथ पकड़ेगा? पीड़ायें हैं, संत्रास है, दु:ख है संसार भर में, मुझे भी पीड़ायें हैं, तू कब कृपा करेगा? मैं यह कहने आई हूँ।

विनोबा जी ने कहा तो फिर एक काम कर, आँसू यहाँ नहीं बहा, यहाँ तो उससे प्यार कर। पर उसका एक रूप और भी है, समाज में अगर कहीं कोई तड़पते हुए लोग हैं उनकी तड़पन को देखकर जिस दिन तेरी आँख से आँसू बहेंगे उस दिन तेरा परमात्मा तेरे प्रति दया करेगा और कहेगा – आज तूने सही आँसू बहाए हैं, आज तक तू अपने लिए रोती थी, आज तू मेरे बन्दों के लिए रोई है। तो जैसे कोई माँ-बाप अपने बच्चे के आँसू नहीं देख सकते ऐसे वह परमात्मा तेरी आँख के आँसू नहीं देख पाएगा। तुम्हें हिम्मत देगा बड़े से बड़े कार्य करने के लिए। समाज के बीच निकलो, अज्ञान में घिरे हुओं को उठाओ, अभाव में जीते हुए लोगों का उत्थान करो, अत्याचार से पीड़ितों को मुक्ति दिलाओ, कर्म से जी चुराए बैठे हुए लोगों के अन्दर कर्म करने की प्रेरणा भरो।

उसने कहा-लेकिन मैं तो संन्यासी हूँ।

विनोबा जी बोले तो फिर शरीर को भोजन तो देते हो न, जिस मालिक ने यह तन दिया है उस तन से, इन करों से कुछ कर्म करते-करते इस कर्मभूमि पर कर्मों के बन्धनों को काट करके अपने रब् के प्यारे बन जाओ। जाकर के रास्ता ढूँढो अपना, इस समाज के अन्दर निकलो। उन्होंने कहा – एक चीज़ करके देखना, किसी दिन यह सेवा करना और अन्दर-अन्दर भगवान का नाम चलाना। एक तरफ से सेवा, दूसरी तरफ़ से साधना – दोनों का तालमेल बनाकर के खड़े होकर के देखो। अन्दर से सिमरन देखना और बाहर से सेवा, दोनों का तालमेल बैठा के चलो।

वह महिला सेवा करने के लिए गई। थोड़े दिन के बाद लौटी और आकर के बोली – बरसों तक साधु बनकर के बैठी थी वह बात नहीं बनी, अब जो कर्म से जुड़ी हूँ, सेवा से जुड़ी हूँ तो बड़ी शान्ति मिली है।

अब विनोबा जी ने पूछा – अच्छा, नाम बताओ अपना। तो वह महिला एक जर्मन महिला थी, जर्मनी से आई थी – लूसियेन नाम उसका था। हाथ ज़ोड़कर विनोबा जी के सामने बैठ गई और कहने लगी – जब ज़िन्दगी बदली है तो फिर नाम भी बदलो। तो उन्होंने उसका नाम 'हेमा बहन' रखा और आप लोग जानते हैं कि बम्बई और बम्बई की गन्दी-बस्तियाँ, आस-पास के गाँव, जगह-जगह घूम-घूम कर उसने जो सेवा की, लोगों के अन्दर ज्ञान का प्रचार किया, धर्म की तरफ़ लेकर के आई, आत्म-उत्थान करो, उनकी पीढ़ा हरने में अपना समय लगाया, उनके रोग काटने में अपना समय लगाया, अछूत वाली परम्परा उस समय बहुत ज़्यादा थी उसको मिटाने में अपनी ज़िन्दगी खपाई; ज़िन्दगी के आगे, अगले भाग में जाकर उसने कहा – अब लगता है कि जीना भी आ गया, जीना सिखाना भी आ गया और अपने रब् का प्यार पाना भी आ गया। अब जो शान्ति मिली वह कभी नहीं मिली।

तो कर्म सुकर्म बन जाए, विकर्म न हो और अकर्म भी न हो। कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं जो आप चलते हुए कर रहे होते हैं – जैसे आप चले जा रहे हैं, या किसी से बात कर रहे हैं, पाँव का अँगूठा भी हिलाते जा रहे हैं या कोई तिनका उठाकर तोड़ते जा रहे हैं, अब वह कोई कर्म है तो ज़रूर लेकिन वह आपकी समझ से तो नहीं हो रहा, आपको पता भी नहीं है उसके बारे में।

भगवान आगे फिर समझाते हैं –

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ।।

जिस व्यक्ति के समस्त कार्य कामनाओं और संकल्प से रहित होकर जिसने जीवन की चर्या प्राप्त की अर्थात् कामनाओं के भंवर में जाल से, इच्छाओं के अनन्त जाल से जो बच गया है *'ज्ञानाग्निदग्धकर्माण'* ज्ञान की अग्नि में अपने समस्त कर्मों को दग्ध कर दिया, उसको लोग पण्डित कहते हैं, ज्ञानी व्यक्ति कहते हैं।

यहाँ पण्डित का अर्थ है जिसकी पण्डा बुद्धि है, प्रकृष्ट बुद्धि है-जो ज्ञान में प्रकृष्ट हो गया है, उत्कृष्ट हो गया है, ऊँचा उठ गया अर्थात्-समस्त कार्य करता है लेकिन इच्छाओं से इच्छाएं जो पैदा हो रही हैं, जिसमें उलझता जा रहा है संसार, जो इस उलझन से ऊपर उठ जाए, ज्ञान की अग्नि से जिसने अपने कर्मों के संस्कारों को दग्ध कर दिया है-कहा कि वह समझदार है।

देखिए, एक चीज़ है – ज़िन्दगी में जो आदमी रोज़ उलझता जाता है, भले ही वह कितना पढ़ा लिखा हुआ हो, कितना ही समझदार, कितना ही ज्ञानी, कितना ही ऊँचा, अच्छा कहलाता हो लेकिन वह ऊँचा है नहीं। उलझ रहा है न, चिन्ताऐं रोज़ बढ़ रही हैं, समस्याऐं रोज़ बढ़ रही हैं, दल-दल निगल रही है अपनी तरफ़। किसी दल-दली ज़मीन पर जाकर हम खड़े हो जायें, रोज़ उलझते जायें, तो फिर सोचना कि हमें जीना नहीं आया। कर्म कीजिए लेकिन उलझिये नहीं, बन्धिये नहीं और इच्छाओं के अनन्त विस्तार को तोड़ने की कोशिश कीजिए। किसी शायर ने बहुत सुन्दर पंक्तियाँ कही हैं –

"छोटा करके देखिए जीवन का विस्तार
आँखों भर आकाश है, बाँहों भर संसार "

आगे फिर कहा है –

"लेके तन के नाप को घूमे बस्ती गाँव
हर चादर के घेर से बाहर निकले पाँव"

ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य के अन्दर इच्छाऐं नहीं होती। अच्छी बुरी इच्छाऐं उठेंगी, बाँधेंगी संसार में, पर एक स्थिति होती है – आत्म-सन्तुष्टि, अन्दर से तसल्ली, अपनी गहन शान्ति में जीना, अपने आनन्द

और उत्साह में जीना; अब न मान से कोई फ़र्क पड़ने वाला है, न अपमान से कोई पीड़ा; अब कुछ चाहिए भी नहीं, जो है ठीक है, जो नहीं है उसकी चाह नहीं। यह एक ऐसी मनः स्थिति है जहाँ पहुँचने के बाद व्यक्ति को सम्पूर्ण शान्ति मिलती है। यह ज्ञान की अग्नि है। भगवान कहते हैं–

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।

यह बड़ा सुन्दर उपदेश है भगवान का। वैसे तो सारा ही बहुत सुन्दर है लेकिन कहीं-कहीं पर आकर के ध्यान ऐसे रूप में टिकता है कि कोई गहन-रहस्य स्पष्ट किया हो। निराशी-इच्छाऐं जो इन्सान को रात-दिन दौड़ाती हैं, देश-विदेश, परदेश, घर, घर से बाहर, जंगल, वन, पर्वत, नगर, ग्राम दौड़ रहा है इन्सान। इतना पूरा हो गया यह और पूरा हो जाए; इधर चला जाऊँ, उधर चला जाऊँ; यह सब मुझे मिलना चाहिए, यह इच्छाओं का विस्तार रूप है। कहते हैं कि इन सबको अपने नियन्त्रण में ले आओ। किसकी इच्छा करनी है किसकी नहीं, अर्थात् यह जो लहर हमें बहाती हैं इन्हें यहाँ रोकना शुरू करो।

कभी-कभी बैठकर के देखिए, किसी दिन ऐसा प्रयोग करके देखिए कि जब आप किसी भी इच्छा से रहित होकर, किसी भी विचार से रहित होकर, खाली मन बनाकर, शान्त होकर, प्रसन्न होकर, किसी भी तरह की कोई निन्दा-चुगली से कोई लेना-देना नहीं, किसी को खुश करने की कोशिश नहीं करनी, किसी से वैर नहीं रखना, किसी को सताना नहीं और किसी के राग को याद नहीं करना, किसी के वैराग को याद नहीं करना, किसी की घृणा को ध्यान नहीं करना, किसी के लगाव को याद नहीं करना, एक शान्त स्थिति बनाओ मन की और बैठकर के देखो। उस दिन आपको लगेगा कि आज कुछ अलग ही संसार था। उस समय बहुत अधिक शान्ति आपको अनुभव होगी।

भगवान कहते हैं – *यतचित्तात्मा* – चित्त को और आत्मा को वश में करके बैठो। मतलब यह है कि यह जो हमारा चित्त है इस पर संसार की यादें अंकित हैं। ऐसा कहा जाता है कि अस्सी करोड़ छोटी-छोटी तंत्रिकायें हैं मस्तिष्क के अन्दर या कहिये वह बिन्दु, वह डोट्स हैं, जिनमें हमारी स्मृतियां बसी हुई हैं और इतना कुछ उसमें अंकित हो सकता है कि सारी दुनिया का, सारा ज्ञान, सारी जानकारी भर भी दो तो उसके बाद भी अन्दर बहुत से कैसेट
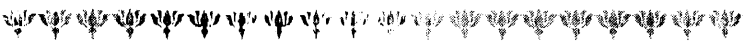
ऐसे रह जायेंगे जो खाली हैं। उनमें और कुछ रिकार्ड किया जाना बाकी रह जायेगा; लेकिन बहुत थोड़ा-सा ही उसमें रिकार्ड हो पाता है।

पर यह भी एक बात याद रखना – परमात्मा की व्यवस्था ऐसी है कि जो कुछ हम सुन रहे हैं – आप इस समय बैठे-बैठे प्रवचन सुन रहे हैं तो न जाने कितनी आवाज़ें और भी आपके कान के आस-पास आती हैं। चाहे पंखा चलने की है, गाड़ी जाने की है, किसी के खाँसने की है, तरह-तरह की आवाज़ें – लेकिन आपका मन कितनी आवाज़ों को पकड़ रहा है? जिस पर आपका मन टिका हुआ है उतनी ही आवाज़ पकड़ी जा रही है, असल में तो कान का यह जो ऐंन्टीना है बहुत सारी आवाज़ों को तो यह पहले से ही वहीं सह जाता है और जो रिकार्ड करने वाला भाग है, जहाँ आपके रिकार्ड मेनटेन करने वाले सेक्रेट्री बैठे हुए हैं, वह जो मुनीम जी अन्दर बैठे हैं, वे भी जानते हैं कि कितना ठीक रहेगा क्योंकि आवाज़ें अन्दर से भेज भी दी तो सारी आवाज़ें रिकार्ड नहीं होती। अग़र कानों से सुनी जाने वाली सैकड़ों प्रकार की आवाज़ें अन्दर पहुँचती हैं तो उनमें से केवल दो प्रतिशत ही रिकार्ड होती हैं क्योंकि उन्हीं के साथ मन जुड़ा हुआ होता है। यदि सारी ही अग़र रिकार्ड होने लग जायें तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाए। जैसे आप कोई चीज़ सुन रहे होते हैं तो उस समय खूब शोर-शराबा होता है लेकिन मेले में खड़े होकर भी आप किसी अपने की बात सुन लेते हैं और आपके ध्यान में वही रहता है। वहाँ कितना शोर हो रहा है उसका ध्यान नहीं रहता।

जब आपको सपना आयेगा या अकेले बैठकर सोचेंगे आप तो उसके साथ शोर तो नहीं आता न, सिर्फ़ वही बात आती है, कितना 'रिफाईन्ड वे' में रिकार्डिंग होती है। कितना अच्छा माईक है भगवान का और रिकार्ड करने वाली मशीन भी कितनी अच्छी है। लेकिन इसके बाद भी एक चीज़ ध्यान रखनी है – जो रिकार्ड हो गया वह भी भारी मुसीबत है, वह भी आपको संसार में उलझा रही है। कहा है कि पहले वाले को मिटा के दूसरा चढ़ाना नहीं है बिल्कुल ख़ाली रखो उसको।

ऐसे नहीं समझ में आये तो ऐसे समझिये – कि अग़र किसी तालाब में, किसी झील में लहरें उठ रही हों तो वह लहरों से ग्रस्त झील में आप अग़र चाँद और सितारों का प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं, सौन्दर्य देखना चाहते हैं

ब्रह्माण्ड का तो नहीं दिखाई देगा क्योंकि उसके अन्दर लहरें उठ रही हैं। किसी समय अगर वह लहर शान्त हो जाए तो उसके बाद आप उस सरोवर को देखना, उस झील को देखना, उसकी सुन्दरता कितनी बढ़ जायेगी, जितना-जितना उसमें झांकेंगे आपको लगेगा कितना सुन्दर संसार इसके अन्दर दिखाई दे रहा है। चाँद, आसमान में सुन्दर लगता है लेकिन झील का चाँद और भी ज़्यादा सुन्दर लगता है। बल्कि यहाँ तक होगा आप सृष्टि, चाँद-सितारे, पेड़-पौधे, सब ही तो झील में आकर खड़े हो गए, एक जगह मिल गए, आसमान में कहाँ आप जाकर मिल सकते थे, पेड़-पौधे कहाँ आसमान में जाते लेकिन झील में तो सारे आ गए।

कहते हैं कि इच्छाओं की लहरें अपने चित्त के सरोवर से शान्त कर लो, परब्रह्म परमेश्वर के सुन्दर स्वरूप को चित्त की झील के अन्दर दर्शन करने के लिए आप झुकने की कोशिश करो। तब देखोगे तुम भी होगे, तुम्हारा परब्रह्म, उसकी लीला और फिर आख़िर में नज़र आयेगा कि तुम तो पूरे आनन्द में आकर बैठ गए हो। उस समय तुम अपने परब्रह्म प्रभु के साथ हो, उस समय आनन्द की अनुभूति होगी। भगवान कहते हैं कि ऐसा जीने की कोशिश करो। इस तरह से रहने की और व्यवस्थित होने की कोशिश करो, इस तरह से कि तुम्हारा चित्त तुम्हारे वश में हो जाए। *त्यक्तसर्वपरिग्रह* समस्त प्रकार का परिग्रह *त्यागकर* के रहना। यहाँ भी बात ध्यान रखने योग्य है – परिग्रह का मतलब है संग्रह करना, संसार का सारा जोड़, सारी पूँजी, सब तरह का संग्रह – इसको त्याग करके कहते हैं परमात्मा के यहाँ पहुँचा जा सकता है।

ईसा मसीह ने कहा था कि गरीब, तू धन्य है क्योंकि परमात्मा के साम्राज्य में तेरा प्रवेश है। अमीर का प्रवेश वहाँ नहीं हो पायेगा। तो वहाँ उससे मतलब क्या है? जो सब त्यागकर खड़ा हुआ है, प्रभु के साम्राज्य में उसका प्रवेश है और जो संसार की पूँजी लेकर वहाँ पहुँचना चाहता है उसके लिए द्वार बन्द हैं क्योंकि यह पूँजी तो यहीं छूट जायेगी; वहाँ तो अगर जाना चाहते हो तो कहो 'मैं तेरा गरीब तेरे पास आया हूँ, अकिञ्चन आया हूँ, नाचीज़ बनकर आया हूँ, तुच्छ बनकर आया हूँ। इस गरीब पर दया फरमा भगवान' – और फिर दया होगी। यह एक अलग स्थिति है।
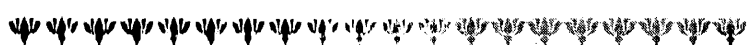
इसीलिए दुनिया के वह लोग जो जागृत मनुष्य थे उन्होंने सबने यह कोशिश की, सब तरह का संग्रह को त्याग करके एक अवस्था आई जब सर्वमेध यज्ञ किया, सर्वजित यज्ञ किया – सबको जीतना। कठोपनिषद् को पढ़िये – यम-नचिकेता का संवाद, उससे पहले वाजश्रवा नाम के ऋषि का वर्णन। सब कुछ त्यागने के लिए बैठ गए वाजश्रवा क्योंकि वह सर्वजित यज्ञ कर रहे थे। सर्वमेध यज्ञ, सब कुछ आहुति दी जा रही थी, सब छोड़ दिया जो भी कुछ अपना प्यारा था।

लोग तीर्थों में जाते हैं तो कहते हैं वहाँ जाकर अपनी सबसे ज़्यादा प्यारी वस्तु, जिससे सबसे ज़्यादा लगाव हो, उसका त्याग करके आओ। और जैन समाज में भी प्रचलित है, सब चीज़ों को छोड़ने की परम्परा है क्योंकि जैन-समाज में तप को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया, त्याग को बहुत अच्छा स्थान दिया गया। अपनी प्रिय वस्तु जिसको तुम सबसे ज़्यादा प्यार करते हो, मोह करते हो उसका त्याग कर दो मन से। पर है बड़ा मुश्किल। दुश्मन की, वैरी की बातें कभी भूलता नहीं इन्सान और अपने प्यारों की यादों को भी कभी नहीं भूल पाता। दोनों ही चीज़ें हमेशा याद रहती हैं। अज़ीब ढंग से याद रहती हैं। और दोनों को ही तोड़ने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए नहीं तो वे खींचती रहेंगी संसार में, आपको उधर ले जाती रहेगी।

एक समय ऐसा आता है जब इन्सान कहता है मैं संसार को नहीं संसार के मालिक, तुझ कर्त्तार को प्यार करता हूँ। इसीलिए मैं संसार की सारी चीज़ें छोड़कर तेरे नज़दीक आ रहा हूँ। उस समय की स्थिति यह होती है कि सब चीज़ों का त्याग करके व्यक्ति चलता है और कमाल यह हो जाता है त्याग करने वाले लोग समस्त प्रकार का त्याग करके, अपना नाम भी बदलकर, अपना भेष बदलकर, अपना स्थान बदलकर, जाति बिरादरी बदल कर, अपने लोगों से दूर हटकर परायी दुनिया में जाकर खड़ा होता है जहाँ कोई पहचानता नहीं। और तब केवल उसके गीत गाता हुआ चलता है। तब कहता है – 'मेरी पहचान न रहे-पहचान तेरी हो; मेरा नाम न रहे, नाम परमात्मा तेरा ही रहे। मेरा अपना क्या भेष, तेरे ही भेष को मैंने पहन लिया जो तेरे रंग में रंग गया हूँ; अब मेरे लिए कोई और रास्ता नहीं तेरे ही रास्ते पर चलना ही मेरा रास्ता है; अब कुछ और पाना नहीं, क्योंकि तुझे ही तो पाना है; अब कुछ और चाहिए

नहीं क्योंकि चाह तो अब तेरे से जुड़ गई है; अब किसी और को मनाना नहीं, मनाना है तो केवल तुझे क्योंकि मैं तो केवल तुझे ही मानता हूँ। और अगर कुछ जगाना है तो आत्म-स्वरूप को कि यह मेरा घड़ा खुल जाए और तेरा अमृत उसमें भर जाए। अब कुछ और होना बाकी नहीं क्योंकि तुझ में पहुँच गया, तेरा हो गया हूँ तो इसीलिए सब कुछ हो गया हूँ।' यह स्थिति सच्चे ज्ञानी की और सच्चे भक्त की है, उस तरफ़ चलना होता है।

यह स्थिति अचानक नहीं जागेगी। साधु का वेश पहन लेना आसान होगा लेकिन अन्दर से इस साधुता को जगाना आसान नहीं है। जिस दिन यह जाग जाती है उस दिन यह नहीं कहेंगे कि भगवान अब कितनी देर और लगेगी, तब तो यह लगेगा कि तू और मैं दूर हैं ही नहीं। कहा जाता है – इन्सान का एक हाथ दूसरे हाथ से थोड़ा-बहुत दूर हो सकता है। सन्त लोगों ने ऐसा कहा – मेरे मालिक, मेरे भगवान, मेरे दीनबन्धु, मेरे कृष्ण, मेरे गोविन्द, मेरे प्रभु, मेरा हाथ दूसरे हाथ से दूर हो सकता है, थोड़ी दूरी होगी लेकिन तू तो इससे भी कहीं मेरे ज़्यादा करीब है क्योंकि तू मेरे हृदय में बैठा हुआ है।

भगवान के लिए जितने भी सम्बोधन, उद्बोधन, नाम दिए गए उनमें एक नाम, कुछ अलग ढंग का ईशोपनिषद् में आया –

'शुद्धम् अपापविद्धम'

तू शुद्ध है, पाप से बिंधा हुआ नहीं है। बड़ा प्यारा शब्द है। मेरे भगवान, इस दुनिया में हर किसी को पाप ने बींध दिया है जैसे सुई से कपड़े को बींधते हुए सिलते जाते हैं, आर-पार निकलती है सुई; पाप मनुष्य के आर-पार हो जाता है, छेद कर देता है उसके अन्दर। लेकिन एक तू ही ऐसा है जिसको पाप बींध नहीं पाता; और इसका मतलब यह भी है कि जो तेरा हो जाता है उसे भी फिर पाप बींध नहीं पाता। वह पाप के बन्धन से ऊपर उठ जाता है।

इन ग्रन्थों में जितना-जितना अमृत भरा पड़ा है, कहते हुए, चिन्तन करते हुए, ऐसा लगता है कि जो रस यहाँ है वह दुनिया में कहीं और है ही नहीं। अगर समझ न आता हो तो फिर यह महसूस होगा किस नीरस जगह पर आकर बैठ गए और किस ग्रन्थ को खोलकर बैठ गए। तो कहते हैं कि फिर पाप पकड़ता नहीं।

भगवान ने फिर कहा –

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ।।

काम करके, कर्म करते हुए भी वह नहीं बंधता जो उसकी इच्छा में, परमात्मा की इच्छा में, लगा हुआ है कि तेरी इच्छा पूरी हो, जैसे शबद में कहा गया–

"जो तुद भावे साईं बलिकार
तू सदा सलामत निरंकार"

जो तुझे अच्छा लगे वही भला है भगवान। जो मुझे अच्छा लगता है वह भला नहीं है, अर्थात् तेरी इच्छा पूरी हो, इसी में मेरा भला है। जो तू चाहता है वह पूरा हो, *जो तुद भावे* – जो तुझे अच्छा लगे – *साईं बनिकार* – वही अच्छा है। मेरे स्वामी, मेरे परमात्मा, मेरे मालिक वही अच्छा है। *तू सदा सलामत निरंकार* – हे निरंकार तू सदा सलामत है, तू सदैव सम्पूर्ण है, सदा है, और रहेगा। मेरा सोचना सम्पूर्ण नहीं, मेरा माँगना उपयुक्त नहीं, मेरे कहने में, माँगने में, दोष है। लेकिन तेरे स्वरूप में कहीं कोई कमी नहीं; तू तो सम्पूर्ण है, समस्त है और हम लोग अपूर्ण। अपूर्ण की पूर्ण की ओर यात्रा है; जो ख़ाली है वह भरे हुए की ओर चल रहा है। तो कहा गया है – *यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः* – उसकी इच्छा में जो सन्तुष्ट है, इच्छाओं से रहित– *द्वन्द्वातीतो* – सब तरह के जो द्वन्द्व हैं हानि-लाभ, मान-अपमान, जय-पराजय, दुःख-सुख आदि इन सबसे ऊपर उठ गए; *विमत्सरः* – मत्सर, ईर्ष्या से रहित हो गया।

भगवान कृष्ण ने द्वेष, ईर्ष्या, वैर शब्द का प्रयोग गीता में जगह-जगह किया है और कहा कि यह ज़रूर छूटना चाहिए। और कमाल यह है कि भगवान योग की बात भी करते हैं, ध्यान की बात करते हैं और आश्चर्यजनक बात यह है कि ध्यान करने में बाधक यह चीज़ है। अगर वैर रहा तो ध्यान नहीं होगा। इसीलिए भगवान कहते हैं ईर्ष्या नहीं रखना, भक्ति नहीं हो पायेगी, शान्ति नहीं मिल पायेगी, आगे नहीं बड़ पाओगे। इसे तोड़कर के ही आगे बढ़कर निकल सकते हो।

रामकृष्ण परमहंस ने एक वाक्य कहा है कि – कुछ लोग, चक्की की तरह होते हैं, चक्की दूसरों को पीसती है और खुद शोर करती है। बड़ा प्यारा

वाक्य है। मतलब, चक्की में जो दाने डाले जाते हैं, वे बेचारे चुपचाप पिस रहे हैं और आवाज़ किसकी आ रही है-दानों की नहीं; चक्की की आ रही है।

जो ईर्ष्या से ग्रस्त इन्सान है, पाप से भरा हुआ है, दूसरे को सताता जायेगा, पीसता जायेगा, शोर भी मचाता जायेगा, खुद ही शोर मचा-मचाकर कहेगा – देखो ऐसा कर रहा है, देखो वैसा कर रहा है। लेकिन कहा गया है कि फिर एक समय चक्की उलटी भी घूमती है, फिर ऐसी भी स्थिति होती है – जो पीसा गया वह चक्की का रूप धारण कर लेता है और चक्की का रूप जब वह धारण कर लेता है तो फिर उसे पीसना पड़ता है, इससे अच्छा यही है कि अग़र चाहते हो सुख पाना तो सुख बाँटने की कोशिश करो; अग़र चाहते हो कि तुम्हारे बाग लगें, हरियाली हो, तो आग लगाने की कोशिश न करो; अग़र चाहते हो कि तुम ऊपर उठ सको तो दूसरों को गिराने की कोशिश न करो; अगर चाहते हो तुम्हें सम्मान मिले तो दूसरे के मान का ख्याल कर लेना; अग़र तुम चाहते हो तुम्हारे लिए मीठे शब्द कहे जाएं तो कड़ुवा बोलने से बच जाना। अग़र चाहते हो कि लोग तुम्हारा सहयोग करें तो दूसरों को सहयोग करने के लिए तुम्हारे हाथ आगे बढ़ने चाहिएं। तभी तुम्हारा कल्याण हो सकता है। यह मार्ग है-मत्सर से रहित होकर।

समः सिद्धावसिद्धौ – सिद्धि और असिद्धि में अपने को एक कर लो। मैं सफल हूँ या नहीं हूँ ; क्योंकि ऐसा तो सम्भव नहीं है कि आप सदैव सफल ही होंगे या फिर असफल ही होंगे। सफलता का उन्माद और असफलता की निराशा दोनों ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को हिलाती हैं। दोनों में जो सम रह जाए – *कृत्वापि न निबध्यते* – ऐसा व्यक्ति कर्म करके भी बन्धन में नहीं आता।

इतना समझाने के बाद भगवान कृष्ण ने आगे फिर एक यज्ञ की चर्चा शुरू की। भगवान आगे समझाते हैं-

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।।

– संसार में कुछ लोग ऐसे हैं जो ब्रह्म को अपना आपा अर्पण करते हैं और ब्रह्म में अपना आपा अर्पण करके अपनी आहुति देते हैं। अग्नि भी ब्रह्मा को बनाते हैं और जो आहुति दी जा ही है वह भी ब्रह्म और जिसको पहुँच

रही है वह भी ब्रह्म और जो कर्म किया जा रहा है वह भी ब्रह्म, *ब्रह्मकर्मसमाधिना* – इस तरह से वह एक महान् यज्ञ करके समाधि सिद्ध करते हैं – यह बड़े गहरे ज्ञान की बात है, इसे ज़रा समझ लेना। इसे अग़र समझना है तो थोड़ा पीछे से समझने की कोशिश कीजिए – *ब्रह्मकर्मसमाधिना* – ब्रह्म का कर्म करते हुए, भक्ति का कर्म करते हुए, समाधि को जो सिद्ध हो गए वह एक तरह का यज्ञ करते हैं। अपने आपको ब्रह्म के अर्पण किया, अपनी मैं आदि, अपना स्वरूप, सब भुलाकर के अपने भगवान में अर्पण कर किया। ब्रह्म को हवि बनाया – जो आहुति होती है वह भी माना कि परमात्मा अब तू ही है। तुझे ही सब कुछ अर्पण कर रहा हूँ, मेरी आहुति भी तू ही, मेरा यज्ञ भी तू ही, मेरी अग्नि भी तू ही और जहाँ यह आहुति पहुँच रही है वह भी तू ही है। अब केवल तू ही तू है, मैं तो हूँ ही नहीं – ऐसी साधना करते-करते अपनी सारी ऊर्जा को, अपने स्वरूप को जिस समय परमात्मा में लीन कर देता है उस समय कोई भी किसी प्रकार का संस्कार संसार की तरफ़ जब नहीं खींचता, सम्पूर्ण सात्विक-स्थिति होती है; विषय सब निवृत्त हो जाते हैं और संसार से ध्यान हटकर करतार में जुड़ जाता है; तो यह जो समाधि सिद्ध होती है उसे कहते हैं ब्रह्मयज्ञ पूरा हो गया। तब यज्ञ ब्रह्मयज्ञ बनता है, ऐसा यज्ञ करना चाहिए – कहा कि यह योगियों का यज्ञ है।

योगी लोग इस तरह से यज्ञ करते हैं अपने को आहुति बनाकर के ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, विवेक, श्रम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान – इन सबको जोड़कर और चित्त को कोमल बनाकर, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा – यह जो चित्त को कोमल बनाने के साधन पतञ्जलि ऋषि ने बताए, इनसे चित्त को कोमल करके जो अपने आपको समाधि में लगा देता है, कहते हैं वह परब्रह्म का स्वरूप प्राप्त करके आनन्दित होता है। यह योगियों का हवन है। कुछ दूसरे लोग हैं, वह भी हवन करते हैं – उनके हवन की चर्चा भी भगवान कृष्ण ने की है –

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ।।

समाधि में निमग्न हुए लोगों की बात अलग़ है। लेकिन दूसरे जो कर्मयोगी हैं उनकी बात भी भगवान बताते हैं –

दैवमेवापरे यज्ञं योगिन: पर्युपासते – कहा गया कि कुछ लोग यज्ञ करते हैं – देवयज्ञ-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए आहुतियां देते हैं। और ऐसे लोग जो देवताओं को प्रसन्न करने के लिए आहुतियां देते हैं उनकी कामना होती है कि देवता प्रसन्न हो जाएं और उनका कल्याण करें। तो इसका एक मतलब और भी है-ऐसे लोग यज्ञ करते हुए अपने अन्दर देवत्व प्राप्त करते हैं-मतलब, हवन करते-करते वह जो तेज है हवन का, वह अपने अन्दर धारण कर लेते हैं।

इसे थोड़ा-सा समझ लीजिए – मनुष्य का रूप जब स्वार्थ में होता है, परार्थ सोचता नहीं तब वह असुर है। 'असु' कहते हैं प्राणों को, 'र' का अर्थ हुआ "रमण करने वाला"-अपने प्राणों में ही जो रमण कर रहा है, अपना आपा ही जो देखता है, जिसे दूसरा दिखाई ही नहीं देता, बस अपना ही सोचता है वह असुर है। और कहते हैं कि जो अपने कारण दूसरों को दबाए और सताए वह राक्षस और जो अकारण बुरा करने पर लग जाए और बुरा कर-करके प्रसन्न हो – वह पिशाच है और जो विचारपूर्वक, अच्छा बुरा सोचकर कर्म कर रहा है, *मत्वा कर्मणि सीव्यति* – व्यास मुनि कहते हैं – विचारपूर्वक कर्म करता है और कर्मों के बन्धन से अपने को ऊपर उठाता है – वह मनुष्य है। और जो विचारपूर्वक कर्म करते-करते अपना आपा नहीं सोचता, जन-कल्याण में जीवन बिता रहा है, जिसकी आहुति तन की, मन की, धन की जनकल्याण के लिए पड़ रही है उसे कहते हैं कि वह देवताओं के लिए यज्ञ कर रहा है। वह व्यक्ति फिर मनुष्य नहीं वह देवता हो जाता है, उसका कर्म ऊँचा हो गया, वह देवताओं को प्रिय है, देवतुल्य हो गया वह।

तो कहा कि एक वह लोग हैं जो ब्रह्म में अपने को अर्पण करके समाधि लगाते हैं; दूसरी तरह के वह लोग हैं जो देवताओं को प्रसन्न करते हैं, वे देवत्व को प्राप्त हो जाते हैं, देव भाव उनके अन्दर जाग जाता है, आसुरी-वृत्तियां मिट जाती हैं। एक और तरह का यज्ञ होता है – भगवान कहते हैं –

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।।

कुछ लोग इन्द्रियों को संयम की अग्नि में अर्थात् इन्द्रियों का जो विषय है, जो अपनी तरफ़ खींचता है मतलब, श्रोत्रादि जो इन्द्रियां हैं – कान हैं, नाक

आदि – सभी पाँच ज्ञानेन्द्रियां इनके जो विषय हैं उनको संयम के हवन में डालकर हवन करने के लिए बैठता है। आगे कहा – *शब्दादीन्विषयान् इन्द्रियाग्निषु जुह्वति* – जो शब्द आदि विषय हैं उन सब इन्द्रियों के विषयों को संयम की अग्नि में जो जला देता है, ऐसा व्यक्ति जो हवन कर रहा है – इसको थोड़ा सा स्पष्ट करके मैं समझाता हूँ आपको – कहा गया है कि यह जो हमारी इन्द्रियाँ हैं इनका भोजन है, विषय है – कान शब्द चाहते हैं; आँख रूप की तरफ़ दौड़ती है, त्वचा कोमल स्पर्श चाहती है, जीभ स्वाद माँगती है, नाक सुगन्ध माँग रही है – यह इनका भोजन हैं और यह इस तरह से अपना भोजन गृहण कर रही है मानो यह आहुतियाँ माँग रही हैं। आँख, रूप की आहुति माँग रही है; कान, शब्द की आहुति माँग रहे हैं – थोड़ा उलट दो – संयम का हवनकुण्ड बना दो, और इन इन्द्रियों के विषयों को उठाकर संयम के हवनकुण्ड में, अग्नि में डालना शुरू करो, ज्ञान की सुगन्ध उठनी शुरू हो और उस समय जब तुम हवन करोगे – वह तुम्हारा हवन तप कहलायेगा और उस तपस्या में तपकर जो तुम्हारे अन्दर निख़ार आयेगा उस अवस्था में तुम अपने परब्रह्म का आनन्द लेने में सफल हो सकोगे। तुम अपने आपको ऊँचा उठा सकोगे, एक हवन अन्दर कर लिया करो।

भगवान फिर यह भी कहते हैं – एक हवन हुआ जो द्रव्य डालकर किया गया, एक हवन हुआ जिसमें तप किया गया क्योंकि अन्दर संयम किया इसीलिए वह तप वाला हवन है। एक हवन वह है कि जो योग साधा गया – वह योग यज्ञ है। एक वह है जहाँ संकल्प जलाए गए हैं और परब्रह्म को लक्ष्य बनाया गया है, तीक्ष्ण व्रत वाले लोग स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान का यज्ञ करते हैं।

कहते हैं जिनके व्रत बहुत तीव्र होते हैं, संकल्प दृढ़ होते हैं उनका हवन अलग़ है। वह हवन क्या है कि संकल्प दृढ़ करके, ज्ञान को स्वाध्याय से, महापुरुषों के संग बैठकर, आत्मचिन्तन के द्वारा, ज्ञान का यज्ञ करते हैं – और ऐसे जो ज्ञान का हवन करने वाले लोग हैं – कहा वह वास्तविक लोग हैं क्योंकि ज्ञान सबसे महत्वपूर्ण चीज़ है। भगवान ने कहा कि इसीलिए सारी चीजें छोड़कर ज्ञान की दिशा में आना चाहिए क्योंकि द्रव्य यज्ञ से, तप यज्ञ से, योग यज्ञ से, ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है-ज्ञान का यज्ञ करो।

आप सोचिए, कि यह कहा गया है अब तक जितने भी दुनिया में ज्ञान हैं, दान हैं, तप हैं, पुण्य हैं सब कुछ- उन सबमें श्रेष्ठ होगा – *सर्वेषामेव दानानाम् ब्रह्मदानं विशिष्यते* – ब्रह्म-ज्ञान का दान अग़र कोई व्यक्ति करता है तो उससे बढ़कर दुनिया में दान कोई हो नहीं सकता। भगवान के ज्ञान का दान करो; बहुत ज्ञान पाओ, परिवार के लोगों को लगाओ, अच्छे से अच्छे लोगों को इस क्षेत्र में लगाओ। आपकी जो सबसे ज़्यादा उत्कृष्ट प्रतिभा है, परिवार का कोई भी व्यक्ति, उसे उस दिशा में लगाकर के अर्पण कर दो। समाज में अग़र अच्छे लोग ज्ञान की मशाल जलाकर खड़े हो जायें तो यह जो संसार में इस समय इतना अन्धेरा दिखाई दे रहा है नहीं दिखाई देगा। नासमझी में मनुष्य न जाने कितने-कितने गुनाह कर रहा है।

देखिये 'राष्ट्र-यज्ञ' भी एक यज्ञ है। राष्ट्र के लिए भी व्यक्ति को आहुति देनी होती है; लोगों को जगाओ। एक यज्ञ 'अतिथि यज्ञ' है – ज्ञानी, ध्यानी लोगों का आतिथ्य करो। एक 'भूत-यज्ञ' है – भूत-प्रेत नहीं, प्राणीमात्र, प्राणियों के लिए आप अपना दया वाला भाव, अहिंसा वाला भाव अपनाकर उनके लिए आहुति दो। गौ-ग्रास निकालो, कोढ़ी है या कोई भी अपाहिज़ व्यक्ति है, कोई बुज़ुर्ग व्यक्ति है उनकी सेवा में मन लगाओ। माता-पिता और गुरु का सम्मान-यह यज्ञ है। प्रदूषण नहीं होने दो-यह यज्ञ है और आप देखते हैं कि हवन किया जाता है तो सुगन्ध वाले पदार्थ डाले जाते हैं। समिधाऐं वह होती हैं कि जिनके जलने के बाद कोयला नहीं बचता। जिन पेड़ों की समिधायें ली जाती हैं उनमें दूध बहता है – आम की समिधायें प्रयोग की जाती हैं। आम को अग़र आप काटें तो उसमें से दूध बहने लगता है, क्षमी वृक्ष है – जो भी जिनकी भी समिधायें रखी गई-ढाक जलकर के यह कोयला नहीं बनती। सुगन्ध फैलाती हैं और इनका धुआँ कड़ुवा नहीं होता, आँखों को लगता नहीं। और हर हवन में मन्त्र बोले जाते हैं। तो कहते हैं कि वातावरण शुद्ध होना चाहिए और ध्वनि भी तुम्हारी मन्त्र होनी चाहिए – बेकार की ध्वनियाँ संसार में नहीं फैलनी चाहिएं। आप सोचिये – गाड़ियों का शोर, हवाई जहाज़ों का शोर, फैक्ट्रियों का शोर, व्यक्तियों का शोर – यह शोर चारों तरफ़ जो वातावरण बना रहा है, अशान्ति ही अशान्ति चारों तरफ़ फैल रही है तो हवन तो वह होता है कि जिसके द्वारा चारों तरफ़ शान्ति बहती है। समाज का पूरा वातावरण वैसा बनाया जाए।

यह फूल जो खिले हुए हैं यह भी भगवान के हवन कुण्ड हैं, यज्ञवेदी हैं यह जहाँ से सुगन्ध बह रही है चारों तरफ़, जीवनी-शक्तियाँ मिल रही हैं; पेड़-पौधे सब भगवान के यज्ञकुण्ड हैं, यज्ञवेदियाँ हैं। इन सबसे जीवनी-शक्ति मिलती है, प्राण वायु मिलती है – न इनको काटना चाहिए, न इनको किसी तरह से नुकसान पहुँचाना चाहिए और जितने-जितने पेड़ लगाते जाओगे – ऐसा हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि अग़र आपने एक पेड़ लगाया तो दस लायक बच्चों से भी ज़्यादा पुण्य उसके द्वारा मिलता है – यह भी एक यज्ञ है।

यदि आप अपनी एक लायक सन्तान को राष्ट्र की सेवा में अर्पित करते हैं तो आप अपने पितरों तक के बहुत-बहुत ऋणों से उऋण हो जाओगे।

इसीलिए जब राष्ट्र की बारी आए तो फिर हमें याद करना चाहिए – जैसे भगवान राम ने कहा था-'अपि स्वर्णमयि लंका न मे लक्ष्मण रोचते' लक्ष्मण ने कहा रामजी से – लंका सोने की है, बहुत सुन्दर है, उसको देखकर आने की इच्छा है। तो रामजी क्या उत्तर देते हैं-*अपि स्वर्णमयि लंका न मे लक्ष्मण रोचते* – मैं जानता हूँ कि लंका बहुत सुन्दर है, सोने की है, पर लक्ष्मण मुझे अच्छी नहीं लगती – *जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गापिगरियसि* – अपनी मातृ भूमि से बढ़कर दुनिया में कुछ भी अच्छा नहीं है। स्वर्ग भी कहीं हो वह भी नीचा, अपनी मातृभूमि स्वर्ग से भी कहीं ऊँची है। उसका सम्मान करो। तो राष्ट्र-यज्ञ भी बहुत बड़ा यज्ञ है। मुझे याद आता है – हमारे देश में ऐसी घटनायें भी घटी: –

देवगिरी एक राज्य था। रामदेव वहाँ राजा थे और उनका एक सरदार, एक कमाण्डर था-कृष्ण राव। थोड़ा लालची आदमी था कृष्ण राव। अलाउद्दीन ने आक्रमण किया और देवगिरी साम्राज्य में आक्रमण करने के बाद उसे उम्मीद थी कि वह जीत जायेगा। लेकिन राजा रामदेव ने कमाल किया, उसके सैनिक बड़ी शक्ति के साथ लड़ने के लिए आगे आए। अलाउद्दीन हार गया। जैसे ही वह भाग रहा था, तो लालची आदमी-यह कृष्ण राव-मिल गया साथ। इसने कहा कि अग़र आप मुझे राजा बनायें तो मैं आपको जीत का रास्ता बता सकता हूँ। आपकी सारी खुफ़ियागिरी करूँगा, जासूसी करूँगा आपके लिए और आप जल्दी ही जीत जायेंगे। इधर यह सेनायें लड़ रहीं हैं, राजा लड़ रहा है और उधर यह सरदार, यह कमाण्डर था या सेनापति समझ लीजिए-कृष्णराव–यह जासूसी करने में लगा हुआ है।

कृष्णराव की पत्नी का नाम था वीरमति। इसको पता लगा कि मेरे देश के जितने भी परिवार हैं, हर परिवार से कोई न कोई बच्चा दुनिया-दुनिया भर में अपने देश की रक्षा के लिए जा रहा है। मेरे घर से और तो कोई गया नहीं, मेरे पति गये थे और वह भी देशद्रोही बनकर खड़े हो गए। आज मेरा पूरा कुल और मेरे पितृ सब मुझे धिक्कार रहे हैं – तू किसकी पत्नी है? किस कुल में तू है कि तेरा पति देशद्रोही निकल आया? हवन के अन्दर विघ्न बाधा डालने वाला व्यक्ति राक्षस होता है। मेरे राजस्वी यज्ञ के अन्दर विघ्न डालने वाला अब पूरे राष्ट्र को तोड़ने का काम मेरा पति कर रहा है। तो जहाँ पति जासूसी करने के लिए घुसा हुआ था, छुरी लेकर वीरमति पहुँच गयी। और इतना प्रहार किया कि अपने पति को मार करके छोड़ा।

आख़िरी साँस में जिस समय कृष्ण राव था उसने वीरमति की तरफ़ देख करके कहा – मान लिया मैं देशद्रोही था या देशद्रोही हूँ पर तेरा पति भी तो साथ में हूँ। तू देशद्रोही को तो मार ही रही है अपने पति को भी मार रही है, नादान! विधवा हो जायेगी।

खून से सनी हुई छुरी हाथ में लेकर वीरमति ने कहा-सारी ज़िन्दगी विधवा होकर रह लेना अच्छा लेकिन देशद्रोही की पत्नी होकर रहना अच्छी बात नहीं। अग़र मेरे देश में एक-एक व्यक्ति इस बात का ख़्याल कर ले – मेरे कुल़ का कोई व्यक्ति देशद्रोही नहीं होगा तो मेरे देश के ऊपर कभी आँच नहीं आ सकती, उस पर कभी गैरों के क़दम रखे ही नहीं जा सकते।

मातृभूमि एक यज्ञ-वेदी है – वीरों के सिर वहाँ चढ़ाये जाते हैं तब वह अग्नि धधकती है। लेकिन उससे जो सुगन्ध बहती है – अग़र कोई यह कहे यह भारत माता है, ज़रा पूछना कहाँ भारत माता है? एक कोने से लेकर – कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक – यह जो पूरा भूभाग है – इसमें रहने वाले जितने भी लोग हैं और उनमें जो देशभक्ति है और वह जो भावना है उसका नाम भारत माता है। उसके लिए हम ज़य-जयकार बोलते हैं-भारत माता की जय।

इसीलिए एक यज्ञ यह होता है जब व्यक्ति माता-पिता, गुरुजनों का सम्मान करता है। ईश्वर का ध्यान करता है, भक्ति करता है, उससे भी बढ़कर राष्ट्र-यज्ञ है। अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए, देश की एकता के लिए,

जन-कल्याण के लिए खड़े होओ। कोई भी व्यक्ति किसी भी देश में रहता हो, जो जिस देश में रहता है, जिस देश का वासी है, उसे अपने देश से प्यार करना चाहिए। मातृभूमि की रक्षा करना और वहाँ बसे हुए लोगों का कल्याण करना यह प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति का कर्त्तव्य है, अगर वह मानव सच्चा है तो।

भगवान ने आगे कहा – इसके बाद ज्ञान की तरफ़ चलना चाहिए यह मानकर कि ज्ञान सबसे बड़ा यज्ञ है और ज्ञान प्राप्त करने के लिए भगवान कहते हैं क्या करें –

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।

अब ज्ञान पाने के लिए एक काम करना चाहिए अर्जुन – ज्ञान पाना है तो ज्ञानियों के संग जाओ, तत्वदर्शी लोगों के संग, उन्हें मनाओ – *प्राणिपातेन* – सिर झुकाकर; ज्ञानियों को प्राप्त करो, सिर झुकाकर के उनका सम्मान करो, उनका मान करो *परिप्रश्नेन सेवया* – सेवा से उन्हें प्रसन्न करो और फिर सवाल करो, फिर जिज्ञासा करो। कहा है कि प्रणाम करो, झुको, विनम्र हो जाओ उनके सामने, सेवा से उन्हें प्रसन्न करो और फिर प्रश्न करते-करते अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए तत्पर हो; तब, जब तुम जिज्ञासा करोगे, सेवा भावी बने रहोगे और विनम्र होकर उनके सामने सिर झुकाओगे, भगवान कहते हैं तब वे उपदेश देंगे, तत्त्वदर्शी लोग और तब तुम्हारा ज्ञान बढ़ेगा, तब तुम्हारा कल्याण होगा।

आगे भगवान ने कहा–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।।

इस दुनिया में ज्ञान से पवित्र कोई भी चीज़ नहीं है, ज्ञान से बढ़कर के कोई पवित्र चीज़ नहीं है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए कोशिश करनी चाहिए, लेकिन ज्ञान मिलेगा कैसे? ज्ञानियों का संग करो, पर एक शर्त है–

श्रद्धवाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।

भगवान ने कहा जो श्रद्धावान् है वह ज्ञान को प्राप्त करेगा; जो सदैव तत्पर है, इन्द्रियों में संयत है, बहक नहीं रहा, वह ज्ञान प्राप्त करेगा; और ज्ञान

प्राप्त करके *'अचिरम् शान्तिम् अधिगच्छति'* बड़ी शीघ्रता से परम-शान्ति प्राप्त करेगा। उसे पूरा आनन्द मिल सकता है। ज्ञान मनुष्य को पवित्र करने वाली चीज़ है। भगवान कहते हैं दुनिया में इससे बढ़कर पवित्र करने वाली चीज़ कोई हो ही नहीं सकती और इसे पाना है तो सेवा करनी पड़ेगी, विनम्र बनकर पहुँचना होगा, गुरुओं का सान्निध्य पाने के लिए अपने को खपाना पड़ेगा। उनसे जिज्ञासा करना, पर सेवा से उन्हें प्रसन्न करो, जिज्ञासा करने का ढंग भी आना चाहिए--कब जिज्ञासा करें? कैसी जिज्ञासा करें? कुछ मौलिक प्रश्न करो। श्रद्धा-भाव से उनका उत्तर लो। भगवान कहते हैं कि जितनी गहरी श्रद्धा होगी उतना ही तत्पर होकर, अपने को संयम में रखकर के ज्ञान पाने में समर्थ होगे और तब तुम्हारा ज्ञान तुम्हें शान्ति देने में समर्थ होगा।

यह चतुर्थ-अध्याय का सार है।

अध्याय-चार

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।। १।।

इस अनश्वर योग में मैंने विवस्वान् को बताया था। विवस्वान् ने इसे मनु को बताया और मनु ने इक्ष्वाकु को बता दिया।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ।।२।।

इस प्रकार इस परम्परागत योग को राजर्षियों को ने दूसरे से सीखा। अन्त में हे शत्रुओं का सताने वाले (अर्जुन), बहुत काल बीत जाने पर वह योग लुप्त हो गया।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि में सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।।३।।

वही प्राचीन योग आज मैंने तुझे बताया है, क्योंकि तू मेरा भक्त है और सखा है; और यह योग सबसे श्रेष्ठ रहस्य है।

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ।।४।।

अर्जुन ने कहा:

तेरा जन्म बाद में हुआ और विवस्वान् का जन्म पहले हुआ था। तब मैं कैसे समझूँ कि तूने शुरू में यह योग उसको बताया था?

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥५॥

श्री भगवान ने कहा:
हे अर्जुन, मेरे और तेरे भी बहुत-से जन्म पहले हो चुके हैं। हे शत्रुओं को सताने वाले (अर्जुन), मैं उन सबको जानता हूँ, पर तू नहीं जानता।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥६॥

यद्यपि मैं अजन्मा हूँ और मेरी आत्मा अनश्वर है, यद्यपि मैं सब प्राणियों का स्वामी हूँ, फिर भी मैं अपनी प्रकृति में स्थिर होकर अपनी आया द्वारा (अनुभवगम्य) अस्तित्व धारण करता हूँ।

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

जब भी कभी धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है, हे भारत (अर्जुन), तभी मैं (अवतार रूप में) जन्म लेता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥

सज्जनों की रक्षा के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए मैं समय-समय पर जन्म धारण करता रहता हूँ।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

जो व्यक्ति मेरे दिव्य जन्म और कार्यों को इस प्रकार सत्य रूप में जान लेता है, वह शरीर को त्यागने के बाद फिर जन्म नहीं लेता, अपितु अर्जुन, वह मेरे पास चला आता है।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

राग, भय और क्रोध से मुक्त होकर, मुझमें लीन होकर और मेरी शरण में आकर ज्ञान की तपस्या द्वारा पवित्र हुए बहुत-से लोगों ने मेरी ही स्थिति को प्राप्त कर लिया है; अर्थात् जो मैं हूँ, वही वे बन गए हैं।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

जो लोग जिस प्रकार मेरे पास आते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार अपनाता हूँ। हे अर्जुन, मनुष्य सब ओर मेरे मार्ग का अनुगमन करते हैं।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

जो लोग अपने कर्मों का फल यहीं पृथ्वी पर चाहते हैं, वे देवताओं को (एक परमात्मा के ही विभिन्न रूपों को) बलियाँ देते हैं, क्योंकि मनुष्यों के इस संसार में कर्मों का फल बहुत शीघ्र मिलता है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

मैंने गुण और कर्म के हिसाब से चार वर्गों की सृष्टि की थी। यद्यपि मैं इसका सजृन करने वाला हूँ, फिर भी तू यह जान रख कि न कोई कर्म करता हूँ और न मुझमें कोई परिवर्तन होता है।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजाााति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

कर्म मुझे दूषित नहीं करते। न किसी कर्मफल के प्रति मेरी इच्छा ही है, जो मुझे इस रूप में जानता है, वह कर्मों के बन्धन में नहीं बँधता।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुमिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

पुराने समय के लोगों ने, जो मोक्ष पाने के अभिलाषी थे, यह जानते हुए भी कर्म किया था। इसलिए जैसे प्राचीन काल से पुराने लोगों ने किया था, उसी प्रकार तू भी कार्य कर।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इस विषय में तो बड़े-बड़े ज्ञानी भी चकरा गए हैं। मैं तुझे बताऊँगा कि कर्म क्या है। उसे जानकर तू सब दोषों से मुक्त हो जाएगा।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण: ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

मनुष्य को यह समझना चाहिए कि कर्म क्या है। इसी प्रकार उसे यह भी समझना चाहिए कि गलत कर्म क्या है; और उसे यह भी समझना होगा कि अकर्म क्या है। कर्म की गति को समझना बहुत कठिन है।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

जो मनुष्य कर्म में अकर्म को देखता है और अकर्म में कर्म को देखता है, वह मनुष्यों में ज्ञानी मनुष्य है। वह योगी है और उसने अपने सब कर्मों को कर लिया है।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तामहुः पण्डितं बुधाः ॥१९॥

जिससे सब कार्य इच्छा के संकल्प से स्वतन्त्र हैं, जिसके कर्म ज्ञान की अग्नि में जल गए हैं, उसे ज्ञानी लोग पंडित कहते हैं।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥२०॥

कर्म के फल के प्रति आसक्ति को त्यागकर, सदा तृप्तरहकर, बिना किसी पर आश्रित हुए वह भले ही सदा कार्य में लगा रहे, फिर भी वह कुछ नहीं कर रहा होता।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥

कोई इच्छा न रखते हुए, अपने चित्त और आत्मा को वश में रखते हुए सब प्रकार सम्पदाओं को त्यागकर जो केवल शरीर द्वारा कर्म करता है, उसे कोई दोष नहीं लगता।

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥

जो मनुष्य यों ही संयोगवश प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ट रहता है, जो (सुख और दुःख के) द्वन्द्वों से परे पहुँच चुका है, जो ईर्ष्या से मुक्त है, जो सिद्धि और असिद्धि (सफलता और विफलता) में समान रहता है, वह कर्म करता हुआ भी उसके बन्धन में नहीं पड़ता।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

जिस मनुष्य की आसक्तियाँ समाप्त हो चुकी हैं, जो मुक्त हो चुका है, जिसका मन दृढ़ता पूर्वक ज्ञान में स्थित हो गया है, जो कर्म को यज्ञ समझ कर करता है, उसका कर्म पूर्णतया विलीन हो जाता है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

उसके लिए अर्पण करने का कार्य भी परमात्मा है, अर्पित की जाने वाली वस्तु भी परमात्मा है; परमात्मा द्वारा वह परमात्मा की अग्नि में अर्पित की जाती है। जो मनुष्य अपने कार्यों में परमात्मा को अनुभव करता है, वह परमात्मा को ही प्राप्त करता है।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

कुछ योगी देवताओं के लिए यज्ञ करते हैं, जबकि अन्य योगी ब्रह्म की अग्नि में यज्ञ द्वारा स्वयं यज्ञ को ही अर्पित कर देते हैं।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥

कुछ लोग श्रवण इत्यादि इन्द्रियों की, संयम की अग्नि में आहुत दे देते हैं; अन्य लोग शब्द इत्यादि के इन्द्रियों के विषयों की आहुति इन्द्रियों की आग में देते हैं।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।।२७।।

फिर कुछ लोग अपने इन्द्रियों के सब कर्मों को और प्राणशक्ति के सब कर्मों को आत्मसंयम-रूपी योग की अग्नि में समर्पित कर देते हैं, जो (अग्नि) ज्ञान द्वारा जलाई जाती है।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।।२८।।

इसी प्रकार कुछ लोग अपनी भौतिक सम्पत्ति को या अपनी तपस्या को या अपने योगाभ्यास को यज्ञ के रूप में समर्पित कर देते हैं, जब कि कुछ अन्य लोग जिन्होंने मन को यज्ञ वश में कर लिया है और कठोर व्रत धारण किए हैं, अपने अध्यन और ज्ञान को यज्ञ के लिए अर्पित कर देते हैं।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।।२९।।

कुछ और भी लोग हैं, जो प्राणायाम में लगे रहते हैं; वे प्राण (बाहर निकलने वाले श्वास) और अपान (अन्दर आने वाले श्वास) के मार्ग को रोककर अपान में प्राण की और प्राण में अपान की आहुति देते हैं।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ।।३०।।

कुछ और लोग हैं, जो अपने आहार को नियमित करके अपने प्राणरूपी-श्वासों में आहुति देते हैं। ये सबके सब यज्ञ के दाता हैं (ये जानते हैं कि यज्ञ क्या है) और यज्ञ द्वारा उनके पाप नष्ट हो जाते हैं।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

जो लोग यज्ञ के बाद बचे हुए पवित्र अन्न (यज्ञ-शेष) को खाते हैं, वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। हे कुरुओं के श्रेष्ठ (अर्जुन), जो व्यक्ति यज्ञ नहीं करता, उसके लिए यह संसार ही नहीं है, फिर परलोक का तो कहना ही क्या!

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

इस प्रकार ब्रह्म के मुख में अनेक प्रकार के यज्ञ फैले पड़े हैं। (अर्थात् परम ब्रह्म तक पहुँचने के साधन हैं)। तू इन सबको कर्म से उत्पन्न हुआ समझ और यह ज्ञान लेने के बाद तू मुक्त हो जाएगा।

श्रेयान्द्रव्यमायाद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

हे शत्रुओं को सताने वाले (अर्जुन), भौतिक पदार्थों द्वारा किए जाने वाले यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानमय यज्ञ अधिक अच्छा है, क्योंकि निरपवाद रूप से सब कर्म ज्ञान में जाकर समाप्त हो जाते हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

उस ज्ञान को सविनय, आदर द्वारा, प्रश्नोत्तर द्वारा और सेवा द्वारा प्राप्त करो। तत्त्वदर्शी ज्ञानी लोग तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषाणि द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

जब तू इस ज्ञान को प्राप्त कर लेगा, तब तू फिर कभी इस भ्रान्ति में नहीं पड़ेगा; क्योंकि हे पांडव (अर्जुन), इस ज्ञान के द्वारा तू निरपवाद रूप से सब सत्ताओं को पहले अपने अन्दर और फिर मेरे अन्दर विद्यमान देखेगा।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥३६॥

चाहे तू सब पापियों से बढ़कर भी पापी क्यों न हो, फिर भी तू केवल ज्ञान की नाव द्वारा सब पापों के पार पहुँच जाएगा।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

हे अर्जुन, जिस प्रकार जल उठाने पर आग अपने ईंधन को राख कर देती है, उसी प्रकार ज्ञान की अग्नि भी सब कर्मों को भस्मसात् कर देती है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धिः कालेनात्मनि विन्दति ॥३८॥

इस पृथ्वी पर ज्ञान के सदृश पवित्र वस्तु कोई और नहीं है। जो व्यक्ति योग द्वारा पूर्णता को प्राप्त हो जाता है, वह समय आने पर स्वयं को अपने अन्दर ही अपने इस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

जिस व्यक्ति में श्रद्धा है, जो इस (अर्थात् ज्ञान) को पाने में तत्पर है और जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, वह ज्ञान को प्राप्त करता है और ज्ञान को प्राप्त करके वह शीघ्र ही सर्वोच्च शान्ति को प्राप्त करता है।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

परन्तु जो मनुष्य अज्ञानी है, जिसमें श्रद्धा नहीं है और जो संशयालु स्वभाव का है, वह नष्ट होकर रहता है। संशयालु स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए न तो यह संसार है और न परलोक, और न उसे सुख ही प्राप्त हो सकता है।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥४१॥

हे धनंजय (अर्जुन), जिसने योग द्वारा सब कर्मों को त्याग कर दिया है, जिसने ज्ञान द्वारा सब संशयों को नष्ट कर दिया है और जिसने अपनी आत्मा पर अधिकार कर लिया है, उसको हम कर्मबन्धन में नहीं डालते।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥

इसलिए हे भारत (अर्जुन), ज्ञान की तलवार से अपने हृदय में स्थित सन्देह को, जो अज्ञान के कारण उत्पन्न हुआ है, छिन्न-भिन्न करके योग में जुट जा और उठ खड़ा हो।

पांचवां अध्याय
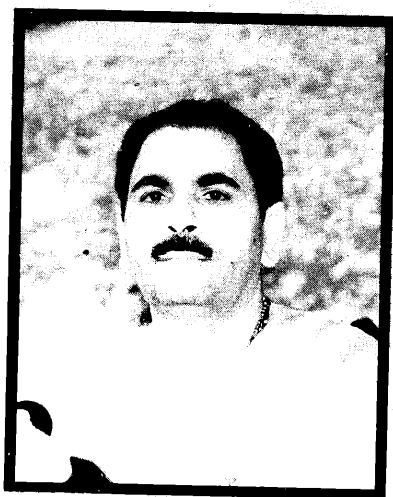
संन्यास योग

ता के पंचम अध्याय में भगवान संन्यास को, त्याग को, महत्त्व देते हुए समझाते हैं कि संन्यासी, जो सब कुछ त्याग देता है, उसका स्वरूप क्या होता है? यहाँ कोई विशेष प्रकार के वस्त्र पहनने वाले व्यक्ति का वर्णन नहीं है! वर्णन है कि जो अपनी मानसिक दशा, अपना अन्तःकरण, अपना अन्तस्थ, शुद्ध और निर्मल करता है, अपनी चेतना को विशुद्ध कर लेता है, आचार और व्यवहार में जिसके विशेषतायें दिखाई दें, जो किसी प्रकार के बदले और वैर भाव में नहीं पड़ा हुआ, ऐसा व्यक्तित्व वह कैसे भी परिवेश में हो, किसी भी तरह के वेश में हो, वह संन्यासी है। भगवान कहते हैं–

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।।

जो नित्य संन्यासी है ऐसा व्यक्ति सुख से, बन्धनों से, मुक्त हो जाता है, सरलता से समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है। और नित्य संन्यासी की विशेषता बताई गई कि ऐसा संन्यासी *'न द्वेष्टि न काङ्क्षति'* – किसी के प्रति द्वेष नहीं रखता और न आकांक्षा रखता है, जिसे किसी से कुछ पाने की चाह नहीं है और न किसी प्रकार का वैर भाव है और न ही द्वेष है; *'निद्वन्द्वः'* – द्वन्द्वों से जो रहित हो गया है; अर्थात् मनुष्य का व्यक्तित्व कुछ चीजों से सदैव प्रभावित रहता है – मान से प्रभावित होगा उसे पाने की कामना करेगा, अपमान से बचेगा और अपमान करने वाले लोगों के प्रति गुस्सा आयेगा। लाभ प्राप्त करेगा – जहाँ से लाभ की उम्मीद है वहाँ की परिक्रमा करता रहेगा और जहाँ जिन कारणों से, जिन लोगों से हानि हुई उनके प्रति वैर जागेगा, उन्हें दबाना चाहेगा, उनका बुरा करना चाहेगा। जहाँ से लाभ होगा उनके आगे दुम हिलायेगा और जब लाभ मिल जायेगा, मान मिल जायेगा, तब अहंकार आ जायेगा। अपने से नीचे वालों को, जिनका मान कम है उनको देखकर घृणा

और हेय दृष्टि रखेगा कि यह मेरे सामने तो कुछ भी नहीं हैं; और जिनसे अपमानित होगा उनके सामने हमेशा ही ऐसा रहेगा जैसे किसी सर्प के ऊपर किसी ने पत्थर मार दिया हो – फन फैलाए खड़ा हुआ है डसने के लिए।

यह द्वन्द्वों का संसार है – द्वन्द्व कहते हैं जोड़े को, कि दो तरह का स्वरूप है जिसके बीच में जीवन बह रहा है। समझिये कि संसार की नदी के दो किनारे – एक मान एक अपमान, एक लाभ एक हानि, एक सुख एक दुःख, एक जीत एक हार, एक मुस्कान एक निराशा, एक दिन एक रात, एक धूप एक छाया – इसका कितना भी विस्तार कर लीजिए; हम सब इसके बीच से ही गुज़र रहे हैं और दोनों ही तरफ़ प्रभावित होते हैं।

कहा है कि वह संन्यासी है जो इन दोनों के बीच से निकल जाए लेकिन दोनों से ही प्रभावित न हो क्योंकि संसार को मान देने में देर नहीं लगती और बुरा कहने में भी देर नहीं लगती। संसार में लाभ पाने में भी संयोग मिल जाए तो एकदम व्यक्ति कहाँ से कहाँ पहुँच जाए और यह भी नहीं पता कि कब चोट पड़ जाए और व्यक्ति कहाँ से उठकर और कहाँ गिर जाए। यह चक्र चलते रहेंगे लेकिन ध्यान रखना, दोनों अवस्थाओं के बीच अपना संतुलन बनाकर जो चले वही ज्ञानी है, वही त्यागी है, वही संन्यासी है। कहा गया – *न द्वेष्टि न काङ्क्षति* न तो किसी के प्रति द्वेष है न आकांक्षा है। और हम इन दोनों ही चीजों से भरपूर हैं – कितना भी समझायें लेकिन एकदम मन में द्वेष जागता है, आकांक्षायें जागती हैं। कुछ भी लाभ की उम्मीद मन में जागृत हो जाए, देश परदेश, वन, जंगल, पहाड़, पर्वत, नदी, नाले, रेगिस्तान, समुद्र का किनारा या कोई टापू – कोई भी स्थान में पता लगे कि यहाँ कोई लाभ होगा, इन्सान वहाँ पहुँचा हुआ दिखाई देता है। पैसा मिल रहा है, पदार्थ मिल रहे हैं, जहाँ से भी उम्मीद है वह वहाँ दौड़ लगता है और यह चक्र है – चक्र हमें घुमा रहा है। कहा गया है कि जो इन दोनों स्थितियों को देखे और देखकर अपने आपको शान्त रखे, सन्तुलन बनाए–

दुनिया में हूँ दुनिया का तलबग़ार नहीं हूँ ।
बाज़ार से गुज़रा हूँ पर, खरीदार नहीं हूँ ।।

दुनिया की कोई तलब़ नहीं है, इच्छा नहीं है क्योंकि बाज़ार में जब खरीदार बनकर जायेगा तो लाभ-हानि की चिन्ता सतायेगी और जब खरीदार है ही नहीं तो देखने का आनन्द लेगा। फिर सजी हुई दुकानें देखेगा, बाज़ार की रौनक देखता हुआ निकलता चला जायेगा। जैसे किसी शहर के बीच में से आपकी गाड़ी निकली; वहाँ की रंगीनियाँ देखते हुए आप कहें – शहर भले ही छोटा हो लेकिन सुन्दर है, अच्छा है। जैसे कोई पर्यटक किसी देश में आ जाए तो देश में आने के बाद करेगा क्या – लोगों से पूछेगा यहाँ देखने योग्य चीज़ क्या है? उसको बताया जाए कि यहाँ का प्राकृतिक-स्थल बड़ा सुन्दर है, यह ऐतिहासिक स्थान बड़ा सुन्दर है, यह बाज़ार बहुत अच्छे हैं; सब जगह देखेगा, सबका आनन्द लेगा लेकिन ध्यान रहेगा कि लौटना अपने देश में ही है। देखेगा, देख कर के वापिस लौटने की उम्मीद रखेगा। आसक्ति नहीं बनाएगा कि अब मैंने ताजमहल देखा तो बस उठाकर ले जाऊँगा साथ में। देखा, आनन्द लिया और चल पड़ा आगे। साथ में कहा कि संसार को दखो संसार की रौनक को देखो, संसार का आनन्द लो पर ध्यान रहे कि जाना मुझे अपने परम-धाम में ही है जहाँ से मैं आया हूँ। पूरा ध्यान उसका वहीं रहेगा और यही कहेगा भले ही दूसरा देश बहुत प्यारा था लेकिन जहाँ हमने बसना है, जहाँ रहना है, उससे बढ़कर दुनिया में कोई भी अच्छा नहीं होता। व्यक्ति को वहाँ का आकर्षण सदा मन में बना रहता है। तो कहा है कि वह आकर्षण मन में बसाओ जहाँ तुम रहोगे – परमात्मा का धाम।

संसार में सब तरह की चीज़ें हैं उनको देखो लेकिन उनमें किसी भी तरह से अपने को फंसने नहीं दो। लेकिन एक बात याद रखिए कि यह स्थिति धीरे-धीरे ज्ञान की आती है और ज्ञान पकता है। जब परिपक्व हो जाओगे न, तब ऊपर उठने की इच्छा होगी। अभी क्योंकि पके नहीं हैं इसीलिए बात समझ में भी नहीं आती कि कैसे छूट जायें हम? वेदों में कहा है–

उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय: मामृतात् ।

ख़रबूजा जैसे पककर डाली से अपने आप अलग़ हो जाता है, परमात्मा हमें भी तुम ज्ञान से पकाओ, फिर छुड़ाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

ख़रबूजा डाली से पकने के बाद छुड़ाया नहीं जाता, तोड़ा नहीं जाता, अपने आप टूटकर अलग़ हो जाता है और उसकी खुशबू फैलती हुई, निमन्त्रण दे रही है कि मैं टूटकर डाली से अलग हो गया अब ले जाओ मुझे, विधाता ने मुझे तुम्हारे लिए ही तैयार किया है। यह बड़े मज़े की बात है कि अग़र ख़रबूजे को कच्ची अवस्था में आप डाली से तोड़ने की कोशिश करें, खींचते रहना, पूरी बेल उखड़ सकती है लेकिन डाली से नहीं अलग़ होगा। और पक जाए, फिर किसी को छोड़ने की, तोड़ने की ज़रूरत नहीं है फिर तो अपने आप अलग़ होता है।

तो भक्त भी कहता है कि भगवान मुझे पकाओ, कच्ची-अवस्था में तो कितना ज़ोर लगा लेना लेकिन यह संसार छूटने वाला नहीं, इन्हीं की यादें आयेंगी और अग़र मैं पक गया तो फिर यह कुछ की ज़रूरत नहीं कि यह छोड़ो या वह छोड़ो तब सब अपने आप छूट जायेगा।

ज्ञान जब परिपक्व अवस्था में पहुँच जाए तो बात अपने आप बन जायेगी। इसीलिए कहा गया है कि यह जो संन्यासी है वह इन दोनों अवस्थाओं में फँसता नहीं इससे ऊपर उठ जाता है। लेकिन एक बात ध्यान रखने योग्य है – उसके पास सम्पत्ति है भक्ति की और ज्ञान की। उससे उसने अपने आपको पकाया हुआ है, वैराग्य से उसने संसार को मन से हटाया हुआ है। अब वह अपना स्वामी स्वयं बन जाता है, अपने को हुक्म देता है, अपना प्रशासन स्वयं सम्भालता है।

आपके शरीर में आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ और आपकी कर्मेन्द्रियाँ आपके नौकर-चाकर हैं, आपकी फ़ौज हैं और इनकी व्यवस्था देखने के लिए पीछे "मन" बैठा हुआ है। इनके लिए इनसे भी बड़ा ऑफिसर है जो इनकी जजमैन्ट करता है, निर्णय करता है – क्या करना है और क्या नहीं करना – तो वह "बुद्धि" है, डिसिज़न पॉवर उसी के पास है और कितनी ताक़त लगाकर काम करना है उस बल को पैदा करने का काम "अहम्" करता है। वह बतायेगा कि हमारे पास ताक़त है, लड़ना चाहिए या नहीं लड़ना चाहिए या चुप बैठना चाहिए। एक और है जिसके पास पूरा रिकार्ड है पिछला, उसे "चित्त" कहा जाता है। वह बतायेगा कि पीछे हमने ऐसा किया था तो यह चोट खाई थी और

ऐसा किया था तो इन लोगों ने साथ दिया था, इसीलिए ऐसा किया जा सकता है कि ताक़त को ध्यान में रखकर फैसला लिया जा सकता है। तो बुद्धि उस समय फैसला लेती है।

लेकिन इन सबका मालिक इन सबसे पीछे है – आत्मा – वही सबका स्वामी है। वह है तो यह सब है – वह ऐसा है जैसे उपनिषदों में कहा –

'आत्मानम् रथिनम् विद्धि:' – आत्मा रथी है, सवार है रथ का, *'बुद्धिम् सारथिम् विद्धि:'* और ड्राइवर है बुद्धि, *'मन: प्रग्रहमेव च'* – मन लगाम और इन्द्रियाँ घोड़े; मन लगाम है; बुद्धि ड्राइवर है, सारथी है; तो होना यह चाहिए कि बुद्धि, जो ड्राइवर है, वह मन की लगाम को पकड़े रखे और मन से जुड़ी हुई हैं इन्द्रियाँ, घोड़े – इनको खींचकर रखे और पीछे बैठा मालिक अर्थात् आत्मा – वह अपने ड्राइवर को बताता जाए कि हमें जाना कहाँ है? और जिस मालिक का ड्राईवर उससे पूछता ही न हो, मनमर्ज़ी में कहीं लेकर चल पड़े तो या तो मालिक नशे में है या मालिक का अधिकार, उसका नियन्त्रण, छूट गया?

तो सोचिए ज़रा, हम सब ऐसे ही मालिक हैं जिनका नियन्त्रण अपने ड्राइवर से अलग़ हो गया है, स्वामित्व नहीं रहा। पहली जानकारी होनी चाहिए कि मैं मालिक हूँ। दूसरी बात, बुद्धि मेरा नौकर, मन मेरा नौकर। यह मेरी फ़ौज है – समस्त इन्द्रियाँ – तो मैं मालिक बनकर इनसे काम लूँ।

अब सवाल आयेगा कि बहुत लोग काम लेने के लिए ज़बर्दस्ती सताते हैं शरीर को – एक टाँग पर खड़े हो जायेंगे क्योंकि मन वश में नहीं आ रहा; स्वाद नियन्त्रण में नहीं आ रहा इसीलिए क्या करेंगे जीभ को नियन्त्रण में रखने के लिए भूखा रहना शुरू कर देंगे या फिर इन्द्रियों को सता रहे हैं तो इन्द्रियों को काटेंगे या अपने शरीर को उपवास में डालकर ऐसा करेंगे कि जिससे मन में संसार का ध्यान ही न आए। लेकिन जैसे ही फिर अन्न खाओगे तो फिर मन उधर जायेगा – क्या करना चाहिए?

होश में आ जाए मनुष्य तो फिर बात बन जाती है। जैसे नौकरों को पता लग जाए कि मालिक ऑफिस में आकर बैठ गया है और देख रहा है, बस, आगे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं, नौकर सावधान हो जाते हैं। फैक्ट्री में

मालिक पहुँच जाए, अभी किसी से बात ही कर रहा हो और सब आपस में कान में बता रहे हैं कि आ गए हैं, मालिक आ गए हैं – सब नियन्त्रित, अपने अपने काम में ठीक लगे हुए हैं, कोई फालतू बात नहीं कर रहा है। थोड़ी-सी जानकारी हो जानी चाहिए कि मालिक, आत्म-तत्त्व, इन नौकरों के बीच में पहुँच गया है, नौकरों को मालूम हो जाए और मालिक को भी पता लग जाए कि यह सब मेरे मातहत हैं, इनका रोब नहीं चलने देना, इनके ऊपर तुमने हावी होना है। स्कूल में बच्चे शरारत कर रहे हों और अचानक टीचर पहुँच जाए, फिर उसे कुछ कहना नहीं पड़ता, वह खड़े हो गये बस इतना ही क़ाफी है। सब अपनी-अपनी सीट पर जाकर बैठेंगे और यहाँ तक भी होगा कि अपनी-अपनी बुक हाथ में लेकर पढ़ना भी शुरू कर देंगे। एकदम पता लग जाता है कि सामने कोई है।

तो कहा, पहले तो यह महसूस करो कि मेरे प्रभु मेरे सामने हैं, मेरे ऊपर नियन्त्रण करने वाला, परिणाम देने वाला मेरे सामने है। दूसरा यह कि अपने आपको एहसास कराओ कि मैं स्वामी हूँ और यह मेरे नौकर हैं। यह ज्ञान जैसे-जैसे विकास पायेगा बस आप अपने ऊपर शासन करने वाले बन जाओगे। इसको व्यवस्था बनाकर चलने में आनन्द है क्योंकि कर्म के साथ ज्ञान – दोनों का समन्वय होना चाहिए। लेकिन जब यह बताया गया है कि ज्ञान हो जाए इतना काफ़ी है तो फिर यह समझ में आता है कि पीछे भगवान कृष्ण ने यह कहा था- पिछले अध्यायों में – कि कर्म करना चाहिए, कर्म से ख़ाली नहीं बैठना चाहिए। तो फिर सांख्य और योग, ज्ञान और कर्म योग कहीं यह अलग़ अलग़ तो नहीं हैं? तो आगे उसी का उत्तर दिया गया है:–

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।

सांख्य को और योग को, ज्ञान को और कर्म-योग को जो अलग़-अलग़ कहते हैं वह लोग बाल-बुद्धि वाले लोग हैं, विद्वान नहीं है, ज्ञानी नहीं हैं। ज्ञानी यही जानता है कि ज्ञान और कर्म – मतलब ज्ञानयोग और कर्मयोग, कोई ज्ञानयोगी है तो कोई कर्मयोगी है – यह दोनों एक ही बात है। कर्म करने वाला

कर्मयोगी भी समझपूर्वक कर्म करेगा तब वह कर्मयोगी है और ज्ञानयोगी भी क्योंकि ज्ञान पाया है तो उसका उपयोग तो करना ही है – तो कहा है कि यह दोनों अलग़ नहीं है, इन दोनों का तालमेल बनाओ और फिर व्यवस्था बनाओ ज़ीवन में।

दूसरे ढंग से कहें ज्ञान लेना बहुत ज़रूरी है, तब मानना ज़रूरी है। मानने लग जाओ और जानो नहीं और जान लो और करो नहीं, करो और फिर फँस जाओ वह भी अच्छा नहीं; समस्त कार्यों को करते हुए उसके बन्धन में नहीं आओ। इनका जो तालमेल बनाये यह है योग – कर्मयोग, ज्ञानयोग – इसको सांख्य और योग कहा गया–

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।।

ऐसा व्यक्ति संसार में कर्म करता हुआ बन्धन में नहीं आता जो योग युक्त है, विशुद्ध आत्मा है, अपने आपको जीत लिया जिसने, अपने आपे पर नियन्त्रण कर लिया, समस्त प्राणीमात्र में अपनी आत्मा को अनुभव करता है, संसार के कर्म करता हुआ वह लिप्त नहीं होता; नहीं तो लिप्त कैसे होता है? बँधता कैसे है मनुष्य? संसार की छोटी-छोटी चीज़ें हमें अपने बंधन में बाँध लेती हैं और निकलने नहीं देती। आदमी जान रहा होता है लेकिन फिर भी फँसा हुआ है। जैसे दुर्योधन कहता है कि जानता हूँ पर मेरे अन्दर का संस्कार मुझे उधर खींच रहा है।

वर्णन आता है महाभारत में कि जिस समय युद्ध समाप्त हो गया, युधिष्ठिर राजा हो गए तो युधिष्ठिर की कोशिश यह रही कि जो दुर्योधन अपने पिता धृतराष्ट्र को नहीं दे पाया, हम उनकी सेवा करके उनके मन को जीतेंगे; तो सेवा करने में तत्पर हुआ। युधिष्ठिर हर बात में ध्यान रखता है धृतराष्ट्र का, खूब सेवा करता है – सोने-जागने का, खाने-पीने का, रहने-सहने का, हर चीज़ का ध्यान, कोई कष्ट न हो जाए धृतराष्ट्र को, लेकिन उसके बाद भी देखने में आया कि धृतराष्ट्र उदास रहते हैं, निराशा जा नहीं रही और सब के मन में यह कि क्या करें जो इनका मन शान्त हो?

यद्यपि इससे पहले वह घटना घट चुकी थी जब पता लगा कि दुर्योधन भी मारा गया तो एक बार मन में हल्का-सा वैराग्य जागा और उसने कहा – हुआ बहुत बुरा है, इस ज़िद्द का परिणाम यही था, अहंकार का परिणाम यही था कि विनाश को आमन्त्रण दिया गया था, विनाश आ गया सामने।

इतना कहने के बाद उन्होंने कहा कि मेरे सामने समस्त पाण्डवों को बुलाओ, सबको आशीर्वाद देना चाहता हूँ और सबको आशीर्वाद दिया भी सही; लेकिन कहा कि भीम को भी बुलाओ।

भगवान कृष्ण ने भीम को आगे नहीं किया, भीम के पुतले को आगे कर दिया। भीम का पुतला जैसे ही आगे हुआ, अब गुस्से में इतना पहुँच गया धृतराष्ट्र, उसको लगा कि मेरे बच्चे को जिसने मारा है वह मेरे सामने है और ऐसा करके जैसे ही अपनी भुजाओं में लेकर गले लगाने के लिए आगे बढ़े तो पुतले को पकड़कर के इतनी ज़ोर से दबाया – कहा जाता है कि लोहे का पुतला था और वह चूर हो गया और जैसे ही चूर होकर के पुतला नीचे गिरा, धृतराष्ट्र कहता है कि यह क्या था? भीम था? तो क्या मैंने उसको मार दिया?

ऐसा सोच धृतराष्ट्र रोने लगा तो रोते हुए के पास भीम आकर कहता है कि मैं अब आपके सामने आया हूँ, आप ऐसे ही मुझे चूर कर दो, यह तो मेरा पुतला था। तब धृतराष्ट्र बहुत रोया। उसने कहा कि मैं चाहता था आशीर्वाद देना लेकिन न जाने मेरे अन्दर का दबा हुआ प्रतिशोध कैसे बाहर निकल गया?

अब पश्चात्ताप में बैठा हुआ है, मन उसका उद्विग्न है लेकिन यह लोग, पाँचों भाई, रोज़ सेवा करते हैं, पर मन शान्त नहीं होता। एक दिन उन्होंने युधिष्ठिर से कहा- युधिष्ठिर, तुम कोई कोशिश करो, कहीं से विदुर मिल जाए तो उसे बुला लाओ। विदुर आए तो मेरे मन को शान्ति मिले।

विदुर तीर्थों का भ्रमण कर रहे हैं, वनों के ऋषियों से जाकर मिल रहे हैं, अपनी साधना में अपना जीवन बिता रहे हैं – वह सोच रहे हैं कि हमारे राजा ने अपना जीवन ख़राब कर लिया, यह महलों की राजनीति में पड़कर ज़िन्दगी ख़राब कर ली; इस दुनिया में मनुष्य आत्म-जागरण करने के लिए आया है तो वह भरपूर आनन्द ले रहे हैं इसका और वानप्रस्थ वाला वेश उनका; तो चलते-चलते वह जैसे ही शहर के निकट पहुँचे गुप्तचर विभाग ने

सूचना दी कि विदुरजी नगर के पास हैं, पता नहीं नगर आयेंगे या नहीं आयेंगे। कुछ लोग गए और हाथ जोड़कर बोले – राजा ने आपको बहुत आदर से बुलाया है।

विदुर पहुँच गए और जैसे कहा गया कि धृतराष्ट्र बहुत परेशान हैं तो विदुर वहीं जाकर बैठ गए। विदुर बैठे हुए हैं, अब छोटा भाई है, लेकिन वह साधु के वेश में है। अब साधु के वेश में भाई को जानकर धृतराष्ट्र ने कहा इस दुनिया में कोई अभागा होता है न, जिसका सब कुछ छिन जाए, जो लोक भी बिगाड़ ले और परलोक भी बिगाड़ ले, वह जो कोई होता है वह तुम्हारे सामने बैठा हुआ है विदुर, वह मैं हूँ। इन लोगों ने सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ी लेकिन मेरे मन को कोई शान्ति नहीं मिल रही, मन बड़ा बेचैन है।

विदुर ने समझाना शुरू किया – 'आप बहुत ज़्यादा उलझ गए थे, बहुत ज़्यादा फँस गए थे और फँसता व्यक्ति संसार में नहीं, संसार की वस्तुओं को मन में बसाकर अपनी वासनाओं के बीच में फँसा हुआ होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध यह सारी चीजें हैं जो मन के अन्दर हैं, संसार तो इसका क्रीड़ाक्षेत्र है। आप उस सब में थे और वह सब संसार, वह समाज, वह परिस्थितियाँ, वह स्थितियाँ, सब बदल गईं लेकिन महाराज अभी आपका मन नहीं बदला, बहुत चोट खा चुके हो, इतनी ठोकरें खाकर भी मन नहीं जागा?'

धृतराष्ट्र फिर कहते हैं- 'लेकिन विदुर ऐसा हुआ क्यों?'

विदुर कहते हैं – उस क्यों को भूल जाओ, यह सोचो कि यह क्यों, क्यों है? यह उद्विग्नता क्यों है? यह बेचैनी आपके मन में क्यों है? इसे जानने की कोशिश करो।

धृतराष्ट्र हाथ जोड़कर के बोला तो फिर मुझे समझाओ।

तब उन्होंने कहा कि मैं एक बार ऐसे वन में चला गया, जहाँ दिन में भी अन्धेरा दिखाई देता था, बड़ा घना वन था; शेर, चीतों की दहाड़ थी वहाँ। मैंने वहाँ पेड़ों की गहन-छाया के बीच भागते हुए एक ब्राह्मण को देखा, बड़ा डरा हुआ था – डरा रही थी एक राक्षसी डॉयन और एक छः मुख वाला और बारह पाँव वाला हाथी उसे धकेल रहा था। मैंने उसकी दशा देखी – वह

डॉयन से डरता है और मुँह उसका डॉयन की तरफ़ है और पिछली तरफ़ भाग रहा है। तो जैसे ही भागता रहा तो उसको यह पता ही नहीं है कि पीछे रास्ता ठीक भी है या नहीं, कुएं में जाकर गिर पड़ा। गिरा, ऊँची पहाड़ की चोटी पर खड़ा हुआ मैं देख रहा हूँ, मैं भी उसे बचा नहीं पा रहा हूँ। गिरा और गिरते ही लुढ़कता जाता है, सम्भलने की कोशिश कर रहा है, कुएं के किनारे खड़े हुए पेड़ की जड़ों को पकड़कर वह लटक गया। पेड़ की जड़ें पकड़ करके जो लटका तो बहुत ज़ोर-ज़ोर से उसकी सांस की आवाज़ आ रही है, घबराया हुआ है, तो देखता है कि हाथी भी पास में आकर बैठ गया, सूँड़ अपनी नीचे लटका रहा है, पकड़ने का पूरा प्रयास कर रहा है। इसने सोचा कुएं में नीचे देखूँ, देखा तो नीचे पानी नहीं है, तो थोड़ा मन को सांत्वना जैसा भाव तो मिला लेकिन जैसे ही नीचे कूदने की भावना बनाई वह देखता है काला नाग फन फैलाकर उसकी तरफ़ देख रहा है कि यह आए गिरकर नीचे और मैं डसूँ। फिर भी इसने सोचा कि चलो डॉयन से बचे, हाथी की सूँड यहाँ नहीं रही, सर्प भी नीचे ही है, वह भी यहाँ तक नहीं पहुँच पायेगा, जड़ से पकड़कर लटका तो हूँ, हो सकता है कोई न कोई मुझे निकाल ले।

व्यक्ति की जो आशायें हैं न वह व्यक्ति की बहुत उम्मीदें जगाती रहती हैं और व्यक्ति उनके सहारे जीता रहता है। तो यह ब्राह्मण भी सोचता है कि अब बच जाऊँगा। फिर इसने जड़ की तरफ़ देखा कि जड़ मज़बूत है या नहीं? तो जड़ की तरफ़ जैसे ही देखता है तो देखकर हैरान कि वहाँ भी दो चूहे लगे हुए थे – एक काला और एक सफेद – वह उस जड़ को कुतर रहे हैं।

अब घबराया यह कि सब ही स्थितियाँ विपरीत हैं – जिस जड़ को पकड़ कर लटका हुआ हूँ उसे भी काटने के लिए चूहे लगे हुए हैं! ध्यान से उसे देखता है और सोचता है कुछ भी हो, चूहों के दाँत इतने मज़बूत तो हैं नहीं कि ज़ल्दी से काटकर गिरा दें, इन्हें कुतरने में समय लगेगा क्योंकि जड़ बहुत मोटी है लेकिन फिर देखता है तो सोचता है – कमाल है यह थकते नहीं? इन्हें कोई और काम नहीं है? दोनों के दोनों कुतरने में लगे हुए हैं और पूरे परिश्रम से, जैसे ठेकेदारी ले ली हो।

फिर सोचा – कुछ भी हो देर लगेगी, जड़ कटने में देर लगेगी; हाथी की सूँड तो यहाँ नहीं पहुँच पा रही है; डॉयन भी चली गई – दूर से डरा रही है; सर्प भी नीचे है – यह पेड़ कौन-सा है जिसकी जड़ से मैं लटका हुआ हूँ – मज़बूत वाला पेड़ है या कमज़ोर? ऐसा सोचकर जैसे ही उसने ऊपर की तरफ़ देखा तो देखता है पेड़ तो बड़ा विशाल है, बड़े सुन्दर फूल उसमें खिले हुए हैं। अब उसको देखकर खुश हुआ और तभी उसने देखा कि एक मधुमक्खियों का छत्ता भी ऊपर है जिसमें शहद बड़ा भारी है; पर मधुमक्खियाँ नीचे न आ जायें काटने के लिए, यह भी घबराहट। फिर उसने देखा यह शहद इतना अच्छा, इन फूलों से लेकर के इन मधुमक्खियों ने तैयार किया होगा, अगर इसको चखने का मौका मिले बड़ा स्वादिष्ट होगा। देखता है कि उसमें से एक-एक बूँद नीचे गिर रही है शहद की। तो यह थोड़ा हिल-डुलकर के, जीभ आगे करके उसे चाटने की कोशिश करता है। स्वाद जब लिया इसे बड़ा आनन्द आया। अब हिम्मत करता है कि यह किसी तरह से शहद गिरता रहे; अब वह शहद चाटने में लगा रहा, अब वह भूल गया कि आवाज़ किसी को दूँ, कोई मुझे बचाए; अब वह यह भूल गया कि किसी तरह से ऊपर निकलूँ क्योंकि शहद का अपना नशा था; अब वह भूल गया शहद को ध्यान में रखकर के कि नीचे सर्प भी है; इस बात को भी भूल गया कि हाथी दूसरी तरफ़ से भी कोशिश कर रहा है टाँग पकड़ने के लिए।

अचानक डॉयन ने ज़ोर से आवाज़ की, हाथी ने जड़ को झटका दिया और इधर चूहे भी जड़ को काटते-काटते आख़िर में पहुँच गए; इधर सर्प भी रेंगता हुआ ऊपर की तरफ़ आ रहा है; एकदम लगा झटका, जड़ टूटी, धड़ाम से नीचे गिरा और सर्प अपना काम कर गया।

•

इतना की कहा, धृतराष्ट्र सुनकर एकदम बौखला गये, ज़ोर से चीख़ निकली और कहने लगे – विदुर, बड़ी डरावनी चीज़ तुमने सुनाई है, मेरा रोआं-रोआं काँपने लगा है। तुम मुझे प्रवचन दे रहे हो या डरा रहे हो?

विदुर समझाने लगे – महाराज, वह ब्राह्मण कोई और नहीं यह जीव है, वन कोई और नहीं यह संसार ही वन है और तरह-तरह की आवाज़ें जो वन

में आ रहीं थीं, हिंसक जानवरों की, यह इस संसार में भी हिंसक वातावरण की आवाज़ें चारों तरफ़ से आती हैं; डॉयन कोई और नहीं व्यक्ति का बुढ़ापा है, वह डराकर के ले जाता है व्यक्ति को और महाराज यह छः मुख वाला और बारह पाँव वाला जो हाथी है – छः मुख से मतलब है ऋतुएं और इसके जो बारह पाँव हैं तो वह बारह महीने हैं – यह धकेलते हैं मनुष्य को; जिस जड़ को पकड़कर के वह कुँए में लटका हुआ है वह जड़ कोई और नहीं वह उम्र की जड़ है, उम्र वाली इस जड़ को काटने के लिए काला और सफेद चूहा – दिन और रात – लगे हुए हैं जो इसको काट रहे हैं और महाराज यह जो नीचे सर्प बैठा था वह कोई और नहीं मौत है, काल बैठा हुआ है नीचे, प्रतीक्षा कर रहा है कि तू आ नीचे, मेरे ही पास आना है।

लेकिन आदमी कितना पागल है, बचने के उपाय थे लेकिन शहद, वासनाओं का जो शहद टपकता है, संसार के भोगों का जो शहद पास से टपकता है, इन्सान अपने आपको बचाना छोड़कर उसे चख़ने में लग जाता है और इस तरह से आकर वह काल के चक्कर में आकर फँस जाता है लेकिन जो अपने परब्रह्म को याद करके, झटका लगाकर के, कूद कर बाहर निकल जाए वह तो कोई ज्ञानी ही होता है। परमात्मा जिसका हाथ पकड़ता है वह संसार से निकलता है।

महाराज, अभी भी संसार को पकड़े बैठे हो आप, अपने परब्रह्म को नहीं पकड़ा, अपने स्वामी को याद नहीं किया, उस नगरी को याद नहीं किया जिस नगरी में जाना है, उस धाम का ध्यान नहीं आया जहाँ जाकर के चैन मिलेगा, स्वार्थों की दुनिया को याद किया, अहंकार और ईर्ष्या-द्वेष वाले लोगों को याद किया, आप संसार को देखते रहे – ऐसा संसार जो किसी के वैभव को बर्दाशत नहीं कर पाए, किसी का बढ़ता हुआ सम्मान जो बर्दाशत न कर पाए, आप उस संसार में उलझते रहे जो कमज़ोर को सताया करता है, दुर्बल को दबाया करता है, आप उस संसार को याद करते रहे जहाँ एक धनी, धनी होने के बाद भी निर्धन का धन छीनने के लिए रात-दिन प्रयत्न करता है; वह बुद्धिमान लोग जो कम बुद्धि वाले लोगों को अपने ज्ञान के कारण लगातार सताते हैं, परेशान करते हैं, उसी चक्र में आप उलझे हुए थे, उन सबके पीछे काल बैठा हुआ है।

विदुर आगे कहते हैं कि जो इस धारा को अपनी तरफ़ से हटाकर परमात्मा की तरफ़ मोड़ दे उसके सामने यह हाथी, यह राक्षसी डॉयन, यह काल, यह चूहे, कुछ नहीं कर पाते, वह अपनी उम्र को इस तरह से संसार में जीकर जाता है कि जैसे कोई फूल डाली से झड़कर, अपनी खुशबू बिखेरकर संसार से जाए और पीछे उसकी खुशबू, उसकी महक, उसकी याद ताज़ा कराती रहे, उसका इस संसार में भी मान होता है, उसका परलोक में भी मान होता है, वह यहाँ भी पूजनीय है और वहाँ भी पूजनीय है। ऐसा व्यक्ति योग युक्त कहलाता है।

वह कर्मयोगी है, ज्ञानयोगी है, विशुद्ध आत्मा है, आत्मा उसकी शुद्ध हो गई, विजेतात्मा है – और अपने को जीत लिया है उसने, जितेन्द्रिय – अपनी इन्द्रियों को जीत लिया उसने, उस शहद की तरफ़ कैसा भी आकर्षण क्यों न हो, बँधता नहीं; समस्त प्राणीमात्र में अपनी आत्मा देखता है, ऐसा व्यक्ति संसार में जो भी कार्य करेगा, किसी भी तरह के व्यवहार निभायेगा, वह कर्म करते हुए भी संसार में लिप्त होगा नहीं क्योंकि बन्धन तो लगातार प्रत्येक कर्म का है। संसार में व्यक्ति बँधता चला जाता है; चीज़ें, परिस्थितियाँ, खींच रही हैं, आकर्षण बांध रहे हैं, कहीं न कहीं कोई दबाव है, कोई तनाव है, वह हमें रात-दिन बाँधे हुए है और सबसे बड़ी समझ है कि इन सबसे ऊपर उठना सीख जायें।

भगवाने आगे फिर समझाते हैं–

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।।

यहाँ समझाया गया है कि जो व्यक्ति योगयुक्त हो गया है, अपने आपको अपने प्रभु में जोड़ा हुआ है, संसार के कर्मों की वासनाओं से ऊपर उठा हुआ है, कर्मफल को त्याग दिया, फल की आकांक्षा जिसकी नहीं है; *शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्* – नैष्ठिकीम् का अर्थ है स्थिर, स्थिरता से युक्त, *'शान्तिमाप्नोति'* शान्ति को प्राप्त कर लेता है अर्थात् जो कर्मफल का परित्याग करके संसार में जीवन जीता है उस व्यक्ति को स्थिर शान्ति प्राप्त होती है।

ऐसा समझिये – आठ घण्टे, दस घण्टे या पूरे चौबीस घण्टे आपने यह सोचना है कि कोई भी कर्म मैं करूँगा उसके फल की आकांक्षा मैंने मन में नहीं रखनी। रास्ते में, किसी बूढ़ी महिला को, किसी बूढ़े व्यक्ति को, अन्धे व्यक्ति को, सड़क पार करा दो, कराने के बाद आगे बढ़ जाओ, इन्तज़ार न करो कि धन्यवाद मिलेगा। भूखे को रोटी खिलाओ और वह आपके लिए कुछ कहे उससे पहले आगे बढ़ जाओ; किसी गिरे हुए को उठाओ; किसी रोगी को बचाओ; किसी घायल का उपचार करो और जब धन्यवाद और अहसान का, कृतज्ञता प्रकट करने का भाव उस व्यक्ति के मन में आए, वह आपको कुछ कहने लग जाए और आप आगे बढ़ जायें, बरसों तक सेवा करने के बाद उस व्यक्ति के द्वारा बहुत-बहुत प्रशंसा मिल रही हो और आप वहाँ से मन हटाकर के आगे चल पड़ें उस स्थिति को ध्यान में रखना और इस स्थिति को भी ध्यान में रखना कि किसी व्यक्ति की कोई चीज़ टूट रही थी, लुड़क रही थी, आपने बचाई और आपने उसको दे दी और उसने धन्यवाद भी नहीं किया, उस समय आपके मन की दशा क्या थी?

आपका मन किसी से धन्यवाद लेने के लिए तड़फ़ा नहीं, किसी के ऊपर हज़ार अहसान किए और उसने नहीं माना और उसके बाद भी आपने कहा कि कोई बात नहीं, उसका कर्म उसके साथ, मेरा कर्म मेरे साथ – अग़र ऐसी स्थिति है तो सच में शान्ति सदा रहेगी नहीं तो अशान्त होते रहोगे क्योंकि लोगों को ज़्यादा पीड़ा यही है कि हम इतना करते हैं – महिलायें कहेंगी, सारा दिन लगी रहती हूँ काम में लेकिन कभी भी घर के लोगों के मुँह से एक बार भी प्रशंसा के, सहानुभूति के शब्द नहीं कहे गए, मन में बड़ी पीढ़ा होती है, कितना भी करो लेकिन कोई खुश ही नहीं होता; तो आप जो उनसे प्रशंसा चाह रहे हैं और मिली नहीं मन में तब अशान्ति होगी।

आपने बच्चों का खूब कार्य किया, उन्हें आगे बढ़ाया लेकिन अब वह नहीं कर रहे हैं, अशान्ति होगी ज़रूर क्योंकि आप जो कुछ कर चुके अब उसका बदला चाह रहे थे आप, बदला नहीं मिल पा रहा, फल चाह रहे थे, फल की आकांक्षा है मन में तो इसीलिए अशान्ति है, फल की आकांक्षा छोड़ दी तो शान्ति आनी शुरू हो गई – यह नियम है।

धन्यवाद योग्य कार्य करने के बाद भी धन्यवाद की आकांक्षा नहीं करना, सहयोग करके सहयोग का सम्मान नहीं पाना, धर्मस्थल में जाकर के सबसे ज़्यादा सेवा करना और सबसे पीछे रहना – तो स्थिर शान्ति अपने साथ लेकर के चलना, उस स्थिर शान्ति में आपका परमात्मा मौजूद होगा और अगर आपने धर्मस्थल में जाकर भी थोड़ा-सा किया और ज़्यादा जताया, निश्चित बात है जिस जगह से दुनिया शान्ति की हवायें लेती है आप वहाँ से गर्म हवायें लेकर अपने घर जाओगे और आप कहोगे हम कहाँ पहुँच गए, यहाँ आए थे शान्ति लेने यहाँ तो अशान्ति मिल रही है; अरे, वहाँ तो शान्ति लगातार बह रही है, आपका ढंग ही अलग है इसीलिए आप वहाँ से अशान्ति लेकर आ गए।

किसी संगठन में जाकर आप अपना हुक्म चलाने लग गए हैं, आप चाहते हैं कि लोग आपके हिसाब से चलें, नहीं चल पा रहे हैं तो आपकी जो कामना थी वह पूरी नहीं हुई इसीलिए अशान्ति मिलेगी; आप लोगों से मान चाहते हो, लोगों के ऊपर रोब चलाना चाहते हो, चाहते हो न कुछ इसीलिए अशान्ति है; नहीं चाहते हो तो शान्ति है, फिर देखो, कर्म करो और तुरन्त फल मिलता है। और वैसा फल न चाहते हुए जो फल मिलता है वह शान्ति है, वह आनन्द है, व्यक्ति उसकी आकांक्षा नहीं रखेगा मतलब शान्ति की भी कामना नहीं रखेगा तो शन्ति साथ में है, प्रसन्नता साथ में है क्योंकि चाहना नहीं, न चाहते हुए, फल की आकांक्षा को हटाकर कार्य करो।

भगवान ने कहा-

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।।

उसका दुनिया में लौटना नहीं होगा, वह चक्र में नहीं फँसेगा, शरीर धारण करके रोयेगा-हँसेगा नहीं, संसार में आकर संसार की आसक्ति, मोह, प्रतिशोध, वैर के बीच में, काँटों के बीच में खड़ा नहीं होगा, कौन? कि जिस व्यक्ति में यह विशेषताएं हैं-तो विशेषताएं बताने लगे–

मतलब यह है कि जो लोग दुनिया में शरीर, धारण करके जो भी जीव आया, उसे दुनिया में आकर रोना भी पड़ेगा, हँसेगा भी सही, अहंकार भी

करेगा, गिरेगा भी सही, चोट भी खायेगा – कोई भी आया हो इस दुनिया में, क्योंकि शरीर-धारण करने का फल ही यह है, *देह धरे का दण्ड है सब कोहु को होय* – सुख-दुःख जो है यह दण्ड है शरीर धारण करने का, सबको होगा।

आदमी सोचता है कि कोई ऐसी स्थिति घट जाए यह बन्धन फिर से न हो, ज़िम्मेदारियाँ, मुसीबतें, समस्यायें, चारों तरफ़ से हम बँधे हुए हैं, कोई ऐसी स्थिति हो कि यह सब हो ही नहीं, केवल शान्ति ही शान्ति, आनन्द ही आनन्द, आनन्द में डूबते रहें जिसकी कहीं कोई सीमा रेखा न हो, जिसका कहीं कोई अन्त न हो, बरसों तक हम उस गोद में पहुँच जायें जहाँ सिर्फ़ प्यार ही प्यार है, बरसों तक हम उस, बरस नहीं एक कालातीत अवधि, सबसे सुन्दर स्थान, सबसे ज़्यादा सौन्दर्य, सबसे ज़्यादा मोहक-संगीत, सबसे अधिक रसपूर्ण स्थिति, सबसे ज़्यादा शान्ति, सबसे ज़्यादा सुखद अनुभूति, जहाँ जुड़ जाए वह कोई स्थान हो और फिर वहाँ से लौटकर पीड़ा वाली जगह पर न आए, कहते हैं न उस स्थिति का नाम है मोक्ष, मुक्ति; लौटकर इस दुनिया में न आएं जहाँ झंझट हैं; भगवान कहते हैं फिर उसके लिए एक कार्य करिये-

तद्बुद्धयस्तदात्मानत्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः – फिर आवृत्ति नहीं होगी, फिर लौटना नहीं होगा *तद्बुद्धयः* अगर हमारी बुद्धि, हमारा ज्ञान परमात्मा से जुड़ जाए। पूरी शक्ति, पूरी बुद्धि, पूरी समझ भगवान में लगा दो – *तदात्मनः* – अपना आपा उससे जोड़ दो, वह मैं, मैं वह।

जैसे वेदों में है कि कोई समय ऐसा आए कि भगवान तू मैं हो जाऊँ और मैं तू हो जाये। तरह-तरह के भक्तों ने कहा; गोपी-गीतिका में भी यही आता है कि कृष्ण कभी ऐसा हो कि तुम्हारा रूप हम धारण करें, हमारा रूप तुम धारण करो या मीरा का भाव कि नट-नागर कभी तुम भक्तों का रूप धारण करके दुनिया में खड़े होकर देखो या अलग प्रार्थनाओं में हम देखते हैं कि जहाँ कहा गया – समय आए परमात्मा तू हमारी जगह आकर खड़ा हो, हम तुम्हारी जगह आकर खड़े हों – वहाँ प्रार्थना में तो कहा गया है कि इस संसार में हमें रोता हुआ देखकर आप तो फिर भी चुपचाप बैठे रहे लेकिन भगवान जब आप दुनिया में मनुष्य बनकर के आओगे तो फिर आपको रोता

हुआ देखकर हम कभी शान्त नहीं बैठेंगे, आपको रोने ही नहीं देंगे; एक बार मौका आ जाए कि आप हम हो जायें हम आप।

लेकिन यहाँ केवल बात एक है – अपना आपा अपने भगवान में शामिल कर दो, कैसे? दयालु है प्रभु, दयालुता आपके अन्दर दिखाई दे, पूर्ण दयालुता से भरपूर हो जाओ; सर्वशक्तिमान् है मेरा प्रभु, तो आप भी अपने आपको कमज़ोर नहीं समझना और समस्त कार्यों में दूसरों की अपेक्षा नहीं करना, सब कार्य अपने स्वयं करने की कोशिश करो; न्यायकारी है वह, न्याय करने वाला है, आप भी न्याय करने वाले बनो; वह शुद्ध है, स्वच्छ है, निर्मल है, आप भी मैल से रहित हो।

जैसे-जैसे यह गुण आपके अन्दर आते जायेंगे, तदरूप होते चले जाओगे और फिर *खुदा की है इबादत यह कि खुदा-सा हो जाऊँ,* भगवान की इबादत, उसकी प्रार्थना, उसकी उपासना, उसकी भक्ति तभी चरम पर पहुँचती है जब हम उस जैसा रूप धारण करने लग जायें, वैसे ही हो जायें और अपने-आपको उसमें शामिल कर दें या फिर उसके बन्दों की पीड़ा को देखकर अपनी पीड़ा मान लें और अपनी पीड़ा मानकर अपने आपको उसमें गला दें।

देखिए बर्मा में मांग नाम का एक व्यक्ति था, जिसने अपने गांव के किसानों के साथ मिलकर, बहुत मेहनत करके एक बाँध बनाया था क्योंकि सिंचाई के लिए बड़ी समस्या थी। साधारण किसान, श्वेवू नाम को कोई ग्राम था, उसके पास में यह बाँध बनाया गया, वहीं कोई नदी भी नज़दीक थी। इन लोगों ने कोशिश की कि सिंचाई के लिए कुछ व्यवस्था ऐसी बन जाए कि बाँध बना दिया जाए, उसमें पानी इकट्ठा हो, बाद में उसी से हम लोग सिंचाई करते रहें।

सब लोगों ने मेहनत करके बाँध बनाया; दूर-दूर गाँव में ख़बर फैली के बाँध बन गया, अब सिंचाई बहुत अच्छी होगी और फसल बहुत अच्छी रहेगी। अपने प्रयास से उन लोगों ने बाँध बनाया और दुर्भाग्य यह देखिए कि बाँध बनाया और बाँध में पानी भी लेकिन बारिश इतनी होने लगी के आसपास का सारा पानी बाँध में इकट्ठा होता जाए। तो बाँध से ऊपर जब पानी भरने की

स्थिति दिखाई देने लगी तो आसपास के सारे गाँव के लोग घबराए कि अब क्या होगा?

उन लोगों ने प्रयास किया कि और कोई पानी इधर न आये लेकिन यह भी कोशिश करते रहे कि बारिश बरसने से, ऊपर से कहीं लबालब भरके पानी आए और यह बाँध टूट न जाए, तो सैकड़ों लोग लग गए बाँध को टूटने से बचाने के लिए।

सारा दिन प्रयास करते रहे; बारिश रुक नहीं रही, शाम का समय हो गया। अब रात हो गयी, बारिश फिर भी बरस रही है। तो यह मांग नाम का जो व्यक्ति था, इसने सोचा इधर तो सब लगे हुए हैं, मैं ऐसा करूँ निरीक्षण करने के लिए बाँध के चारों तरफ चलकर देखता हूँ कि कहीं कोई दरार तो नहीं आ रही। तो एक जगह जाकर उसने देखा के थोड़ा-थोड़ा पानी रिसने लगा है। इसके मन में आया कि अब इसको जल्दी से ठीक करूँ; तो मिट्टी उठाकर डालता जाए लेकिन जैसे ही पत्थर लगाए, मिट्टी लगाई, वहाँ से पानी और तेज़ बहने लगा। फिर यह बहुत ज़ोर से आवाज़ देने लगा के भाई कोई सुन रहा हो तो ज़ल्दी से इधर आ जाओ क्योंकि इधर बाँध टूटने की स्थिति पैदा हो रही है।

अब बारिश हो रही है, बिजली कड़क रही है, हवा तेज़ चल रही है, रात का समय, सब लोग जो उधर काम कर रहे हैं तो मिट्टी डालते हुए काम करते हुए उनकी आवाज़ें तेज़ आ रही हैं। इधर इस गरीब की आवाज़ भी बहुत पतली, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाए कोई सुने नहीं। बाँध बड़ा भारी। इधर की आवाज़ उधर जा नहीं पा रही है, ऊपर से भी आवाज़ बिजली कड़कने की, बादल गरजने की, तेज हवाओं की। कोई दूसरा आए, सहायता करे, वह भी स्थिति नहीं है।

आख़िर में इसने सोचा के यदि मैं ऐसे करता रहा तो बात नहीं बनेगी। इसने बहुत सारी मिट्टी अपने शरीर पर पीछे लगायी, एक पत्थर हाथ में लिया और जहाँ से पानी बह रहा था ज़ोर से वहाँ लगा करके और घास वगैरह सब वहाँ रखकर, पीठ टिका करके मज़बूती से खड़ा हो गया और लकड़ी दो ऐसी पकड़ी ज़मीन में गाड़कर के कुछ भी हो जाए धार पानी की आगे न गिर सके।

दो लकड़ियाँ लगा करके आगे उनमें अपनी टाँगों को लगाया और मज़बूती से जैसे कोई लकड़ी का तख़्ता लगा देता है बाँध के साथ, ऐसे अपना शरीर लगाकर के खड़ा हो गया। आवाज़ देता जाए कि थोड़ी देर के बाद शायद कोई सुन लेगा।

बारिश बरसती रही, हवायें तेज़ चलती रहीं, इधर पानी ठण्डा, शरीर अकड़ गया। और जब पीड़ा हो बहुत ज़्यादा, मन यह करे कि हट जाओ आगे से। फिर सोचे कि मैं अकेला बचकर कहीं भाग भी गया, आसपास के इतने सारे गाँव, इतने लोग, सब मर जाऐंगे। बात छोटी-सी है अभी, रुक सकती है; किसी तरह यह दिन पूरा हो जाए। और ऐसा करके शरीर को उसने ज़ोर से लगाया और इस तरह से अपने को फँसा लिया, लकड़ियाँ सामने लगी हुई हैं कि हिल न सकें और ऐसा किया वह व्यक्ति बेहोशी की स्थिति में पहुँच गया।

आधी से ज़्यादा रात हो गयी तब जा करके सबको ध्यान आया, क्योंकि और सब जगह ठीक करके वह लोग जैसे परिक्रमा करते हुए, बाँध का निरीक्षण करते हुए आ रहे थे, तब ढूँढ़ते हुए सोचने लगे भाई वह व्यक्ति तो दिखाई नहीं दिया। और देखा तो वह बाँध के एक जगह जहाँ पानी थोड़ा-थोड़ा रिस रहा है वहाँ से अपना शरीर लगाए हुए पड़ा हुआ है। अब इसको हिलाया तो ऐसा जैसे शरीर में प्राण नहीं हैं। अब सैकड़ों लोग लग गए उस दरार को जहाँ से पानी एकदम बाहर निकलने की पूरी-पूरी स्थिति थी उसे तो लोगों ने ठीक कर लिया लेकिन इसे लेकर वापस आ गए गाँव में।

अब जब गाँव में आए तो गाँव भर के लोग चारों ओर इकट्ठे हो गए। बड़े-बूढ़े आये उन्होंने बड़े प्यार से उसको होश में लाने की कोशिश की – कोई सिर पर हाथ फेर रहा है, कोई उस पर कम्बल डालकर बदन गर्म कर रहा है, कोई कोई चीज़ पिलाकर शरीर गर्म करना चाहता है – डबल निमोनिया जैसी स्थिति थी शरीर में। आँखें खोली उसने, थोड़ी-थोड़ी बात करता है।

सब उसे बता रहे हैं बाँध बच गया, अब कोई ख़तरा नहीं है, यह इस बार की आख़िरी वर्षा थी, अब इसके बाद बारिश भी नहीं होगी, और हम लोग सब आगे मिलकर के बाँध को इतना अच्छा बना लेंगे कि आगे फिर चाहे

कितनी भी बारिश होती रहे फिर नुक़सान नहीं होगा, लेकिन तेरी बड़ी कृपा, इतने सारे लोगों की जान तूने बचाई!

आखिरी श्वास इसके मुंह पर आया और आसमान की तरफ़ हाथ उठा करके इसने आवाज़ दे करके कहा कि – 'हे मालिक, तेरा दिया हुआ तन यह आज काम आ गया, इतने सारे लोगों को बचाने के काम आ गया। अब यह तन का फूल तेरे चरणों में अर्पित है।' और ऐसा कह करके उसने श्वास छोड़ दिये।

एक-एक व्यक्ति रो रहा है और उसे विदाई देते हुए कह रहा है – मांग तू मरा नहीं है, अब तू हर आदमी में ज़िन्दा हो गया है, अब जितने लोग हैं सब आज से तेरी तरह से ड्यूटी देंगे।

छोटा सा बच्चा पूछता है बुज़ुर्ग से – बाबा, सुना है जब मौत आती है तो हज़ार बिच्छू जैसे काटते हैं ऐसा दर्द होता है लेकिन यह तो हँसते हुए गए हैं।

बूढ़े ने कहा – इसे लेने के लिए मौत नहीं आयी थी, इसको लेने के लिए तो परमात्मा स्वयं आये थे और उन्होंने कहा कि मेरे दरबार को सज़ाने के लिए तेरे जैसे लोगों की ज़रूरत है; तू धरती का इन्सान नहीं, तू स्वर्ग का मनुष्य है।

तो आप सोचिए जिसकी बुद्धि उससे जुड़ गयी, जो उसका हो गया, *तद्‌निष्ठा* – जिसकी वफ़ादारी अपने परमात्मा में है, *तद्‌परायण:* – जो परिक्रमा करता है तो अपने परमात्मा की, कहा जाता है कि ऐसी स्थिति वाला व्यक्ति सारे संस्कार अपने धोकर, अन्त:करण को निर्मल करके, उस स्थिति में पहुँच जाता है कि फिर उसे आना नहीं होता, फिर वह संसार के चक्र में नहीं फँसता। कोई बहुत विनम्र व्यक्ति हो, विद्या से युक्त, ब्राह्मण, कोई ज्ञानी, कहीं कोई गौ, कहीं कोई हाथी, कहीं कोई कुत्ता, कहीं कोई चाण्डाल, इन सबको कोई ज्ञानी देखे और सबमें अपनी आत्मा का अनुभव करे- चाण्डाल के अन्दर भी वही आत्मा, विद्या-विनय से सम्पन्न, ऊँचाई को प्राप्त कोई मनुष्य, उसमें

भी वही आत्मा; किसी ज्ञानी के अन्दर, किसी गौ के अन्दर, किसी हाथी के अन्दर, किसी कुत्ते के अन्दर, सब में जो दृष्टि डालकर देख रहा हो और उसे नज़र जाए कि एक ही आत्मा सब में है – कहा कि जो ऐसा सम देखने लग जाए –

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।।

भगवान आगे फिर कहते हैं – काम, क्रोध से जो वियुक्त हो गया, जिसका चित्त परमात्मा में लग गया, ऐसा व्यक्ति ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त होगा और उसको पूर्ण शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होगी।

यह पाँचवा अध्याय, जिसमें भगवान उपदेश करते हुए यह भी कहते हैं – अर्जुन, जानना, जितने भी तप होंगे, जितनी भी भक्ति होगी, जितना भी ज्ञान होगा, जितनी भी सेवा होगी वह सब मुझे ही अर्पित होती है। मैं उसी का भोक्ता हूँ, उसका भोजन करता हूँ –

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।।

मैं सभी का मित्र हूँ, समस्त यज्ञों का भोक्ता हूँ, सब प्रकार के तपों का प्रसाद भी मैं ही लेता हूँ, जो भी कोई इस प्रकार के कार्य करता है उन सबका मित्र बनकर में शान्ति बाँटता हूँ, आनन्द देता हूँ, इसलिए मैं ही महेश्वर हूँ अर्जुन, अपने कार्यों को, अपने आप को मेरे अर्पण करके परम-शान्ति के अधिकारी बनो। यहाँ आकर पाँचवा अध्याय सम्पन्न होता है।

बहुत-बहुत शुभकामनायें।

अध्याय-पांच

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥१॥

हे कृष्ण, तू कर्मों के त्याग की प्रशंसा करता है और फिर निःस्वार्थ कर्म की प्रशंसा करता है। अब मुझे सुनिश्चित रूप से बता कि इन दोनों में से कौन सा अधिक अच्छा है?

श्री भगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥

श्री भगवान् ने कहा :
कर्मों का संन्यास और उनका निःस्वार्थ रूप से करना, दोनों ही आत्मा की मुक्ति की ओर ले जाने वाले हैं। परन्तु इन दोनों में कर्मों को त्याग देने की अपेक्षा कर्मों का निःस्वार्थ रूप से करना अधिक अच्छा है।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥३॥

जो व्यक्ति न किसी वस्तु से घृणा करता है और न किसी वस्तु की इच्छा करता है, यह समझना चाहिए कि उसमें सदा संन्यास की भावना भरी हुई है, क्योंकि हे महाबाहु (अर्जुन), सब द्वन्द्वों से मुक्त होने के कारण वह बन्धन से सरलता से छूट जाता है।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥४॥

संन्यास (सांख्य) और कम करने (योग) को पृथक् अज्ञानी लोग बताते हैं, पंडित लोग नहीं। जो व्यक्ति इनमें से किसी एक में भी भली भांति जुट जाता है, वह दोनों का फल पा लेता है

यत्सांख्यैः प्राप्तये स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

कर्मों का त्याग करने वाले मनुष्य जिस स्थिति तक पहुँच हैं, कर्म करने वाले लोग भी उसी स्थिति तक पहुँच जाते हैं। जो व्यकित इस बात को देख लेता है कि सन्यास और कर्म दोनों के मार्ग एक ही हैं, वही (सही) देखता है।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥६॥

हे महाबाहु (अर्जुन), सन्यास को बिना योग के प्राप्त कर पाना कठिन है, जो मुनि योग में (कर्ममार्ग मे) निष्ठापूर्वक लगा है, वह शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न पिप्यते ॥७॥

जिस व्यक्ति ने कर्ममार्ग में प्रशिक्षण पाया है और जिसकी आत्मा पवित्र है, जो अपनी आत्मा का स्वामी है और जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, जिसकी आत्मा सब प्राणियों की आत्मा बन गई है, वह कर्म करता हुआ भी कर्मों में लिप्त होता है।

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्यते तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥८॥

जो मनुष्य भगवान् के साथ एक हो गया है और जो तत्त्व को जानता है,वह देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ, सूँघता हुआ, चखता हुआ, चलता हुआ, सोता हुआ और सांस लेता हुआ यह समझता है कि "मैं कुछ नहीं कर रहा।"

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥९॥

बोलते हुए, विसर्जन करते हुए, पकड़ते हुए, आंखें खोलते और बन्द करते हुए और यह समझता है कि केवल इन्द्रियां इन्द्रियों के विषयों में लगी हुई हैं।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

जो व्यक्ति आसक्ति को त्यागकर अपने कर्मों को ब्रह्म को समर्पित करके कर्म करता है, उसे पाप उसी प्रकार स्पर्श नहीं करता जैसे कमल का पता पानी से (अछूता ही रहता है

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

योगी लोग (कर्मयोगी) आसक्ति को त्यागकर आत्मा की शुद्धि के लिए केवल शरीर, मन, बुद्धि या केवल इन्द्रियों द्वारा कार्य करते हैं।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फेल सक्तो निबध्यते ॥१२॥

योग में लगी हुई (या श्रद्धालु) आत्मा कर्म के फलों में आसक्ति को त्यागकर दृढ़ आधार वाली शान्ति को प्राप्त करती है, परन्तु जिनकी आत्मा ब्रह्म के साथ एक नहीं हुई है, वे इच्छा द्वारा प्रेरित रहते हैं और (कर्म के) फल में उनकी आसक्ति रहती है और (इसलिए) वे बन्धन में पड़े रहते हैं।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

शरीरधारी (आत्मा), जिसने मन द्वारा (आन्तरिक रूप से) सब कर्मों का त्याग करके अपने प्रकृति को वश में कर लिया है, न कोई कर्म करता हुआ और न कोई कर्म करवाता हुआ नौ द्वारों वाले नगर में सुख से निवास करता है।

न कर्तृत्वं नं कर्माणि लोकस्य सृजनि प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

सर्वोच्च प्रभु आत्मा न तो लोगों को कर्ता बनाती है, न वह कर्म करती है, न वह कर्मों का उनके फलों के साथ संयोग ही करती है। यह तो इन वस्तुओं का स्वभाव ही है, जो इस सबमें प्रवृत्त होता है।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

सर्वव्यापी आत्मा न तो किसी का पाप ग्रहण करती है और न किसी का पुण्य। ज्ञान अज्ञान द्वारा सब ओर से ढका हुआ है, इसी कारण प्राणी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

किन्तु जिन लोगों का अज्ञान ज्ञान द्वारा नष्ट हो जाता है, उनके लिए ज्ञान सूर्य की भांति परम आत्मा को प्रकाशित कर देता है।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

उसका विचार करते हुए, अपनी सम्पूर्ण चेतन सत्ता को उसकी ओर प्रेरित करते हुए, उसे अपना सम्पूर्ण उद्देश्य बनाते हुए, उसे अपनी भक्ति का एकमात्र लक्ष्य बनातेहुए वे उस दशा तक पहुँच जाते हैं, जहां से वापस नहीं लौटना होता , और उनके पाप ज्ञान द्वारा साफ हो जाते हैं।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥१८॥

पंडित लोग सुशिक्षित और विनयशील ब्राह्मण को, गाय को, हाथी को या कुत्ते या चांडाल तक को समान दृष्टि से देखते हैं।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१९॥

जिनका मन साम्यावस्था में स्थित हो गया है, उन्होंने यहीं (पृथ्वी पर ही) सृष्टि (संसार) को जीत लिया है। परमात्मा निर्दोष और सबमें समान है। इसलिए ये (व्यक्ति) परमात्मा में स्थित हैं।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

मनुष्य को चाहिए कि वह प्रिय वस्तु को पाकर आनन्द न मनाए और अप्रिय वस्तु को पाकर दुःखी न हो। जो मनुष्य इस प्रकार स्थिर बुद्धि वाला हो जाता है और किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होता, वह ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म में स्थित हो जाता है।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

जब आत्मा ब्रह्म स्पर्शों (विषय वस्तुओं) में आसक्त नहीं रहती, तब मनुष्य को वह आनन्द प्राप्त होता है, जो आत्मा में है। ऐसा मनुष्य, जिसने अपने-आपको परमात्मा (ब्रह्म) के योग में लगाया हुआ है, अक्षय सुख का उपयोग करता है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

पदार्थों के साथ) संस्पर्श से उत्पन्न होने वाले सुख केवल दुःखों को जन्म देने वाले होते हैं। हे कुन्ती पुत्र (अर्जुन), उनका आरम्भ होता है और अन्त भी होता है। ज्ञानी मनुष्य को उनमें कोई आनन्द नहीं आता।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥२३॥

जो मनुष्य शरीर त्याग करने से पहले यही इच्छा और क्रोध के आवेशों का प्रतिरोध करने में समर्थ है, वह योगी है, वह दुखी है।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

(जो मनुष्य अपने अन्दर ही सुख प्राप्त कर लेता है, जो अपने अन्दर ही आनन्द पाता है और इसी प्रकार जो अपने अन्दर ही ज्योति पा लेता है, वह योगी ब्रह्मरूप हो जाता है और वह भगवान् के परम आनन्द (ब्रह्म निर्वाण) को प्राप्त करता है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

वे पवित्र मनुष्य, जिनके पाप नष्ट हो गये हैं और जिनके संशय (द्वैत) छिन्न-भिन्न हो गये हैं, जिनके मन अनुशासित हैं और जो सब प्राणियों का भला करने में आनन्द लेते हैं, वे परमात्मा के परम आनन्द (ब्रह्म निर्वाण) को प्राप्त करते हैं।

कामक्रोधविमुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

जिन तपस्वी आत्माओं ने (यतियों ने) अपने-आपको अच्छा और क्रोध से मुक्त कर लिया है, जिन्होंने अपने मन को वश में कर लिया है और जिन्होंने आत्मा को जान लिया है, परमात्मा का परम आनन्द (ब्रह्म निर्वाण) उनके निकट ही विद्यमान रहता है।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रूवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

सब ब्राह्य विषयों को बाहर ही रोककर, दृष्टि को भौंहों के बीच में स्थिर करके, नासिका में चलने वाले अन्दर जाने वाले और बाहर निकलने वाले श्वासों को समान करके, इन्द्रियों, मन और बुद्धि को वश में कर लेने वाला, मोक्ष पाने के लिए कटिबद्ध तथा इच्छा, भय और क्रोध से रहित मुनि सदा मुक्त ही रहता है।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२९॥

वह मुनि यह जानकर कि मैं सब यज्ञों और तपों का उपभोग करने वाला हूँ, और सब लोगों का स्वामी हूँ और सब प्राणियों का मित्र हूँ, शान्ति को प्राप्त करता है।

छठवां अध्याय

आत्म उद्धार योग
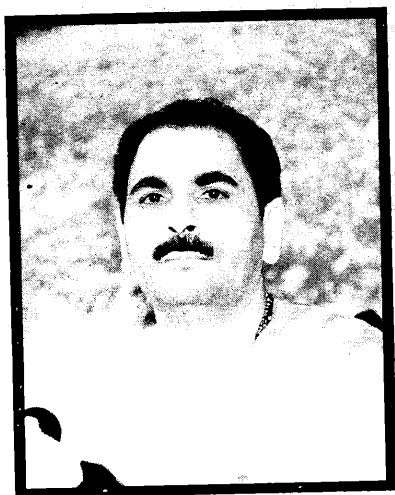
ता का छठा अध्याय बड़ा ही मार्मिक, जीवन को दिशा देने वाला, परमात्मा की ओर अग्रसर होने के लिए, जीवन का मधुर-फल प्राप्त करने के लिए, अपने आपको, अपने आत्मस्वरूप को जाग्रत करने के लिए और मानवता के उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए निर्देशन देता है।

माना जाता है कि मनुष्य जब अपने विकास पर आरूढ़ होता है तो उसका एक मापदण्ड है – योगी हो जाना और संन्यास के स्वरूप को धारण कर लेना। इसीलिए किसी भी साधु संन्यासी को देखकर परम्परा के अनुसार हमारा माथा श्रद्धा से झुकता है। देखिए, भगवान यह समझाते हैं कि कौन व्यक्तित्व इस ऊँचाई को छू पाता है, उसकी विशेषताऐं क्या होनी चाहिएं। भगवान कहते हैं–

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।।

ऐसा व्यक्ति जो कर्मफल की तरफ़ ध्यान न देकर, उस पर आश्रित न होकर कर्त्तव्य-कर्म को निरन्तर करता है; फल की आकांक्षा नहीं लेकिन कर्म करता है, कर्म से जी नहीं चुराता, *'स सन्यासी च योगी'* – जिसने संसार की आसक्ति को त्याग दिया लेकिन कर्मयोगी भी है, ऐसा व्यक्ति जो योगी भी है, कर्मयोगी; ज्ञान से परिपुष्ट, आसक्ति से दूर, निष्काम-भाव से जीवन को जीने वाला; लेकिन ऐसा जो कर्मठ व्यक्तित्व है – कहा है कि वही है जिसे हम सन्यस्त कहेंगे; ऐसा व्यक्ति ही परमात्मा को प्राप्त कर सकेगा। आगे कहा गया है – *'न निरग्निर्न'* जो अग्नि से रहित है, केवल वही नहीं संन्यासी कहलायेगा – यह बात समझने की है।

यज्ञ-याग करने का अधिकार ब्रह्मचारी को, गृहस्थ को, वानप्रस्थ को, तीनों को है लेकिन संन्यासी को नहीं है। संन्यासी को कहा है कि तुमने अग्नि में आहुति नहीं देनी है, तुम अपनी हृदय की वेदी पर ज्ञान की अग्नि जलाना,

श्रद्धा की समिधा बनाना, अपने आत्म-स्वरूप को उसमें डालना। यही तुम्हारा हवन होगा और कोशिश करना धुआं न उठे। कौन-सा धुआं? तीन तरह के धुंए बताए गए हैं – लोकैष्णा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा – हवन में धुंआ नहीं होना चाहिए, अग्नि निर्धुम जले। तो कहते हैं कि ऐसा संन्यासी, ऐसा व्यक्ति, जो हवन में आहुति डाल रहा है लेकिन जिसके हवन से धुंआ नहीं उठता – कौन सा धुंआ? लोकैष्णा का-मान पाने की कामना; वित्तैषणा – धन और संसार की सुख-सुविधाओं के साधन-संग्रह करने की भावना; उत्तैषणा – परिवार का मोह, सगे-सम्बन्धियों का मोह; यह सब छोड़कर जो बैठा हुआ है – कहा है कि उसका हवन अन्दर चलेगा; लेकिन उसके वस्त्र ज़रूर अग्नि जैसे होंगे। इसीलिए साधु के वस्त्र अग्नि जैसे वस्त्र हैं।

लेकिन भगवान कृष्ण ने कहा कि वह व्यक्ति संन्यासी नहीं जिसने हवन छोड़ दिया, वस्त्र पहन लिए। संन्यासी वह होगा – न्यास तो कर दिया, त्याग तो कर दिया है समस्त पदार्थों का, आसक्ति को सम्पूर्ण रूप से त्याग दिया; लेकिन साथ में यह भी कि फिर अब उसे यह सोचकर के कि किसी भी कर्म में हम जायेंगे तो उलझ जायेंगे, बँध जायेंगे संसार में, तो वह कर्मों को छोड़ बैठते हैं; लेकिन भगवान कृष्ण के अनुसार कर्म नहीं छोड़ने, कर्त्तव्य नहीं छोड़ने हैं, कर्त्तव्य तो निरन्तर करना है और यह सोचकर कि सेवा करेंगे, पर कामना नहीं।

महात्मा गांधी के आश्रम में एक व्यक्ति साधु के वस्त्रों में सेवा करने के लिए आया। महात्मा गांधी से उसने कहा कि मैं भी आपके साथ सेवा करने के लिए आया हूँ। आप मुझे मौका दीजिए। महात्मा गांधी ने कहा तो फिर यह गेरुए वस्त्र त्याग करके आईए। वह व्यक्ति बोला – महात्मा जी, आप क्या कहते हैं, इन वस्त्रों को त्यागूँ? उन्होंने कहा – वस्त्र बदलकर आओ अगर तुमने सेवा करनी है तो। राष्ट्र-यज्ञ में आहुति देने की इच्छा हो तो वस्त्र त्यागकर के आओ नहीं तो फिर सेवा नहीं कर सकोगे क्योंकि जब भी आप फावड़ा उठाओगे आपके गेरुए वस्त्रों को देखकर हर कोई आयेगा और कहेगा- "नहीं! नहीं! महात्मा जी आप छोड़ें, हम कर लेते हैं" और तुम्हें यह महसूस होगा कि मैं तो बड़ा हूँ वस्त्रों के कारण, वेश के कारण; सेवा से वंचित हो जाओगे। एक सामान्य व्यक्ति बनकर खड़े हो तो सेवा होगी।

सच बात तो यह है कि अग़र वस्त्रों का या वेश का मन में अहंकार आ जाए या यह कि हम तो अग्नि यज्ञ-याग से ऊपर उठ गए यह अहंकार आ जाये या फिर यह कि हम तो प्रदीप्त लोग हैं, हम तो उद्‌बुद्ध हो गये हैं तो सेवा नहीं हो सकती।

कहा जाता है – *उद्‌बुद्धयस्वाग्ने* – अग्नि तुम जागृत हो जाओ, यज्ञ करने वाला व्यक्ति अग्नि को जागृत करता है-यह सोचता है कि मेरे अन्दर अग्नि जागृत हो जाए, मैं प्रदीप्त हो जाऊँ और अंगारा बन जाऊँ, इष्टा-पूर्त्ति आदि सब पूरा करने के साथ इच्छा होती है कि समस्त कामानाओं से ऊपर उठकर सेवा के कार्यों को करता चला जाऊँ, उस समय *"अग्नाये स्वाहा" "सोमाय स्वाहा"* की आहुतियाँ देते हुए व्यक्ति कहता है कि एक तरफ़ तो मेरे अन्दर अग्नि का तेज़ हो तो दूसरी तरफ़ सौम्यता भी हो, सरलता, शिष्टता भी हो। फिर वह चाहता है अमृत ही मेरा बिछौना है, अमृत ही मेरा ओढ़ना है – मैं अमृत की ओर जा रहा हूँ। लेकिन यह सब भावनायें माँगने के बाद व्यक्ति केवल एक प्रक्रिया को ही महत्व देने लग जाए तो कहा जाता है कि फिर वह संन्यासी नहीं है।

भगवान कृष्ण ने दो शब्दों पर बल दिया – "कर्मयोगी," "सांख्ययोगी" – दोनों ही अपने स्वरूप को मिला लें, निष्काम-भाव से अपने आपको, अपने कार्यों को चलायें, फल की आकांक्षा न करें, संसार की कोई कामना मन में न रहे, सेवायें करते जायें, न ज्ञान का अहंकार, न सेवा का अहंकार, न किसी से कुछ लेने की कामना, न यह सोचना कि मैं क्या था? कई लोग साधु होने के बाद भी अपना पिछला बताते हैं – मैं यह था, इस पद को छोड़कर आया हूँ – और अग़र यह कहा जाये कि पद को छोड़कर आए हो तो इसका मतलब है कि अभी पद छूटा नहीं है क्योंकि वह याद रह गया है और जिसको अभी भी बताया जा रहा है, कितना भी कहें हम लात मारकर आ गए हैं, सब छोड़कर आ गए हैं – या तो लात मारने में कोई कमी रह गई, लात मज़बूत नहीं रही होगी या अभी भी कामनाएं हैं – वह जो छोड़ा उसमें जो कुछ जिससे अहम् पुष्ट होता था अब उसका परिचय दे रहे हैं। जो संन्यास में ऊँचाई पर पहुँच जायेगा वहाँ दृष्टि अलग़ होती है, परिवार एक अलग़ तरह का होता है।

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी सत्यं सुनुरयं दया च भागिनी भ्रता मन: संयम: शैय्या भूमितलं दिशोऽपिवसनं ज्ञानामृतं भोजन ह्यते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद् भयं योगिन: ।।

धैर्य पिता, क्षमा माता, शान्ति – शान्त रहने का स्वभाव, यह संगिनी है – पत्नी है। मन का संयम भाई हो गया, और दया बहन है। जैसे बहन आकर कहती है भाई, मैंने तुम्हारे हाथ में राखी बाँधी हैं, अब तुम मेरी रक्षा करना – तो कहा कि संन्यासी को दया की रक्षा करनी है, और माँ क्षमा है, माता की ममता को छोड़ना नहीं, पिता धैर्य है, उस धैर्य को सिर पर धारण करके चलना है, अनाथ नहीं होना। जो धैर्य छोड़ बैठा, क्षमा के गुण को छोड़ बैठा समझ लेना माता-पिता से विहीन हो गया। जिसके मन का संयम साथ नहीं दे रहा है, तो सोच लेना उसका भाई भी उससे विदा हो गया है। और जिसके साथ चलने वाली सहयोगिनी पत्नी, अर्थात् शान्ति नहीं है तो सोचना उसका घर भी उजड़ गया।

सत्यम्, सुनरयम् – एक बेटा है जिस पर आदमी जान छिड़कता है, वह सत्य है – कहते हैं यदि सत्य छोड़ दिया जाए तो बेटे से भी अलग़ हो गया। एक बहन है जिसको वचन दिया था तेरी रक्षा करूँगा, वह दया है, वह भी छोड़ दी – सब उजड़ गए। कहा साधु के लिए यह सब परिवार है – *'ज्ञानामृतम् भोजनम्'* और ज्ञान ही उसका भोजन है, इसे खाये बिना काम न चले; प्रतिदिन भोजन करे तो ज्ञान का; पढ़ा नहीं, चिन्तन नहीं किया, मनन नहीं किया, ठोकरों से कुछ सीखा नहीं, महापुरुषों की संगति से अपने आपको ऊपर नहीं उठाया तो कहते हैं फिर भूखे रह गए।

बिना खाए-पिए जैसे ज़िन्दगी नहीं चलती ऐसे ही ज्ञान के अमृत के बिना जीवन आगे नहीं चलता, *दिशोऽपि वसनम्* जिस दिशा में भी चलें गए, वस्त्र इन्सान की शोभा के लिए हैं न, उसकी सज़ावट के लिए – तो यह मानकर चलें कि सारी दिशाऐं मेरी शोभा हैं अर्थात् मुझे एक जगह टिकना नहीं है, फैल जाना है सारे संसार में। जैसे अच्छे लोगों को देखकर गुरुनानक देव जी ने कहा था न – उजड़ जाओ – मतलब बिखर जाओ, फैल जाओ सारे संसार में। जिनके कर्मों में सुगन्ध है, जिनकी वाणी में मिठास है वह एक जगह ठहरे न रहें। सारे संसार में अपनी मिठास बाँटने के लिए निकल पड़ें कि जिससे

सबका भला हो जाए। तो उनके वस्त्र दिशा हो गए, मतलब सारी दिशाओं में फैल रहा हूँ मैं, अपने वस्त्रों के अन्दर ही रहता है न इन्सान, तो सब दिशाओं के अन्दर रहना चाहिए उसको – *ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद् भयम् योगिनः* कहा कि मित्र, बताओ तो सही जिसके ऐसे-ऐसे रिश्तेदार हैं उसको दुनिया में किसी चीज़ का डर हो सकता है? वह कभी दुःखी हो सकता है? वह कभी बेचैन हो सकता है? वह कभी अशान्त हो सकता है? कि यह हैं उसके रिश्तेदार। इन रिश्तेदारों के बीच रहें, सांसारिक रिश्तेदारों के बीच नहीं और कमाल तो यह है कि और सब रिश्तेदार तो मिलकर छूट भी जायेंगे, बिछड़ जायेंगे; दुनिया के मेले में अलग़-अलग़ रिश्ते वाले लोग आकर के मिलते हैं और यहीं बिछड़ जाते हैं; लेकिन यह एक रिश्ता ऐसा है, यह रिश्तेदार ऐसे हैं कि इनको अग़र अपना सगा-सम्बन्धी बना लिया तो फिर जन्म-जन्मान्तरों तक जायेंगे और जब तक आपकी मुक्ति और परम-धाम तक नहीं पहुँच जायेंगे तब तक यह आपका साथ देते रहेंगे।

भगवान फिर आगे समझाते हैं–

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।।

यहाँ बताया गया है कि जो योग के मार्ग में चलने का इच्छुक है उसके लिए कर्म कारण हैं, साधक के लिए कर्म छूटना नहीं चाहिए लेकिन *'योगारुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते'* – योग में आरुढ़ हुए व्यक्ति के लिए एक महत्त्वपूर्ण चीज़ है – कर्म ज़रूर करें लेकिन शान्ति कमाएं, शमन कमाएं, क्षमा, आदि गुण को आधार बनाएं।

थोड़ा समझिए – कर्म करना है, शान्ति कमानी है, अशान्ति नहीं और अग़र अशान्ति आ रही है तो इसका मतलब है कर्म करने में कोई दोष है या तुम्हारी भावनाओं में कमी है, तुम्हारे सन्तुलन में कमी है; सन्तुलन थोड़ा और बनाना चाहिए। बड़ी महत्वपूर्ण चीज़ है यह। तराज़ू का ठीक तोल, जब सम तुला होती है, जब तुलना जो है, तोलना, सम हो जाता है तो वह सन्तुलन कहलाता है। और तराज़ू के दोनों पलड़े जब बराबर हो जायें और काँटा ठीक बीच में आ जाए तो वह एक सही दशा है। जब मनुष्य का मन भी यह मान-अपमान आदि जो यह पलड़े हैं इनके बीच में ठीक स्थिर हो जाए तो

फिर वह सही तोलता है, तब वह सही होता है और जब वह हिलता-डुलता है तो कहते हैं पहले तराज़ू ठीक करो उसके बाद तोलना। फिर तुम निर्णय ले सकोगे, तराज़ू तभी निर्णय दे सकेगी जब उसके पलड़े ठीक दशा में सही दशा में आ जाएं, दोनों समान; आपका मन भी सही निर्णय तभी लेगा जब यह सन्तुलन में होगा। जब यह मान-अपमान के पलड़े इसके एक जगह आकर ठहर जायेंगे – कि न मान से खुश है, और न अपमान से दुःखी है – दोनों अवस्थाओं में एक जैसा जब बन जाता है तब यह सही निर्णय देगा और तब आपका भला करेगा नहीं तो गिरायेगा संसार में! यह बात याद रखना-जिधर भी यह झुकेगा उधर ही ग़लत करता है। दोनों के बीच में खड़ा कर दो।

कबीरा खड़ा बाज़ार में सबकी माँगे खैर ।
ना काहु से दोस्ती ना काहु से बैर ।।

– न कोई दोस्त, न दुश्मन, दोनों के बीच में जाकर खड़ा हो गया। मन विचित्र है, स्थिर होना नहीं जानता। रिश्तों के बीच जायेगा, रिश्तों की स्मृतियों को लायेगा, उनसे जो कामना करता है उनके सपने बुनेगा। घड़ी के पैन्डुलम की तरह कभी दाँये, कभी बाँये, कभी आगे, कभी पीछे जाता है मन हमारा – अतीत की बातें सोचेगा, भविष्य के सपने बुनेगा, वर्त्तमान में ठहरता नहीं। कभी भी आप सोचना – आपका मन तो वर्त्तमान में होता ही नहीं; जो हैं, जहाँ हम हैं, वहाँ शान्त, आनन्दित, प्रसन्न हों, वहाँ हम ठहर नहीं पाते।

विचित्र बात देखिए, भविष्य का डर मन में, वर्त्तमान में चिंतित, भूतकाल की सुखद स्मृतियाँ, उन सब का तालमेल बनाया हुआ है। जो बीत गया वह तो लौटेगा नहीं। जो अभी आया नहीं वह भविष्य दूर है लेकिन हमने किया क्या – आने वाले भविष्य को, आने वाले समय को याद करके उस समय के भय को खींच-तान करके आज वर्त्तमान में ले आये-जो हमारा भविष्य है। कभी भविष्य में कोई पीड़ा आयेगी उस डर को ध्यान में रखकर, उस डर को खींचकर हम आज पर ले आये। आज जो हमारा अच्छा था, जिसमें हम खुश हो सकते थे, उसको भी डर खींचकर उसके सामने लाकर खड़ा कर दिया; तो आज की खुशियाँ भी हमने खराब कर ली और भविष्य की परेशानियों को तो हमने मोल ले ही लिया। इसीलिए हमारे जीने का अंदाज़ दुःखभरा हो जाता है; कल की बात कल देखेंगे, जो आज है उसको जी भर के जियो।

एक और बात याद रखना – यह जो आज है, यह आज ही कल में ढलेगा, बीते हुए कल में और यह आज पर ही आने वाला कल स्थिर होगा। भविष्य भी आज पर आता जा रहा है और जो आज था वह थोड़ा-सा बीतता जा रहा है और वही अतीत होता जा रहा है। पॉस्ट भी यही होता जा रहा है और फ्यूचर वर्त्तमान में ढलता जा रहा है। अच्छा हो, आज को संभाल लो, भविष्य भी सम्भलेगा, अतीत भी ठीक हो जायेगा। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था –

उज्जवल अतीत था
भविष्य भी महान है
सम्भल जाये
यह जो
वर्त्तमान है।

–यह जो तुम्हारा वर्त्तमान है अगर यह सम्भल जाये तो भविष्य भी तुम्हारा महान् और अतीत भी तुम्हारा उज्जवल। आज में जियो। वर्त्तमान में स्थिर हो जायें, संतुलन को बनायें, शान्ति आयेगी। इसीलिए आगे कहा–

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

– अपना स्वयं का उद्धार स्वयं करो। अपने आपे का उद्धार अपने आप ही करो – *नात्मानमवसादयेत्* – अपने आपे को कभी निराश न करो, नीचे नहीं गिराओ *आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः* – आपका अपना आपा ही आपका मित्र है, *आत्मैव रिपुरात्मनः* – अपना आपा ही आपका दुश्मन भी है अर्थात् तुम स्वयं के मित्र भी हो और स्वयं के दुश्मन भी हो। अपना उद्धार स्वयं करो और अपने आप को खुद नीचे न गिराओ, अवसाद ग्रस्त न करो क्योंकि तुम ही अपने मित्र भी हो और तुम ही अपने शत्रु भी हो–बड़ी गहरी बात है और बहुत प्यारा उद्‌बोधन है – कि जानो तुम अपने स्वयं के शत्रु भी हो, मित्र भी हो। अपने आपे को गिराओ नहीं ऊपर उठाओ – कैसे? वेदों में कहा गया है –

स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व,
स्वयं वाजिन् तन्वं कल्पयस्व
ते महिमाऽन्येन न संनशे

तुम्हारी महिमा को कोई दूसरा नहीं समझेगा, *स्वयं यजस्व जुषस्वः* स्वयं ही महान् पुण्य कार्यों को करो और फिर उनका आनन्द लेना सीखो। पूरे समाज को आनन्दित करके आनन्दित हो, *महिमा ते अन्येन संनशे* – तेरी महिमा को कोई दूसरा समझने वाला नहीं। दुनिया का बड़े से बड़ा हाथ तुझे बड़ा बना नहीं सकता, तुझे बड़ा बनने के लिए अपने हाथ को ही बड़ा करना पड़ेगा, अपने आपको ही ऊँचा करना पड़ेगा, अपने विचारों को ऊँचा करना पड़ेगा। तुम्हारा भाग्य बदलने के लिए कोई अवतार लेकर आयेगा ऐसा मत सोचना, परमात्मा ने तुम्हारे अन्दर अवतरण कर लिया है, अपने को पहचान लो, तुम ही जागृत हो जाओ तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। अपना उद्धार स्वयं कीजिए।

ऐसा समझिये कि निराशायें जब आपके अन्दर आयेंगी आप नीचे गिरते हैं और जिस समय आपके अन्दर महान् विचार जागृत होते हैं तो आप ऊँचे उठते जाते हैं। हीनता के विचार कभी नहीं आने चाहियें। कई लोग अपने आपको कोसते रहेंगे, दोष देते रहेंगे, बुरा-भला कहते रहेंगे – दुर्भाग्य है हमारा, क़िस्मत ख़राब है, समय ठीक नहीं चल रहा – ऐसी भाषा बोल-बोल कर अपने आप को निराश करते हैं। और इतना ज़्यादा भाग्य से अपने मन को ग्रस्त कर लेते हैं, हर बात में आशंका, जिधर जा रहे हैं शायद इधर दिशा-शूल है, शायद बिल्ली आगे से चली गई है इसीलिए उसने गड़बड़ कर दी सारी की सारी; किसी ने टोक दिया लक्षण ठीक नहीं रहा, काम पर जा रहे थे किसी ने पीछे से आवाज़ दे दी, अब नहीं काम बनने वाला; फलाना आदमी मनहूस है एकदम सामने आकर खड़ा हो गया, इसको किसी दिन देख लिया बस काम बिगड़ता ही बिगड़ता है।

मुझे ध्यान है एक व्यक्ति मेरे पास आकर बैठा करता था और उसके बारे में पूरे मोहल्ले में प्रचलित था कि यह आदमी बड़ा मनहूस आदमी है। मैं किसी भी कार्य पर जाता था मैं उसको बुलाकर कहता था, भाई, आप मेरे से आकर मिलो, आपको देखकर जाऊँ तो मेरा काम बने और जब मैं काम से लौटकर आऊँ तो आते ही उसे बताऊँ कि आज तुम्हारे कारण काम बहुत अच्छा हुआ। कई बार तो वह रोने लगा, कहने लगा मेरे घर के लोग भी मुझे मनहूस मानते हैं। मैंने कहा पर मेरे तो सारे काम बनते हैं! बोले मेरा मन रखने के लिए कह रहे हो। मैंने कहा इस दुनिया में न कोई मनहूस है, न कोई

सौभाग्यशाली। जिस आदमी के कर्म ख़राब हैं वह स्वयं के लिए मनहूस हो सकता है, दुनिया के लिए तो मनहूस हो ही जायेगा अपने कर्मों को ख़राब करके और न मिलने से कोई फ़र्क पड़ता है।

मुझे तो ध्यान है कि पाँव के ऊपर चोट लगी बिल्ली आई, हम लोगों ने उसकी टाँग के ऊपर दवाई डाल दी ऊपर से; उछलती हुई, चिल्लाती हुई गई लेकिन दो दिन के बाद उसको आराम मिला, फिर आई, लेकिन दवाई नहीं डलवाई उसने, डरती रही और जब ठीक हो गई तो हम लोग आज तक देखते हैं, हर दूसरे-तीसरे दिन के बाद रात्रि में दस-साढ़े दस बजे घर में कूदकर के आती है और आकर के दूध पी करके जायेगी और हम लोग उसी को देखकर के बाहर निकलते हैं। हमारा तो कोई काम बिगड़ता नहीं बल्कि सारे बनते जाते हैं। न जाने लोग क्यों ऐसा बोलते हैं? आप कहेंगे पाली हुई बिल्ली है। नहीं भाई, जंगली बिल्ली है, कोई हाथ नहीं लगा सकता उसको लेकिन मुझे यह पता है कि जब वह पास आयेगी, दूध भी पियेगी तो पहले एक बार उसके सिर पर हाथ लगाऊँगा तब जाकर दूध पीयेगी।

तो अगर हम लोग यह सोचें कि किसी के, किसी पशु-पक्षी के सामने से जाने से हमारा कुछ बुरा-भला हो जायेगा तो यह बहुत ग़लत बात है। मनुष्य अपने आप को नीचा गिराने के लिए न जाने किस-किस तरह की कथायें प्रचलित कर लेता है – इन सब चीज़ों को तोड़कर चलो। परमात्मा को मानते हो न, परमात्मा के नाम में इतनी शक्ति है कि कोई अपशगुन, अपशगुन नहीं हो सकता। परमात्मा के नाम का सहारा लो आप।

इसीलिए निवेदन करूँगा कि अपने आपको विचारों से नीचे न गिराओ। हम लोगों का पतन भी तब हुआ है जब हम ग़लत तरह की परम्पराओं को अपने दिमाग़ में लेकर बैठ गये। कई लोग सोचते हैं हमारे ऊपर फलाने ने कुछ कर दिया है, व्यापार बाँध दिया, सारी ज़िन्दगी ख़राब हो गई। अब हम कुछ कर नहीं पायेंगे। फिर तो सरकार को फौज़ रखने की ज़रूरत ही नहीं है, ऐसे ही लोगों को बुलाकर बैठा देना चाहिए वहाँ बॉर्डर पर कि बस यहीं से मन्त्र पढ़ो और दुश्मन को बाँध कर रखो। यह अज्ञानता है हमारी। आपका अपना आपा आपके स्वयं के वश में होना चाहिए।

भगवान कृष्ण ने एक नयी-क्रान्ति की। अपने स्वयं के भाग्य-निर्माता बनो, अपना उद्धार स्वयं करो। अपना कल्याण करना चाहते हो तो इसके लिए कोई और आने वाला नहीं है। स्वयं ही आपको आगे बढ़ना होगा – *नात्मानमवसादयेत्* – अपने आप को कभी निराश मत करो। वेदों में भी यही उपदेश है

मा गतानामादिदिथा ये नमन्ति परावतम्

विगत-बीता हुआ कल और कल की बातें, उनको याद करके दु:खी न हो। आने वाले भविष्य को भी ध्यान में रखकर के डर मत, उन विचारों को भी अपने अन्दर न आने दें – *ये नमन्ति परावतम्* – जो तुम्हें निराशा की गहरी खाईयों में ले जायें – *आरोह तमसो ज्योति:* – अन्धेरे से प्रकाश की ओर बढ़। *तो हस्तम् रभामहे*

भगवान आगे कहते हैं मैं तेरा हाथ पकड़ लूँगा तू कर्म करने के लिए आगे तो आ, मैं तेरा सहारा बन जाऊँगा। यह ऋग्वेद का मन्त्र है।

तो आप सोचिए कि परमात्मा भी आपका सहारा तभी बनेंगे जब आप कर्मशील होंगे। जब अपना उद्धार स्वयं करेंगे। भगवान ने आगे फिर कहा–

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।

कहा *अनात्मनस्तु* – जो अपने आपको अपने आपे के साथ, अपने स्वयं के साथ शत्रुता की तरह से व्यवहार करता है, वह आदमी स्वयं का दुश्मन है। जो अपने आपको जीत लेता है उसने अपने आपे को अपना मित्र बना लिया। अब वह ऊँचाई पर चढ़ेगा, आगे से आगे बढ़ेगा।

आदिशंकराचार्य ने एक बड़ा सुन्दर-सा शब्द कहा – *जगत् जितं केन?* संसार को किसने जीता? उत्तर दिया – *मनो हि येन* – जिसने मन को जीत लिया। फिर पूछा – *के शत्रव: सन्ति?* कौन शत्रु है – तुम्हारा शत्रु कौन है? तो उत्तर दिया-तुम्हारा अपना आपा, तुम्हारी इन्द्रियाँ, तुम्हारे मन, *निजेन्द्रियाणि* – तुम्हारी इन्द्रियाँ; तुम्हारे शत्रु कोई और नहीं तुम्हारी इन्द्रियाँ तुम्हारी शत्रु हैं। कहा – फिर मित्र? उत्तर दिया – *इन्द्रियाणि* – तुम्हारी इन्द्रियाँ। पूछा कैसे? उत्तर दिया – *जितानि यानि* – अगर तुमने इनको जीत लिया तो फिर यह

इन्द्रियाँ तुम्हारी मित्र हो गईं और अगर यह तुम्हारी मालिक बन गई तो समझ लेना यह मालिक नहीं यह तुम्हारी शत्रु हैं; तुम्हारा भला नहीं होगा, तुम गिरोगे।

किसी भी अन्दाज़ से कहिए-बात वही है-तुम अपने स्वयं के शत्रु भी हो तुम अपने आप के मित्र भी हो। जाग जाओ तो तुम्हारा आपा तुम्हें इतना ऊँचा उठायेगा कि संसार देखकर हैरान; और गिरने लग जाओ तो संसार को हँसने का मौका मिल जाएगा।

इसीलिए ज्ञान आचरण की चीज़ है, ज्ञान वह प्रकाश है जिससे आप स्वयं के जीवन को प्रकाशित करते हुए संसार को रोशनी दोगे। अन्यथा फिर यही होता है-कहा जाता है- गर्धभ महाराज, गधे जी, कभी किसी समय स्वर्ग में थे और क्योंकि बड़े शान्त दिखाई देते थे, सरल दिखाई देते थे, तो कुछ ज़िम्मेदारी के काम भी इनको दिए गए। एक दिन ऐसा हुआ कि ब्रह्मा जी संसार का कानून लिख रहे थे पत्तों के ऊपर और लिख रहे थे तो रात्रि में; और सब सोए हुए, गधे महाराज जाग गए। उन्होंने सोचा कि विधाता जब अपना ज्ञान लिखकर के बैठें तो उसके बाद इनके हाथ लगे हुए उन पत्तों को थोड़ा चख़ करके देखते हैं। तो विधाता तो चले गए और गधा आया और उसने आकर पत्तों को थोड़ा-थोड़ा चख़ना शुरू किया, जीभ पर नियन्त्रण नहीं रहा और सारे पत्ते खा लिए और जैसे ही पत्ते सब खाए, सवेरे विधाता और समझ गए कि यह सारा कार्य अगर किसी ने किया है तो उसी गर्धभराज ने किया है। विधाता ने गुस्से में आकर के कहा कि तुझे फेंक रहे हैं ज़मीन पर; उठाया और स्वर्ग से नीचे फेंक दिया।

लोगों ने कहा गधे से – भाई तेरी बड़ी बेइज्ज़ती हुई, बड़ा अपमान हुआ; बोला – कोई बात नहीं है, सारा ज्ञान तो मेरे पेट में ही है, भगवान का सारा ज्ञान मेरे पेट में है और बड़ी ऊँची आवाज़ में बोला – सुनो भाई, मैं चर गया ज्ञान, सब ज्ञान मेरे पेट में है, अब आप सब मेरी मानना, मेरे पीछे चलना, मेरे हिसाब से चलना और जो मेरे पीछे आ जायेगा वह महान हो जायेगा।

लेकिन कोई पास नहीं आया क्योंकि सब जानते थे कि ज्ञान चरने की चीज़ नहीं है, आचरने की चीज़ है, आचरण में आ जाए तो कल्याण हो जायेगा, पेट में रखने की चीज़ नहीं है, दिमाग़ में रखने की चीज़ है, ज्ञान बुद्धि में आए, बुद्धि में आए और आचरण में प्रकट हो तो कल्याण करेगा।

कहा जाता है कि आज भी उसकी आत्मा किसी न किसी के अन्दर घुस कर के बोलती है; कभी राजनेता के अन्दर, कभी किसी उपदेशक के अन्दर आकर के कहती है कि मेरे पेट के अन्दर मैंने सारा ज्ञान रखा हुआ है, सब चर गया हूँ, सारी किताबें पढ़ गया हूँ लेकिन सच बात तो यह है कि जिसका सम्बन्ध अपने परब्रह्म से जुड़ा हुआ है, वहाँ से जोड़ लगाया नहीं गया, जो बैठता है उससे रोज़ तार जोड़ने के लिए मन को, बुद्धि को, आत्मा को अर्पित कर रखा है उसने और अपने आपको मानता है कि मैं तो कुछ हूँ ही नहीं, मेरे पास क्या ज्ञान, जो वह बुलवाए मैं बोलता हूँ, जो वह कहता है वही करता हूँ, बस कहते हैं कि वह घोषणा नहीं करता कि आओ मेरे पीछे लगो, लोग तो अपने आप उसके पीछे लग जाते हैं। इसीलिए ध्यान रखना कि यह आचरण की चीज़ है, कथन की नहीं।

सुकरात के पास एक दिन उसके मित्र आए। कहने लगे – भाई, हम सब साथ-साथ पढ़े हैं, जितना ज्ञान हमने प्राप्त किया उतना ही ज्ञान तूने भी लिया लेकिन तेरे पास ऐसा क्या है जो लोग तेरे पीछे-पीछे घूमते हैं? ऐसा तू क्या जानता है जो हम नहीं जानते? लोग तेरे पीछे लगे हुए हैं हमारे पीछे क्यों नहीं लगे?

सुकरात ने उनके लिए पानी नाश्ते का इन्तज़ाम कर उसे स्वीकार करने का निवेदन किया तो वह कहने लगे हमें इस सब की कोई आवश्यकता नहीं है, हम तो केवल यह जानने आए हैं कि तू ऐसा क्या जानता है जो लोग तेरे पीछे चले आते हैं? बड़े नम्र भाव से सुकरात ने उत्तर दिया- 'बस, मैं केवल अपने बारे में इतना जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता' अर्थात् सुकरात ने कभी ज्ञानी, विद्वान, बुद्धिमान् होने का दावा नहीं किया, जो परमात्मा की आज्ञा रही उसे वह पूरा करते रहे।

अपना कल्याण करना है तो यह जो हमारी इन्द्रियाँ, यह जो स्वाद में आकर के हम लोग सब कुछ चरने को तैयार बैठे हुए हैं, यह स्वर्ग से गिरने के लिए कारण हैं और नियन्त्रण कर लेने का मतलब है स्वर्ग की तरफ़ चल पड़ना, अपने प्रभु की तरफ़ हो जाना।

भगवान आगे कहते हैं–

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।

अपने आप को जिसने जीता, सदैव शान्त है, शान्त ही नहीं प्रशान्त, प्रकृष्ट रुप से सदैव शान्त रहे, *'परमात्मा समाहितः'* – अपने आपे को अपने भगवान में समाहित कर लिया, जोड़ लिया; *शीतोष्ण* – गर्मी आए या सर्दी; *सुखदुःखेषुः* – सुख और दुःख; *तथा मानापमानयोः* – मान या अपमान हो उन सबकी धाराओं के बीच जिसके नियम नहीं बिगड़ते, जिसका सन्तुलन नहीं बिगड़ता, जिसकी व्यवस्था में कोई भंग नहीं पड़ता, सदैव अपने व्रत में लीन अपना कार्य करता जाता है; गर्मी-सर्दी आए उसका नियम नहीं बिगड़ता – ठीक समय बैठता है, आराधना करता है; सुख हो या दुःख हो – सेवा करनी है तो सेवा के कार्यों में चल पड़े, आत्म-उत्थान के लिए साधना में बैठना है शरीर की परवाह न करके ठीक समय पर उसी तरह से बैठ जाए, आलस्य न करे, सुख-दुःख की अनुभूतियाँ सामने हों तो घबराए नहीं; मान और अपमान सामने आ जाए तो भी अपना कार्य निरन्तर करता चला जाए, कहते हैं जो ऐसी स्थिति में पँहुच गया–

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा – ज्ञान-विज्ञान से जिसने अपनी आत्मा को तृप्त कर लिया; *कूटस्थो विजितेन्द्रियः* – जो कूटस्थ हो गया, ऊँचाई पर बैठा हुआ है, अपने आप में स्थिर है; *विजितेन्द्रियः*-अपने आपको जिसने जीत लिया, अपनी इन्द्रियों को जिसने जीत लिया; *युक्त इत्युच्यते* – वही योगी कहलायेगा, वही समाहित कहलायेगा, वही परमात्मा से जुड़ा हुआ कहलायेगा; *योगी समालोष्टाश्मकाञ्चनः* पत्थर, ढेला, सोना, सबको एक समान जो देखता हुआ निकलता है, ऐसा व्यक्ति योगी है, यहाँ आकर परिभाषा दी गई।

तो चरम पर पहुँचने के लिए, शिखर पर पहुँचने के लिए, भक्ति के आसन पर आरुढ़ होने के लिए, योग साधने के लिए, संन्यास की ऊँचाई पाने के लिए, सिद्धि प्राप्त करने के लिए, स्वयं सिद्ध हो जाने के लिए, अपनी ऊँचाई को देख लो क्या ऊँचाई होनी चाहिए? ,

ऊँचाई का लक्षण दिया – सामने सोना पड़ा है, फूल, स्वर्ण, पत्थर पड़ा है, मिट्टी का ढेला पड़ा है। पत्थर से मतलब हीरे-जवाहरात हो या साधारण पत्थर, पत्थर में पत्थर ही दिखाई दे; दूसरे शब्दों में कहा जाये तो – संसार के सारे पदार्थ मिट्टी दिखाई दें; देखिये मिट्टी से गेहूँ पैदा हुआ, गेहूँ से आपने जो रस ग्रहण किया उससे रक्त बना, शरीर में कान्ति आई और फिर यह शरीर जला दिया गया, राख़ बनी और फिर मिट्टी में पहुँच गई। तो कबीर ने जैसे कहा था न – जिसका भाव है कि – मिट्टी के इस पुतले ने मिट्टी खाई, मिट्टी फैंकी और मिट्टी में मिला – कहा यह सब मिट्टी है, मरते हैं यह, मिट्टी में मिलने वाला है यह, मरणधर्मा है यह शरीर-तो मान लेना कि यह सब मिट्टी है-मिट्टी का चोला मैंने पहना, मिट्टी में बाद में गलेगा यह, लेकिन मैं जो पहनने वाला हूँ, मिट्टी के मकान में रहने वाला, मैं कभी मिट्टी होने वाला नहीं हूँ, इससे ऊपर हूँ-कि अपने आपे को इस रूप में जानो-पत्थर सामने हो या मिट्टी का ढेला या सोना – न कोई कीमती, न कोई पदार्थ महत्वपूर्ण क्योंकि तुमने इन सबसे कुछ लेना ही नहीं – जैसे राका और बाका ने किया था।

राका साधना करते-करते ऊँचाई पर पहुँचा, पत्नी सहयोगिनी है क्योंकि वानप्रस्थी है – अब पत्नी पति से कहती है कि रोज़ अपना शरीर चलाने के लिए हम लोग थोड़ा बहुत कार्य करते हैं – पेड़ों से जो सूखी लकड़ियाँ होती हैं, टूट जाती हैं, तो उनको हम लेकर बाज़ार में बेचते हैं, तो चलो अब समय हो गया है उनको हम बेचकर आते हैं।

लकड़ियाँ लेकर के चले, पति आगे और पत्नी पीछे, दोनों के सिर पर गठरी, लकड़ी की गठरी रखी हुई है, लक्कड़ का गठ्ठर रखकर दोनों चल रहे हैं। पति ने देखा कि सामने सोने के सिक्के पड़े हुए हैं; ध्यान में आया कि कहीं ऐसा न हो कि पत्नी देख ले और उसके मन में मोह जाग जाये और उसकी भक्ति छूट जाये; तो उसने जल्दी से उठाई मिट्टी और सोने के ऊपर डाल दी। मिट्टी से ढककर ज़ल्दी से उठना ही चाहता था, पाँव लगा, थोड़ी मिट्टी हट गई, कुछ सिक्के चमकने लगे, इतनी देर में पत्नी पीछे से आ गई; पूछा- 'क्या कर रहे थे आप?'

राका ने कहा – 'इन सिक्कों पर मिट्टी डाल रहा था कि कहीं तुम्हारा मन धन की तरफ़ न चला जाये और तुम्हारी भक्ति न छूट जाए क्योंकि अग़र पदार्थों का आकर्षण मन में जागेगा तो फिर जिसका आकर्षण जागता है, ध्यान फिर वहीं जाता है; तुम्हारा ध्यान परमात्मा से हट जायेगा, संसार की तरफ़ चला जायेगा'। उनकी पत्नी ने इतना ही कहा कि भक्ति करते-करते, साधना करते-करते, उम्र गुज़र गई लेकिन आज भी आपको मिट्टी और सोना अलग़-अलग़ दिखाई देते हैं तो क्या अपना कीमती समय मिट्टी पर मिट्टी डालने में बेकार करोगे या फिर अपनी मिट्टी से ऊपर उठकर के अपने परमात्मा को याद करके अपना कल्याण करोगे? अब तो यह दिखाई नहीं देना चाहिए।

राका ने अपनी पत्नी की तरफ़ देखकर कहा – 'तेरा वैराग्य तो बड़ा बाँका है, तेरा वैराग्य बड़ा प्यारा है क्योंकि तेरा मन अब इतना स्थिर हो गया, मिट्टी और सोना एक ही दिखाई पड़ रहा है, अब कोई लेना-देना नहीं है, सोने को देखकर आकर्षित नहीं होना; जैसे मिट्टी को कोई उठाये नहीं घूमता, मिट्टी हर जगह है, ऐसा ही तुम्हारा मन हो गया तो इसका मतलब तुम्हारी भक्ति स्थिर हो गयी।'

तो भक्ति में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि व्यक्ति ऊँचाई पर चलता-चलता संसार के प्रलोभनों से ऊपर उठ जाए। धन फेंक दे बात यह नहीं है क्योंकि बहुत-ब्रहुत संन्यासी इस बात को इस रूप में ग्रहण करते हैं – धन को छूना नहीं और कार्य संसार के धन से चलते हैं।

विदेश में एक साधु कहने लगे कि आप ऐसा करें कि एक कोई शिष्य दे दीजिए, मैं चाहता हूँ कि ज़रा, जो लोग पैसे चढ़ाते हैं वह मुझे स्वयं उठाने पड़ते हैं और मैं कभी पैसे को हाथ नहीं लगाता, मेरे लिए परेशानी होती है। तो आप ऐसा करें कोई एक चेला दे दें जो पैसे उठा लिया करे और बाद में मेरे बैंक में रख दे; आदमी ज़रा भरोसे का होना चाहिए, ईमानदार होना चाहिए। मैंने पूछा-आप पैसे नहीं छूते हैं? बोले हम पैसे को स्पर्श नहीं करते हैं, माया को पकड़ने से माया मन को पकड़ती है। मैंने महात्मा जी से कहा कि अग़र ऐसी बात है तो आप कोई बन्दा जब तक नहीं मिलता तो रुमाल से पकड़

लिया करो अपने या कोई दस्ताने वगैरह खरीद लें उसको हाथ में चढ़ाकर तब पैसा पकड़ा करें। वह मेरे से बोले – विनोद कर रहे हैं? मैंने कहा महात्मा जी पैसा पकड़ लेने से गड़बड़ नहीं होती, यह पैसा जब मन को पकड़ लेता है तब गड़बड़ होती है। हमारा मन पैसे को न पकड़े भले ही, हाथ से पैसा पकड़ते रहें – संसार के व्यवहार तो चलाने हैं, जब तक शरीर है संसार के साधन चाहिएं, संसार के साधनों को लेकर चलिए, सोना आपके सामने है उपयोग कर लीजिए लेकिन उसको सिर पर धारण करके न चलें, उसको चिन्ता का कारण मत बनाओ अन्यथा जीना मुश्किल हो जायेगा। इसीलिए ज़्यादातर साधुओं के लिए यही निर्देशन दिया गया है –

साधु गांठ ना बांधते उदर समाता ले।
आगे पीछे हरि है जब माँगे तब दे।।

भगवान आगे पीछे खड़े हुए हैं जब ज़रूरत पड़ेगी मिल ज़ायेगा। क्यों दु:खी हो? लेकिन हैरानी यह है-हरिद्वार में एक आश्रम में प्रवचन करने हम बैठे – एक बैंक मैनेज़र मिलने के लिए आए, हमने कहा – 'सत्संग सुनने आये हो? बोले – नहीं, महात्माजी से मिलने आए हैं, उनका ख़ाता हमारे बैंक में है न। मैंने कहा आप सत्संग का लाभ नहीं लेते? बोले नहीं सत्संग का लाभ तो हम लोग नहीं ले पाते लेकिन पैसों का लाभ तो हम लोगों को मिलता ही रहता है क्योंकि हमारा जो बैंक चल रहा है वह गृहस्थियों के भरोसे तो चल नहीं रहा, साधुओं के भरोसे चल रहा है, यहाँ सब आश्रमों के पैसे हमारे बैंक में ही हैं। और सबसे ज़्यादा झगड़े भी आश्रमों में हैं। छोड़ने का उपदेश करते-करते स्वयं पकड़ बैठे और ऐसे पकड़ बैठे कि अब जकड़ लिया है उस माया ने, उस कम्बल को अब हम छोड़ना भी चाहें तो वह कम्बल अब हमें छोड़ने भी नहीं देता, लड़ाई-झगड़े हैं खूब सारे।

गृहस्थी घर बनाता है, साधु आश्रम बनायेगा-बात तो वही है, वैसे ही पचड़े हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि गृहस्थी घर बनाना छोड़ दे और साधु को आश्रम नहीं बनाना चाहिए; बनायें, ज़रूर बनायें, उसकी उपयोगिता है, लेकिन वह आश्रम तो ध्यान के, साधना के, तपस्या के प्रयोगशालायें होनी चाहियें, वह तो ऐसे अस्पताल होने चाहिएं जहाँ पापों से ग्रस्त लोग, बीमार लोग, अपनी आत्मा को धोने के लिए आयें और अपना निखार लेकर के वहाँ

से जायें; जब वहाँ से शुद्ध होकर के जायें तो लोग कहें कि अस्पताल से ऐसे शुद्ध होकर के आये हैं कि अब आत्मा स्वच्छ हो गई और हम स्वस्थ हो गए, आनन्द से भरपूर हो गए हैं, इसीलिए आश्रम बनने चाहिए। आश्रम कल्याण के लिए हों, जन-कल्याण के लिए, तब तो वह आश्रम, आश्रम है नहीं तो सारी सम्पत्ति आश्रमों में लग गई तो फिर कल्याण होने वाला नहीं।

'माया महा ठगनी हम जानी' कबीर ने कहा न कि माया तू बड़ी ठगनी है न जाने किस-किस को ठग लिया तूने।

एक स्थान पर आता है कि कबीर और उनका बेटा – कमाल खड़े हुए थे तो कोई राजा अँगूठी लेकर के आए और कबीर से बोले – हीरे की अँगूठी है। कबीर ने कहा – हम नहीं लिया करते, जाओ यहाँ से। राजा ने अँगूठी का हीरा थोड़ा उठाकर दिखाया, बोला – महाराज, देख तो लो, आपके काम आ सकती है। कबीर ने उस अँगूठी को देखकर कहा, माया को देखकर कहा-

ठगनी क्या मैना झमकावे तेरे हाथ कबीर न आवे।

तेरे हाथ कबीर आने वाला नहीं है, भाग।

यह वह लोग थे कि जिनको कभी भी, किसी प्रकार से, माया खींच नहीं पाई, संसार बाँध नहीं पाया, संसार से ऊपर उठकर जीते रहे लेकिन धन का, संसार के पदार्थों का उपयोग किया। तो कहा कि जैसे – कूटस्थ शब्द का प्रयोग यहाँ किया गया है- ऊँचाई पर स्थित कोई दृष्टिपात करके संसार को जब देखता है तो सब एक साथ दिखाई देता है, तकता नहीं, आकर्षित नहीं होता, एक बार देखा दूसरी तरफ़ दृष्टि। मतलब क्या हुआ? अपने आपको इतनी ऊँचाई पर स्थिर करो कि संसार का कोई आकर्षण, कोई वैभव बाँध न पाये; ज्ञान-विज्ञान से आत्मा को तृप्त करो, तुम्हारी आत्मा ज्ञान और विज्ञान से इतनी तृप्त हो जाए, पूरी भर जानी चाहिए।

मनुष्य के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ है – ज्ञान। जितना-जितना अज्ञान में मनुष्य जीता है उतना-उतना अशान्त रहता है, ज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता जाता है विकास होता जाता है।

भगवान कहते हैं ज्ञान भी और विज्ञान भी, संसार का ज्ञान भी परमात्मा का ज्ञान भी, दोनों आने चाहिएं, दोनों से अपने आपको प्रबुद्ध करो, जागृत करो, दुनिया में कैसे रहना और दुनिया से कैसे ऊपर उठना दोनों चीज़ें आनी

चाहियें। ज्ञान और कर्म दोनों का समावेश साथ में हो। अपने आपको कैसे परमात्मा से जोड़ना है और कैसे संसार से हटाना है-दोनों चीज़ें साथ चलनी चाहियें। दोनों का जब मेल हो जाये – संसार से अपने को तोड़ना सीख जायें और परमात्मा से जोड़ना सीख जायें तो कहते हैं फिर वह युक्त कहलाता है, योग-युक्त, योग से जुड़ा हुआ, अर्थात् जिसका योग सिद्ध हो गया।

जैसे बुल्लेशाह ने कहा-किसी ने पूछा कि भगवान को पाने के लिए क्या करना चाहिए? तो बुल्लेशाह ने कहा, *'बुल्लेया, रब दा की पावड़ां – ऐथों उठना उथों लावंड़ा'* – इधर से उखाड़ना, जैसे पौधे को माली उखाड़ता है और दूसरी तरफ़ जाकर लगा देता है, ऐसे ही मन को तुम संसार से हटाओ और परमात्मा में जोड़ दो, परमात्मा मिल जायेगा। कितना सरल ढंग से उन्होंने समझाने की कोशिश की।

भगवान को पाना कठिन नहीं है-एक तरफ़ से उठाओ अपने आपको दूसरी जगह से जोड़ दो। पर ध्यान में रखने वाली बात यह है कि बड़ी सावधानी से उखाड़ना पड़ता है; पौधे को उखाड़ने के लिए उसकी जड़ थोड़ी निकल आये और सम्भाल कर, निकाल कर, उसी तरह से उसको वहाँ जोड़ दें क्योंकि वहाँ हरा होना चाहिए जाकर, सूख न जाए। संसार की मिट्टी से उखाड़कर स्वर्ग की मिट्टी में आपने जोड़ना है। बड़ा सम्भाल करके जोड़ना अपने आपको।

उधर का रस पैदा करो जिधर जुड़ना है, जहाँ से उखड़ना है वहाँ का वैराग्य पैदा करो कि नहीं बँधना संसार में, ऊपर उठ जाना है। यह मार्ग, इसमें एक व्यवस्था दी गई- जो तुम्हें योग्यतायें दी हैं परमात्मा ने, उन योग्यताओं से संसार को लाभ देना शुरू करो। अपनी "मैं" को पीछे हटा दो। जितनी क्षमता है आपके अन्दर वह सारा सामर्थ्य तो संसार की भलाई के लिए लगा दो लेकिन प्रशंसा पाने की जब बारी आए एकदम पीछे हट जाओ क्योंकि मान भी गिरायेगा; तारीफ़ पाने की कामना जब मन में होती है समस्याएं पैदा होती हैं।

कहा जाता है कि वन के अन्दर कोई एक चौराहा; पाँच मुसाफिर आकर रुके और सब निढाल, दु:खी, परेशान, थके हुए। एक की आँख नहीं – अन्धा, एक की टाँग खराब – लंगड़ा, एक का हाथ खराब है तो शरीर से निर्बल, एक के पास पहनने के लिए वस्त्र नहीं हैं, खाने के लिए पदार्थ नहीं हैं, पैसा नहीं

है, निर्धन, और एक ऐसा आदमी जो मन्द-बुद्धि है – पाँचों लोग आकर एक चौराहे पर एक बरगद के पेड़ के नीचे आकर बैठ गए और पाँचों ही आपस में बातचीत करने लग गए – ज़िन्दगी बड़ी दु:खदायी है, अब पता लगता है कि टाँग नहीं रही तो टाँग की कीमत क्या है, चलना पड़ता है चल नहीं पाते, दुनिया के काम पूरे नहीं कर पाते, शरीर की शोभा नहीं है। दूसरे आदमी ने कहा – भाई ठीक कहते हो, मेरे हाथ बेकार हैं, दुनिया की सारी दौलत यह हाथ ही तो हैं और वही नहीं है मेरे पास। तीसरा आदमी बैठा था, बोला – नहीं भाई, पैसा न हो आदमी के पास, निर्धन हो, उसका शरीर भी ठीक हो तो भी वह बेकार है। चौथे आदमी ने कहा – आँखें नहीं हैं, सारा संसार ही ओझल हो गया है सामने से, यह शरीर भी, यह अंग-प्रत्यंग भी किस काम आयेंगे? आँखें होनी चाहिएं। पाँचवां आदमी कहने लगा – भाई बात सुनो मेरी आँखें भी हैं, थोड़ा-बहुत पैसा भी है, वस्त्र भी ठीक पहन रखे हैं, खाना-पीना भी ठीक है, हाथ-पाँव भी सही काम कर रहे हैं, सब है मेरे पास, यह बुद्धि ही नहीं है, अक्ल काम ही नहीं करती। इसीलिए अक्ल होनी चाहिए इन्सान के पास।

लँगड़ा व्यक्ति बोला – एक बात बताऊँ, यदि भगवान मेरी प्रार्थना सुन ले और मेरी टाँग ठीक हो जाए तो मैं अपनी सारी ज़िन्दगी उन लोगों के लिए बिताऊँगा जिनकी एक टाँग नहीं है, हो सके तो उनके लिए कोई यन्त्र बनाऊँगा, उनके लिए सहयोग करूँगा, ठीक से चल सकें क्योंकि मैं उनकी पीड़ा को समझता हूँ, भगवान मुझे मौके दें मैं सेवा करूँगा उनकी।

जिसकी आँखें नहीं थी, उस आदमी ने कहा – भाई बात तो हमारी भी यही है। अब अगर हमें आँखें मिल जायें, आज के बाद तो हमारी सारी ज़िन्दगी नेत्रहीन लोगों की सेवा में बीतेगी।

निर्धन आदमी ने कहा – हे भगवान, अगर मुझे पैसे मिल जायें तो सारी ज़िन्दगी गरीबों की सेवा करने में बीतेगी, सारा पैसा उन पर लुटाता जाऊँगा। कहूँगा भगवान तू देता जा और मैं बाँटता जाऊँ, न तू थकना, न मैं थकूँ।

मन्दबुद्धि ने कहा – मैं भी वचन देता हूँ, अगर भगवान मेरे ऊपर कृपा कर दे तो जो लोग बुद्धिहीन हैं, मंदबुद्धि लोग, ऐसे बच्चे भी हैं, ऐसे लोग भी

हैं जिनकी बुद्धि नहीं है, या बहुत कम बुद्धि है उनकी, काम नहीं कर पाता दिमाग़ जिनका, तो अग़र भगवान मुझे सुबुद्धि दे, अच्छी बुद्धि दे दे मैं उनकी सेवा में अपना जीवन बिताऊँगा क्योंकि मुझे उनकी पीड़ा पता है।

इस निर्बल आदमी ने कहा – भाई, मैं भी तुम्हें बताता हूँ, मेरे हाथ काम नहीं कर पा रहे हैं लेकिन भगवान अग़र ताक़त दें तो जो कमज़ोर को दुनिया सताती है न, एक बार परमात्मा ताक़त दे मुझे मैं उन लोगों के बीच में पहुँचूँगा जहाँ अत्याचार होता है, मैं अन्यायी हाथों को दबाऊँगा और जो लोग पीड़ित हैं उनका सहारा बनूँगा, भगवान मेरे ऊपर कृपा करें।

कहते हैं भगवान शंकर और पार्वती माँ भ्रमण करते हुए उधर से आए। (हमारे देश की यह लोक कथा है।) पार्वती माँ को दया आई, उन्होंने शंकर भगवान से प्रार्थना की – कितने पवित्र लोग हैं, भावनायें कितनी अच्छी हैं, इनका दुर्भाग्य इन्हें पीड़ित करता रहा है लेकिन आपकी कृपा बहुत बड़ी है, आप दया करके इनको ठीक कर दीजिए-नेत्रहीन को आँखें दो, लँगड़े को पांव दो, निर्बल के शरीर में शक्ति दो, निर्धन को धन दो, बुद्धिहीन को बुद्धि, और अग़र आप यह दे देंगे तो फिर देखना यह लोग कमाल करेंगे और अग़र ऐसे कुछ अच्छे लोग समाज में निकलें तो पूरे समाज का वातावरण बदलेगा।

शंकर भगवान ने कहा यह लोग ऐसी बातें तभी तक कर रहे हैं जब तक इनका अभाव दूर नहीं होता, जैसे ही इनका अभाव दूर होगा इन लोगों की भावनायें बदल जायेंगी।

पार्वती माँ ज़िद्द करने लगी-नहीं प्रभु! जीव पर दया करना ही तो आपका कार्य है, आप इनका भाग्य नहीं देखिए, इनकी भावना देखिए।

शंकर भगवान ने पार्वती के कहने पर उनको सबको वरदान दे दिया और कहा – जो जो तुमने माँगा था तुम्हें दिया; और वह लोग ठीक होकर घर की तरफ भागे।

निर्धन को धन मिला। पैसा लेकर जब ग़रीबों के बीच गुज़रा, सेठी जी को देखकर जब लोग प्रणाम करने लगे, अब उसकी समझ में आया कि पैसे में कितना बल है; कमाल हो गया! यही लोग, इनकी धारा बदल गयी, देखने का ढंग बदल गया, वह रिश्तेदार जिनके सामने कभी जाकर हम खड़े होते थे

और वह बात नहीं करते थे आज वह पीछे-पीछे चक्कर लगा रहे हैं, घर में रिश्ता करने के लिए बड़े-बड़े लोग आ रहे हैं, भाई पैसा बड़ी चीज़ है। पैसा आया, संसार में रम गए।

अंधा व्यक्ति रूप देखकर हैरान हुआ – अच्छा इतना सुन्दर संसार है, वह भी उलझ गया। हाथों वाला व्यक्ति अपनी ताक़त देखकर, उसने भी सोचा कि सारे संसार में अपनी ताक़त से मैं बहुतों को अपने वश में कर सकता हूँ और जिस व्यक्ति की बुद्धि नहीं थी उसको सुबुद्धि दे दी गई, मतलब बहुत सारा दिमाग़ दे दिया गया, बुद्धि तेज़ कर दी गई। बुद्धि पाने के बाद, किताबें भी बड़ी-बड़ी लिख दी, लोगों के बीच में जाकर रोब जमाने लगा, समाज को दिशा न दिखाकर अहंकार में भर गया।

बरसों के बाद, पार्वती माँ भगवान शंकर से प्रार्थना करने लगी उनका हाल ज़रा देखना, समाज का कितना वातावरण बदला होगा।

भगवान ने कहा कि देखो इन लोगों को, इन लोगों के कारण समाज का वातावरण न बदल कर और बिगड़ गया है क्योंकि जिसको बुद्धिमान बनाया था वह बुद्धिमान होकर के मन्दबुद्धि लोगों को सताने में लगा हुआ है; निर्बल बलवान हो गया, निर्बलों की रक्षा नहीं कर रहा; निर्धन धनवान हो गया, अहंकार में आकर बैठ गया – मैं धनी हूँ, वह बाँटता नहीं है।

पार्वती माँ कहने लगी – मैं दया तो बहुत करती हूँ लेकिन जो लोग दिए हुए वरदान का उपयोग न करके दुरुपयोग किया करते हैं, उनके प्रति मैं भी करूणा नहीं करती, भगवान मैं आपसे कहूँगी अपना वरदान छीन लो इन लोगों से और इन लोगों को वैसा ही कर दो जैसे यह लोग थे।

और यह सच बात है-जिन लोगों को परमात्मा ने अच्छे हाथ दिए, अच्छी आँखें दी, अंग-प्रत्यंग दिए, धन-समृद्धि दी, बुद्धि दी, अगर उनका वह उपयोग नहीं करेंगे, जन कल्याण में लगेंगे नहीं, अपने सामर्थ्य का उपयोग करते हुए समाज का कल्याण नहीं करेंगे, भगवान किसी न किसी रूप में फिर अपना वरदान वापस खींच लेते हैं और याद रखना वही पाँचों स्थितियाँ हर किसी के जीवन में हैं।

भगवान ने अगर आँख दी, अपना लक्ष्य देखो, भगवान की महिमा देखो और जिनको आँख नहीं है उनको रास्ता दिखाने की कोशिश करो। इन हाथों
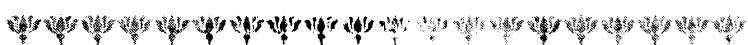
से सेवा हो, पाँव से मंज़िल की ओर बढ़ो, बुद्धि से वह रास्ते खोजो जिनके द्वारा पीछे आने वाले लोगों को सुविधायें हों और यह जो भगवान ने धन दिया है यह दूसरों के कष्ट मिटाने में लगाना शुरू कर दो। जैसे-जैसे यह स्थितियाँ चलती चली जायेंगी जीवन का कल्याण होगा।

इसीलिए भगवान कृष्ण समझाते हैं कि ज्ञान-विज्ञान से जो तृप्त हो गए हैं, वह लोग, अपने आपे पर काबू किए हुए लोग, ऊँचाई पर बैठे हुए लोग, वह ही सच्चे-योगी हैं और उन्हीं से संसार का भला होता है, उन्हीं से संसार का कल्याण होता है।

इसीलिए मैं एक प्रार्थना करूँगा – जीवन की ऊँचाई प्राप्त करने के लिए हमें इस साधना से गुज़रना चाहिए और इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जैसे-जैसे हम ऊँचाई पर चढ़ते चले जाएं, रोज़ टटोलते चले जाओ कि कहीं अहंकार तो नहीं आ रहा? कहीं फिर से पतन तो नहीं हो रहा है? ऊँचाई पर तो हम पहुँच गए हैं ऊँचाई से नीचे तो नहीं हम लुढ़कने लगे? बल्कि मैं तो कहूँगा – आप परीक्षण करो, जैसे, बहुत बड़े चिन्तक ने लिखा कि अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारे जीवन में शान्ति आए और तुम्हारा उत्थान हो तो हर चौबीस घण्टे के अन्दर यह चिन्तन करो कि आज मैंने अपनी "मैं" का प्रयोग कितनी बार किया? किसी से बात करते हुए किसी से व्यवहार करते हुए "मैं" का प्रयोग कितनी बार किया? "मैं" यह और "मेरा यह" और "मैंने यह कर दिया" और "मैं यह करने वाला हूँ" – यह जो भाषा है, यह तुमने कितनी बार प्रयोग की? याद करके लिखना। अगले दिन अभ्यास करके देखना कि यह "मैं" का उपयोग और कम होगा और जिस दिन यह "मैं" का उपयोग कम होता चला जायेगा एकदम ख़त्म हो जाये उस दिन एक शब्द उभरेगा-तू ही तू, तू ही तू, तू ही तू और जब तू तू कहेगा – कबीर ने लिखा

तू तू करता तू भया मुझ में रही ना हूँ –
वारी तेरे रूप पर जित देखूँ तित तू ।

भगवान अब मैं नहीं हूँ, तू ही तू है – तब वह नज़र आयेगा, हर रूप में नज़र आयेगा।

रामकृष्ण परमहंस बैठे हुए साधना में लीन, आँखें खोली, शोर-शराबा सुना, पूछा एक शिष्य को बुलाकर-शोर कैसा? बोला-महाराज, आपके जो

ज्ञानी शिष्य हैं लड़ रहे हैं आपस में और दोनों ही आपस में कहते हैं – मैं बड़ा, मैं बड़ा। आप निर्णय दीजिए कौन बड़ा? रामकृष्ण परमहंस ने कहा – दोनों को बता दो जाकर, जो दूसरे को बड़ा मान ले वह बड़ा और जो दूसरे को बड़ा न माने, अपने को बड़ा माने वह छोटा, सीधा-सीधा निर्णय है।

बड़ा होना चाहते हो? दूसरे को बड़ा मान लेना, अपने को छोटा; तो सच में दूसरे को बड़ा कहने के साथ ही आप अपने को छोटा कह करके अपने आप को बड़ा कर लोगे क्योंकि अपनी "मैं" को जब हटा दोगे तो आप बड़े हो जाओगे। यह अध्याय बड़ा प्यारा अध्याय है। और मैं यह पूरी कोशिश कर रहा हूँ कि बहुत सारे श्लोक नहीं, जितने श्लोकों की सरलता से व्याख्या हो जाए और आप तक सरल ढंग से यह ज्ञान पहुँच जाए।

गीता का यह जो अध्याय, छठे अध्याय में हम लोग प्रवेश कर चुके हैं और हमारी विचार की यह घड़ी जहाँ आकर स्थिर हुई है; भगवान कृष्ण योग-युक्त होने के लिए, योगी होने के लिए निर्देशन देते हैं- जिससे हम बिछड़े हुए हैं उससे हमारा योग हो जाए, जिसके वियोग में सारे संसार में भटकते-भटकते दुनिया के पदार्थ पाने के बाद भी पाना शेष रह गया हो, ऊँची सत्ता पर बैठने के बाद भी महसूस होता है कि यह सत्ता झूठी है, संसार के भोग-भोगने के बाद भी लगता है कि तृप्ति नहीं है। तो जहाँ से हम वियुक्त हैं, जहाँ से बिछड़े हैं वहाँ से जुड़ना ही योग है।

साँझ के अन्धेरे से माँ की गोद से दूर हुआ बच्चा भले ही कितने भी हाथों में जाए पर चैन उसको अपनी माँ की गोद में ही मिलती है; तब तक बिलखता रहेगा जब तक माँ के पास नहीं पहुँचेगा, जैसे हर नदी तब तक बहती है जब तक सागर से न मिल जाये ऐसे ही हमारा समस्त प्रयास एक ही हो कि जिससे हम बिछड़े हैं उससे मिल जायें। भगवान ने इसका मार्ग हमें बताया –

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं – जो योगी है उसे चाहिए कि सतत् रूप से अपने आप को अपने परमात्मा में समाहित करना चाहिए, अपने आपको उधर अर्पण करना चाहिए, *रहसि स्थितः* – एकान्त का सेवन करे, अगर अपने

आपको पाना है और अपने परब्रह्म को पाना है तो संसार के कोलाहल से दूर जाए; *एकाकी:* – अकेला रहे; *यतचित्तात्मा:* – यह जो हमारा अन्त:करण है, अपना स्वरूप है इसको नियन्त्रित करें, अपने आपको अपने काबू में लायें; *सततम्* – और सतत् रूप से ध्यान करना चाहिए, प्रभु की आराधना में बैठे तो निरन्तरता रहनी चाहिए, प्रवाह टूटना नहीं चाहिए। एक शर्त और लगाई गई – *निराशी:* – इच्छाओं का जो अनन्त-जाल है, कल्पनाओं का संसार, बैठे-बैठे न जाने, कितना-कितना व्यक्ति सोचता है, उसको तोड़कर; *अपरिग्रह:* – और संसार में संग्रह करने की जो इच्छायें हैं कि हम और कुछ जोड़ लें इस सब से ऊपर उठकर जो व्यक्ति बैठेगा, कहते हैं कि उसको प्राप्ति होगी। बड़ा ही सुगम, सरल और सहज ढंग से भगवान कृष्ण ने जो मार्ग दिखाया अब इस पर थोड़ा विचार कीजिए।

परमात्मा की तरफ़ चलने की इच्छा हो तो कुछ नियमों का पालन आपको करना ही चाहिए – पहली बात यहाँ एक शब्द दिया है – *योगी युञ्जीत सततम्* – योगी व्यक्ति सदैव अपने आपको साधना में निमग्न रखे, डुबाए लेकिन सततम्, सातत्य, निरन्तरता, बिना नागा रोज़ बैठो। दुकानदार अपनी गद्दी पर बैठता है, ग्राहक आए या न आए छोड़ता नहीं गद्दी; क्योंकि लाभ पाना है, तो साधना करनी पड़ेगी। आज नहीं आयेगा ग्राहक तो कल आयेगा, कल नहीं आया तो परसों आयेगा, जिस दिन भी आयेगा काम बनेगा और हम इतनी जल्दी अपनी गद्दी छोड़ने को तैयार हो जाते हैं, ग्राहक आया न आया, मतलब परमात्मा का ध्यान लगा न लगा और हम घबरा जाते हैं। सोचना चाहिए आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों; बैठे रहो। जो हीरे-जवाहरात बेचने वाले लोग होते हैं, उनको पता है कि एक या दो डील भी हो जायें तो हमारा काम पूरा बन जायेगा; तो आप लोग तो हीरे-जवाहरात से भी कीमती चीज़ के लिए बैठे हो तो फिर क्यों घबरा रहे हो? रोज़ बैठो जमकर नियम से और बात बनेगी। हाँ, यह माँगना कि मेरे धीरज में कमी न आए। या तो बुला और हाथ पकड़ या फिर इतना धैर्य दे कि एक जन्म तो क्या अनेक जन्म भी बीत जायें तो भी हमारी लगन आपसे छूटे नहीं। ऐसी गहराई लेकर बैठ सको क्योंकि बूँद को सागर होना ही है, यह छोटी-सी बूँद मोती बन सकती है।

आप जानते हैं कि कोई पत्थर जब हीरा बनता है तो एक दिन में कभी नहीं बन जाता, लाखों साल लगते हैं उसे, लाखों सालों के बाद अनेक ताप सहने के बाद कोयला हीरा बना करता है, कोयला ही पत्थर है, पत्थर कोयला है, कोयला – जो न जाने कितनी-कितनी पेड़ों की लकड़ियाँ ज़मीन में दबी होंगी, कितने तरह के ताप सहे होंगे या समझिये कि कोई पत्थर न जाने कितने-कितने ताप को सहने के बाद किसी हीरे की शक्ल में अपने आप की परिणति करता है और जितना ज़्यादा ताप सह गया, जितना समय उसे लगा उतना ही कीमती पत्थर बन गया, तब जाकर के किसी के मुकुट की शोभा बनता है। आप भी अगर हीरा बनना चाहते हैं तो यह कभी मत सोच लेना कि इधर से कोई स्विच दबाया और इधर से हीरा बन जाओगे आप। महत्त्वपूर्ण होना चाहते हो तो या तो फिर महत्त्वाकांक्षा करो तो बहुत बड़ी करो – परम को ही प्राप्त करना है; और नहीं तो फिर सारी आकांक्षायें छोड़ दो, कुछ पाना बाकी न रहे तो फिर सब कुछ पाया जा सकता है। इसकी शर्त केवल इतनी है सातत्य होना चाहिए-निरन्तरता, बिना नागा बैठो और अपने धीरज के बाँध को टूटने नहीं देना; कुछ माँगना भी नहीं; "ध्यान" का नियम ही यही है।

'ध्यान', 'मैडिटेशन' में बैठना चाहो न तो वहाँ नियम ही यही है-न कोई विचार, न कोई माँग, न कोई प्रार्थना, न कोई कामना; जो कुछ है, जैसा है, उसको साक्षी भाव से देखना शुरू करो, गवाह बन जाओ अपने मन के भी; मन की जो लहर चल रही है उसे साक्षी भाव से देखना शुरू करो, थोड़ी देर के बाद आपको लगेगा कि वह लहर ख़त्म, मन हटा और आप अपनी होश में, जागी हुई अवस्था में जैसे कोई नींद ले रहा हो, जैसे कोई व्यक्ति किसी भी तरह की कोई चाह न रखकर न कुछ पाना, न किसी को कुछ कहना, न किसी की बात का बुरा मानना, बस, शान्त होकर आप ऐसे बैठ जाएं जैसे नींद लेने से पहले नींद जब आने लगती है, उस समय जब आपका मन पहुँचता है-विचारों से रहित मन हुआ और नींद आई; तो जैसे आप नींद लेते हैं वह भी एक ध्यान है, वह बेहोशी का ध्यान है, रोज़ करते हो यह ध्यान आप, इसके बिना, आपका गुज़ारा नहीं; ऐसी ही एक ध्यान है जहाँ होश नहीं, वैसे ही मतलब संसार का ध्यान नहीं लेकिन जागे हुए हैं, ऐसी होश में हो कि आप जाग रहे हो लेकिन नींद वैसी नींद नहीं जैसे आप सो जाते हो, खुमारी आ गई,

विचार कोई नहीं, न मैं राजा हूँ न रंक हूँ, न मान वाला न अपमान वाला, कुछ मैं तो है ही नहीं बल्कि सोचना ही छोड़ देना और ध्यान करना नहीं होता, ध्यान में होना होता है।

मज़े की बात है यह कि कोई दुनिया का ऐसा आसन या एक्सरसाईज़ नहीं जिससे नींद आती हो, यह कहा जाता है कि आसन करना, प्राणायाम करना, फिर देखना नींद आयेगी; मज़े की बात है जितना शिथिल कर दो अपने आपको, ढीला छोड़ दो उतनी नींद आने में सुविधा; जितना आप मन को गुम कर दो और अपने को ढीला छोड़ दो और अपनी "मैं" को हटा दो, बस यहीं से ध्यान शुरू हो जायेगा। एक क्षण लग गया मन, हटा संसार से, बिना किसी विचार के जैसे ही ठहरा एक स्थान पर, जैसे ही यह खो जाता है, बस वहाँ से ध्यान शुरू हो जायेगा और उसकी अनुभूति अलग़ होती है। एक अलग़ तरह का ही आनन्द आना शुरू हो जायेगा। और आप देखिए कि जब आप ध्यान का आनन्द लेना शुरू करेंगे तो फिर शोर-शराबा दुनियादारी, इन सबसे अलग हटने की इच्छा होगी।

ज़्यादातर साधक लोगों ने दुनिया की भीड़ में बैठकर ध्यान नहीं किया, दुनिया से अलग हटकर वह जग़ह खोज़ी कि जहाँ संसार का व्यवहार न पहुँचे क्योंकि संसार का व्यवहार जहाँ सामने पहुँचने लगता है बस वहीं गड़बड़ शुरू हो जाती है – दुनिया की बातें ध्यान आयेंगी, उतार-चढ़ाव, लेन-देन, हानि-लाभ, जय-पराजय, मान-अपमान, सुख-दु:ख, ईर्ष्या-द्वेष यह सब आकर खड़े हो जाते हैं और यही संसार है।

आपने कई बार सुना होगा कि साधक लोग हिमालय की कन्द्रा ढूँढते हैं; असल में तो मौसम ऐसा होना चाहिए, जब कोई तनाव या दबाव, प्रकृति का प्रकोप न दिखाई देता हो-न गर्मी न सर्दी, इसीलिए अपने देश में दो समय ऐसे आते हैं जब लोग एक तरह का जागरण करते हैं और आप लोग, जिसको नवरात्रि का त्यौहार माना जाता है सब लोग कोशिश करते हैं कुछ न कुछ व्रत कर लें – स्वाद को जीतेंगे, भूमि पर सोने की कोशिश करेंगे, बाहर का श्रृंगार छोड़ देंगे, ब्रह्मचर्य पालन, दाढ़ी बढ़ी हुई, जमीन पर सो रहे हैं और एक विशेष-प्रकार का आहार मतलब अन्न नहीं और उस अवस्था में रहते-रहते सिर्फ़ जाप करना, संयम, जप, तप, साधना, सेवा इन सब को मिलाते हैं उस

समय और कमाल यह है कि वे ही दिन ऐसे होते हैं कि जब न गर्मी अधिक और न सर्दी अधिक – दोनों का संतुलन बन जाता है।

कहा जाता है कि संसार के मान और अपमान का संतुलन जब आप बना लो, दोनों के बीच बैठ जाओ, वह स्थिरता वाला जो समय है, संतुलन वाला जो समय है वहाँ से आपका ध्यान परवान चढ़ता है। इसीलिए साधक लोग भी ऐसा स्थान ढूँढते रहे हैं जहाँ एकान्त स्थान हो।

भगवान कृष्ण ने भी यहाँ बताया जहाँ साधना करो पवित्र-स्थान होना चाहिए, आसन न ऊँचा हो न नीचा, भूमि ऐसी भी नहीं होनी चाहिए कि ऊँची या नीची हो। समतल भूमि और फिर यह भी कहा कि कोई कुशा का आसन या मृगछाला बिछाओ।

इसका सीधा-सा मतलब होता है कि कोई भी ऐसी चीज़ वैसे लकड़ी का पटरा नीचे बिछा करके उसके ऊपर आप एक सूती आसन बिछाओ, तब बैठो। लकड़ी का प्रयोग इसीलिए (या मृगछाला, वैसे वह तो इस समय न उपलब्ध होती है और न उसके लिए कोई प्रयास करना चाहिए), कुशा का आसन बिल्कुल ठीक है। सीधा-सा मतलब है इसका कि नॉन-कण्डकटर कोई भी चीज़ होनी चाहिए जिससे आपकी ऊर्जा-शक्ति, जो विद्युत धारा है वह ज़मीन में प्रवेश नहीं करनी चाहिए; बिजली वाले काम करते हैं न तो लकड़ी के ऊपर खड़े होकर करते हैं या रबड़ के ऊपर पांव रख लेंगे, रबड़ का प्रयोग हमारे यहाँ वर्जित है क्योंकि चमड़ी में रोग पैदा करता है; तो सबसे बढ़िया चीज़ है कुशा का आसन रखो, ऊन का आसन रखो, सूती आसन रखो, लकड़ी का पटरा नीचे रखो, इतना बढ़ा होना चाहिए कि आपका शरीर ज़मीन से स्पर्श न करे, भूमि से स्पर्श नहीं करना चाहिए तब साधना में बैठना चाहिए: विद्युत का प्रवाह अन्दर से चलेगा और जैसे-जैसे वह एक सरकल बनाता है और अगर ज़मीन में शरीर स्पर्श करता है तो कई लोगों को देखने में आया उनका शरीर कम्पन करता है, काँपता रहता है, झटका लगेगा या हिल जायेंगे, स्थिरता नहीं आयेगी। इसका एक मात्र कारण यही होता है।

ताँबे के बर्तन में जल रखना चाहिए; जिस समय स्थिरता भंग होने लग जाए तो फिर तीन आचमन जल ले लेना चाहिए – इण्डेक्स फिंगर, तर्जनी, इसको मोड़कर अँगूठा ऊपर करके जो तीन अँगुलियाँ बाहर निकली हुई हैं

उनको थोड़ा बाहर करके इसमें जो जल आ जाये अंजलि में इतने भाग में, बस इतना ही जल पीना चाहिए और वह इतना ही काम करेगा कि गले से नीचे उतर जायेगा। इतना जल आप तीन बार पी सकते हैं, हाथ धोकर छींटे लगा सकते हैं। इस तरह से पवित्र-स्थान पर बैठना चाहिए लेकिन भगवान यहाँ समझा रहे हैं कि ध्यान करो तो निरन्तर करो।

दूसरी बात – *'रहसि'* – मतलब एकान्त स्थान का सेवन करो, अन्दर की आवाज़ सुननी हो न तो एकान्त चाहिए और अगर उसको निमन्त्रण देना चाहते हो तो अपने अन्दर भी एकान्त चाहिए, अन्दर भी विचारों की भीड़ नहीं रखो, वह आने को तत्पर है, अपने को खाली तो करें हम। इसी के साथ में यह भी कहा गया उस शान्त-स्वर को सुनने के लिए व्यक्ति को भीड़ से बचना चाहिए – विचारों की भीड़ से भी और लोगों की भीड़ से भी। जब भी साधना करने की इच्छा हो, देखिए वन में जा सकें बहुत अच्छी बात या किसी आश्रम में बैठकर कर सकें तो और अच्छी बात है और नहीं तो अपने घर की छत को आश्रम बनाईये, बढ़िया-सी कुटिया बनाओ, लताऐं बेल चढ़ाइये, गमलों से आँगन को सजाओ, छत को सजाओ और वहाँ आपकी एक पर्ण कुटी हो, वहाँ बैठिए आप; वहीं आपका स्वाध्याय हो, वहीं आत्म-चिन्तन हो।

एक चीज़ और – अगर इस जगत में, इस दुनिया में, साधना की दुनिया में प्रवेश करने की इच्छा हो, तो एक कार्य करना होगा – राजा भोज ने कभी कहा था अपने दरबारियों के सामने चौदह रत्न उनके बैठे हुए, कि आज मैंने एक स्वप्न देखा – एक सूअर, शूकर जो गन्दगी से सना हुआ है एक नदी में प्रवेश किया और मैंने देखा कि इधर से प्रवेश किया और उधर के किनारे पर पहुँचा तो वह देव पुरुष बन गया – इस स्वप्न का रहस्य बताओ। तो सारे चिन्तक विचार करते-करते और एक स्वर से उन्होंने कहा – शूकर जैसा गन्दगी से सना हुआ इन्सान भी हो, प्रायश्चित् की नदी में प्रवेश कर जाए तो जब दूसरे किनारे पर पहुँचेगा तो वह देव पुरुष बन कर के ही पहुँचेगा।

अपने किए हुए गुनाहों पर लगातार प्रायश्चित् करो। मालिक के दरबार में हर किसी व्यक्ति को, बिना किसी संकोच के, अपने गुनाह कबूल कर लेने चाहिएं – 'मेरे से गलती हुई, मैं गलतियों का पुतला हूँ, हज़ार बार कसम खाता हूँ, प्रतिज्ञाएं करता हूँ, फिर वहीं पहुँच जाता हूँ; मेरे प्रभु, तेरी दयालुता

में कमी नहीं और मेरी ग़लत कर्म करने में भी कमी नहीं; तू सम्भालने में देर नहीं करता, हर बार सम्भालता है और मुझे गिरने में देर नहीं लगती।' भगवान के सामने बैठकर अपने समस्त गुनाह और दोष स्वीकार करने चाहिएं, ग़लतियों को सुधार करने का संकल्प करना चाहिए।"

कोई भी व्यक्ति जिसके मन में हो कि मैं ऊँचाई प्राप्त करुँ, जब तक वह विनम्र नहीं होगा और सुधार के लिए संकल्प दृढ़ नहीं होगा और प्रायश्चित की नदी में स्नान करके बाहर नहीं निकलेगा, अपने आँसुओं में अपने अन्तःकरण को नहीं धोएगा, तब तक ऊँचाई पर पँहुच पाना नामुमकिन है, असम्भव है। भगवान के सम्मुख बैठकर अपने गुनाहों को स्वीकार करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है और यदि आपके जीवन में ऐसा अनुभव होता है कि दुःख बहुत हैं, परेशानियाँ हैं, दुर्भाग्य है, परिस्थितियाँ ठीक नहीं तो एक पंक्ति लिखकर हमेशा सामने रखो – *"यह वक्त अवश्य गुज़र जायेगा, यह समय भी बीत जायेगा"* और इस वाक्य को सामने देखोगे तो धीरज मिलेगा, यह ऊपर बहता हुआ पानी निकल जाए, यह काली रात बीते तो दिन आए; मन तू धीरज रख काली रात बीतेगी, सुनहरा दिन आने में ज़्यादा देर नहीं, अपने आपको सांत्वना देनी चाहिए और जब रोज़ सवेरे जागो तो एक निश्चय करना - आज का दिन शान्ति, प्रसन्नता में बीतेगा और अपने प्रभु के नाम की कमाई कमाऊँगा, सारा दिन उसका नाम जपने में, सिमरन करने में व्यतीत करुँगा, कैसे भी कर्तव्य कर्म संसार के करुँ लेकिन माथे की शान्ति और चेहरे की प्रसन्नता इसे कम नहीं होने दूँगा।

इसके साथ ही यह भी मान लेना चाहिए कि जो बड़ों के अनुशासन में नहीं रह सकता वह बड़प्पन कभी प्राप्त कर नहीं सकता। इसीलिए बड़ों के सामने झुकना, विनम्र रहना, आज्ञा-पालन करना ज़रूर सीखो नहीं तो ऊँचाई नहीं मिलने वाली। बड़ों का अनुशासन पहले सीखो, डिसिप्लिन नहीं आयेगा तो आप आगे नहीं जा सकते, निश्चित बात है यह। और अपने प्रभु से एक चीज़ माँगना कि – 'मेरे मालिक मुझे उनकी सेवा बख़्शना जो तेरे पवित्र प्यार में पवित्र हो चुके हैं, उनकी सेवा करते-करते यह ज़िन्दगी बीत जाए और उनकी संगति देना जो गुरुमुख हैं, गुरू के शिष्य हैं, गुरु की शरण में आए हुए हैं; जो मन-मुख हैं, संसार में बँधे हुए हैं उनकी सेवा में मुझे कभी नहीं जाने

देना भगवान; उनकी सेवा में लगाना जो तेरे पवित्र प्यार में लगे हुए हैं। हज़ार काम छोड़कर मैं उनकी सेवा में लग जाऊँ।' अन्दर की आवाज़ सुनने के लिए सदैव तत्पर रहना और कभी-कभी दूसरों से लज्जित नहीं, अपने आपे से लज्जित होना भी अच्छी बात होती है।

एक फकीर हुए हैं – हुसेन साहब-उन्होंने कहा कि मैं अपनी ज़िन्दगी में तीन बार बड़ा शर्मिन्दा हुआ, यह शर्मिन्दगी कभी-कभी नई ज़िन्दगी देती है। कहते हैं कि मैं कहीं से जा रहा था और मैंने एक आदमी को, जो शराब पिए हुआ था, उसको कीचड़ में फिसलते हुए, गिरते हुए, सँभलते हुए देखा और मैं उसको आवाज़ देता हूँ – सम्भल भाई, नशे में है, गिर जायेगा, उठना मुश्किल होगा।

उस शराबी आदमी ने मेरी तरफ़ देखा और देखकर के कहा – मैं तो नशे में पागल इन्सान हूँ, गिर जाऊँगा, कीचड़ लगेगा, धोकर ठीक हो जाऊँगा लेकिन ओ धार्मिक इन्सान, ओ खुदा के बन्दे, तू न कभी गिर जाना, अग़र तू गिर गया तो तेरा मन फिर स्वच्छ होने वाला नहीं, कीचड़ कभी साफ़ नहीं होगा।

हुसेन साहब कहते हैं उस समय अपने आप में एक शर्मिन्दगी जागी, अपने आप से लज्जित हुआ कि शराबी कहलाने वाला आदमी भी जो बात कह गया वह होश वाला नहीं कह सकता, यह बड़ी होश वाला आदमी था।

कहते हैं दूसरी बार फिर मैं लज्जित हुआ-जब एक बच्चे को मैंने देखा वह दीपक, दीया, लेकर आ रहा था। मैंने उससे पूछा-दीया कहाँ से लाए हो? कहाँ से लाये हो दीया? बस इतना ही मैंने कहा और इतनी देर में हवा का झोंका आया और दीया बुझ गया।

बच्चा कहता है यह बाद में पूछना यह दीया कहाँ से आया, पहले यह बताओ कि दीया गया कहाँ? अग़र तुम यह बता दो कि दीया गया कहाँ तो फिर मैं तुम्हें बता दूँ कि दीया आया कहाँ से था।

मैं शर्मिन्दा हो गया और यही सोचता जाता हूँ कि कहाँ से आता है प्रकाश? और कहाँ समाहित हो जाता है?

तीसरी बार कहते हैं कि तब शर्मिन्दा हुआ जब एक युवती ने आकर के कहा कि मेरा पति निर्मोही है, ध्यान नहीं देता, घर-गृहस्थी पर ध्यान नहीं देता।

मैंने उसको डाँटकर के कहा पहले आँचल तो ठीक कर और उसने कहा कि मैं तो अपने पति के प्यार में पागल हूँ, मुझे तो अपनी होश नहीं लेकिन तू तो अपने रब् के प्यार में पागल है तब भी तुझे दूसरे के कपड़ों का ख़्याल आता है? अग़र तू सच में ही भगवान का प्यारा है, तो देख सारी दुनिया में, हर जगह तो तुझे प्यार देने वाला तेरा रब् तेरे सामने है।

हुसैन साहब कहते हैं कि मैं तीन बार अपनी ज़िन्दगी में शर्मिन्दा हुआ पर हमें तो इससे भी ज़्यादा ठोकरों की ज़रूरत है।

आत्मजागरण के लिए और गहराई में उतरने के लिए यह प्रायश्चित और एकान्त बहुत आवश्यक है।

भगवान कृष्ण ने सूत्र ही नहीं दिए, यह श्लोक ही नहीं हैं, यह मन्त्र हैं और मन्त्र ही नहीं है, यह जीवन का सार है। अर्जुन माध्यम बना लेकिन जो अमृत बाँटा गया वह तो तब से लेकर आज और आज ही नहीं जब तक दुनिया रहेगी, और आगे तक भी यह अमृत संसार को आनन्द देता रहेगा।

भगवान आगे फिर कहते हैं – *यतचित्तात्मा* – जो योगी व्यक्ति है उसे अपने आप पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

नियन्त्रण रखने के लिए एक बात तो ज़रूर सोचनी चाहिए – आत्म-नियन्त्रण का एक तरीका है-आप सबसे पहले स्वाद से शुरू करना। जीभ स्वाद की तरफ़ जाती है। स्वाद को नियन्त्रित करो।

कान संगीत सुनना चाहते हैं और वह भी संसार के विषयों का, अपनी प्रशंसा सुनने के लिए हमारे कान उत्सुक हैं, दुश्मन की निन्दा सुनने के लिए उत्सुक हैं, वैरियों का नुकसान सुनाई पड़ जाए-कानों को थोड़ी-सी भी आवाज़ आ रही हो, कान खड़े हो जाते हैं, कि ज़रा ज़ोर से कोई बताए पता तो लगे वैरी आदमी को कितनी चोट पहुँची है? इस पर नियन्त्रण लगाएना है।

आँख, जो संसार के रूप की तरफ़ भागती है, परमात्मा के स्वरूप और उसकी महिमा का दर्शन करना शुरू कर दे।

जीभ से न जाने कितनी बार कैसा-कैसा अनर्गल हम लोग बोल देते हैं, हमें पता भी नहीं चलता हम क्या-क्या बोल गए? इसे आप रोक लें और सोचें कि इसमें देखने में कोई तीर तलवार नहीं लगी हुई, लेकिन उससे भी ज़्यादा ख़तरनाक हथियार मेरी जीभ में है, इसको रोक लो।

और कहा जाता है कि यह मन सदैव संसार के विषय-वासनाओं के जाल में उलझा रहता है, इसको वहाँ से हटाकर परमात्मा के प्यार में डुबाना शुरू कर दें – तो यह स्वयं का नियन्त्रण करने का एक सुन्दर रास्ता है और इसके लिए हमें एकान्त ढूँढना चाहिए। एकाग्र होकर बैठें।

आगे चलकर के भगवान कृष्ण ने भी एक शब्द कहा, बड़ा सुन्दर भाव है वह कि यह सब साधना करने के साथ-साथ एक चीज़ और करनी चाहिए कि व्यक्ति को अपना आहार व्यवस्थित कर लेना चाहिए। (वह जब श्लोक सामने आयेगा आपको व्याख्या करके बतलाऊँगा-कैसे आहार होना चाहिए, कैसे विहार होना चाहिए, कैसा आचरण होना चाहिए? चेष्टा कैसी होनी चाहिए? किस तरह से नियन्त्रण लगाएँ अपने आपे पर?)

साधना के दिनों में दो तरह की चीज़ों का सेवन, शरीर की दशा को ध्यान में रखकर के कराया जाता है-एक होता है कि पत्तेदार सब्जियाँ, केवल उन्हीं का भोजन और एक भोजन होता है केवल कन्द और मूल का भोजन। महापुरुष लोग ज़्यादातर कन्द-मूल वगैरह उखाड़कर के खाते रहे हैं। एक भोजन होता है जहाँ मूल का भी रस और पत्तों का रस भी जाकर मिल जाता है-वह है फल वाला भोजन। तो यह गुरु को देखना होता है कि किस समय कौन-सा भोजन दिया जाए, नींद कितनी होनी चाहिए? कैसे उसको रखा जाए और फिर उससे पूछा जाये इन दिनों तुम्हें स्वप्न कैसे आ रहे हैं? स्वप्न से भी पता लग जाता है कि मानसिक दशा कैसी है? वैसे तो एक चार्ट पूरा भर जाना चाहिए उसमें लिखा होना चाहिए कि आपका स्वभाव कैसा है, आपको अचानक आज कोई इस तरह की बात कहे तो आपका क्या जवाब होगा? परिवार के लोगों का व्यवहार आपके साथ कैसा है? आपके दोस्त कितने हैं, दुश्मन कितने हैं? इस तरह के सवाल सामने इसीलिए किये जाते हैं कि उसके

व्यक्तित्व का पता लगता है, मानसिक दशा का पता लगता है, यह पता लगता है – राजसिक व्यक्ति है, तामसिक व्यक्ति है, सात्विक व्यक्ति है – यह सब उस चार्ट से पता लगने लगता है; फिर गुरु उसको उसी हिसाब की साधना देता है।

उससे भी ज़्यादा यह कोशिश करनी होती है कि अन्दर का सारा गुब्बार निकाला जाये क्योंकि जब तक ख़ाली नहीं होंगे तब तक उसमें कुछ भी भरा नहीं जा सकता; गन्दे हाथ लग जायें, थोड़ी-सी खटाई पड़ जाए, दूध, दूध नहीं रहता इसलिए बर्तन स्वच्छ करना बहुत ज़रूरी होता है। बहुत-बहुत लोगों के अन्दर इतना कुछ गुब्बार भरा हुआ है कि उन्हें बैठा करके वह निकालना पड़ता है। इसीलिए यह प्रायश्चित् वाली जो विधि है, आँसू बहाओ या परमात्मा के प्यार में बैठ कर के गाओ या अपने अन्दर का जो भी कुछ है उस सब को बोल दो, तो यह ख़ाली करने का एक तरीका है। इसीलिए कुछ विधियों में ऐसा नियम है कि व्यक्ति थोड़ी देर तक तो रोयेगा, थोड़ी देर रोने के बाद शान्त होकर के बैठेगा। उसके बाद थोड़ी देर मुस्कुराना शुरू करेगा, फिर ज़ोर से खिलखिला कर हँसेगा, उसके बाद फिर शान्त होकर साक्षी भाव में बैठेगा। यह भी साधना का एक ढंग है, अपने आप को निर्मल करने के लिए और इसके लिए आवश्यक है कि कोई गुफा दी जाए जिस गुफा में व्यक्ति को एकान्त में बैठा दिया जाए, उसे कहा जाये कि बस तुम अब यहाँ बैठ करके साधना करोगे – थोड़ी देर ऊँचा-ऊँचा बोलो, चीखो-चिल्लाओ, उसके बाद प्रक्रिया पूरी हो जाए तो दूसरा रास्ता बताया जाता है कि शान्त होकर, एकाग्र होकर के बैठ जाओ।

आपने देखा होगा कि कई लोग रास्ते में चलते-चलते कुछ बड़बड़ाते हुए जाते हैं; कई लोग गाड़ी में बैठे हैं, गाड़ी चला रहे हैं, अकेले हैं, मुट्ठियाँ उनकी बन्द रहती हैं, चिल्लायेंगे, गुस्सा करते हुए जायेंगे, चीखेंगे, बुरा-भला कहेंगे; कई लोगों को देखा होगा हाथ हिलाते हुए जा रहे हैं, कुछ बड़बड़ाते हुए जा रहे हैं, दाँत पीसते हुए जा रहे हैं, क्योंकि उनका कोई और सुनने वाला है नहीं, उनके अन्दर की जो पीड़ा है उसको सुनने वाला कोई नहीं है, वह

जीभ से न जाने कितनी बार कैसा-कैसा अनर्गल हम लोग बोल देते हैं, हमें पता भी नहीं चलता हम क्या-क्या बोल गए? इसे आप रोक लें और सोचें कि इसमें देखने में कोई तीर तलवार नहीं लगी हुई, लेकिन उससे भी ज़्यादा ख़तरनाक हथियार मेरी जीभ में है, इसको रोक लो।

और कहा जाता है कि यह मन सदैव संसार के विषय-वासनाओं के जाल में उलझा रहता है, इसको वहाँ से हटाकर परमात्मा के प्यार में डुबाना शुरू कर दें -- तो यह स्वयं का नियन्त्रण करने का एक सुन्दर रास्ता है और इसके लिए हमें एकान्त ढूँढना चाहिए। एकाग्र होकर बैठें।

आगे चलकर के भगवान कृष्ण ने भी एक शब्द कहा, बड़ा सुन्दर भाव है वह कि यह सब साधना करने के साथ-साथ एक चीज़ और करनी चाहिए कि व्यक्ति को अपना आहार व्यवस्थित कर लेना चाहिए। (वह जब श्लोक सामने आयेगा आपको व्याख्या करके बतलाऊँगा-कैसे आहार होना चाहिए, कैसे विहार होना चाहिए, कैसा आचरण होना चाहिए? चेष्टा कैसी होनी चाहिए? किस तरह से नियन्त्रण लगाएँ अपने आपे पर?)

साधना के दिनों में दो तरह की चीज़ों का सेवन, शरीर की दशा को ध्यान में रखकर के कराया जाता है-एक होता है कि पत्तेदार सब्जियाँ, केवल उन्हीं का भोजन और एक भोजन होता है केवल कन्द और मूल का भोजन। महापुरुष लोग ज़्यादातर कन्द-मूल वगैरह उखाड़कर के खाते रहे हैं। एक भोजन होता है जहाँ मूल का भी रस और पत्तों का रस भी जाकर मिल जाता है-वह है फल वाला भोजन। तो यह गुरु को देखना होता है कि किस समय कौन-सा भोजन दिया जाए, नींद कितनी होनी चाहिए? कैसे उसको रखा जाए और फिर उससे पूछा जाये इन दिनों तुम्हें स्वप्न कैसे आ रहे हैं? स्वप्न से भी पता लग जाता है कि मानसिक दशा कैसी है? वैसे तो एक चार्ट पूरा भर जाना चाहिए उसमें लिखा होना चाहिए कि आपका स्वभाव कैसा है, आपको अचानक आज कोई इस तरह की बात कहे तो आपका क्या जवाब होगा? परिवार के लोगों का व्यवहार आपके साथ कैसा है? आपके दोस्त कितने हैं, दुश्मन कितने हैं? इस तरह के सवाल सामने इसीलिए किये जाते हैं कि उसके

व्यक्तित्व का पता लगता है, मानसिक दशा का पता लगता है, यह पता लगता है – राजसिक व्यक्ति है, तामसिक व्यक्ति है, सात्विक व्यक्ति है – यह सब उस चार्ट से पता लगने लगता है; फिर गुरु उसको उसी हिसाब की साधना देता है।

उससे भी ज़्यादा यह कोशिश करनी होती है कि अन्दर का सारा गुब्बार निकाला जाये क्योंकि जब तक ख़ाली नहीं होंगे तब तक उसमें कुछ भी भरा नहीं जा सकता; गन्दे हाथ लग जायें, थोड़ी-सी खटाई पड़ जाए, दूध, दूध नहीं रहता इसलिए बर्तन स्वच्छ करना बहुत ज़रूरी होता है। बहुत-बहुत लोगों के अन्दर इतना कुछ गुब्बार भरा हुआ है कि उन्हें बैठा करके वह निकालना पड़ता है। इसीलिए यह प्रायश्चित् वाली जो विधि है, आँसू बहाओ या परमात्मा के प्यार में बैठ कर के गाओ या अपने अन्दर का जो भी कुछ है उस सब को बोल दो, तो यह ख़ाली करने का एक तरीका है। इसीलिए कुछ विधियों में ऐसा नियम है कि व्यक्ति थोड़ी देर तक तो रोयेगा, थोड़ी देर रोने के बाद शान्त होकर के बैठेगा। उसके बाद थोड़ी देर मुस्कुराना शुरू करेगा, फिर ज़ोर से खिलखिला कर हँसेगा, उसके बाद फिर शान्त होकर साक्षी भाव में बैठेगा। यह भी साधना का एक ढंग है, अपने आप को निर्मल करने के लिए और इसके लिए आवश्यक है कि कोई गुफा दी जाए जिस गुफा में व्यक्ति को एकान्त में बैठा दिया जाए, उसे कहा जाये कि बस तुम अब यहाँ बैठ करके साधना करोगे – थोड़ी देर ऊँचा-ऊँचा बोलो, चीखो-चिल्लाओ, उसके बाद प्रक्रिया पूरी हो जाए तो दूसरा रास्ता बताया जाता है कि शान्त होकर, एकाग्र होकर के बैठ जाओ।

आपने देखा होगा कि कई लोग रास्ते में चलते-चलते कुछ बड़बड़ाते हुए जाते हैं; कई लोग गाड़ी में बैठे हैं, गाड़ी चला रहे हैं, अकेले हैं, मुट्ठियाँ उनकी बन्द रहती हैं, चिल्लायेंगे, गुस्सा करते हुए जायेंगे, चीखेंगे, बुरा-भला कहेंगे; कई लोगों को देखा होगा हाथ हिलाते हुए जा रहे हैं, कुछ बड़बड़ाते हुए जा रहे हैं, दाँत पीसते हुए जा रहे हैं, क्योंकि उनका कोई और सुनने वाला है नहीं, उनके अन्दर की जो पीड़ा है उसको सुनने वाला कोई नहीं है, वह

किसी को कह नहीं सकते; या तो रात में सपने में बोलेंगे या चलते हुए बोलेंगे, अन्दर जो भी कुछ है वह निकलना चाहता है न और हर आदमी के अन्दर इतना कुछ कूड़ा-कबाड़ भरा पड़ा है, कोई पास बैठ करके वह सुनना नहीं चाहता। हाँ, यह कर लेते हैं कि अगर पास बैठ भी गये तो किसी तीसरे की निन्दा-चुगली करके अपना समय ख़राब कर लेते हैं।

एकान्त में बैठकर कोशिश करनी चाहिए जो कुछ आपके अन्दर है उस कूड़े-कबाड़ को निकालो, फिर थोड़ी तुलना करना – तू कितना शुद्ध, कितना पवित्र, कितना निर्मल, कितना महान, और मैं कितना नीच, मैं आना तो चाहता हूँ तेरे द्वार पर लेकिन आऊँ कैसे? मेरी चादर बड़ी मैली है प्रभु, कैसे निर्मल करूँ? कैसे दाग़ धोऊँ? विचार करते-करते, निर्मलता प्राप्त करते-करते फिर आगे बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए।

एक चीज़ और ध्यान रखना। कभी-कभी इतना प्यार करो परमात्मा को कि उसके प्यार में गाओ। ज़रूरी नहीं कि सब लोग बहुत अच्छा गा सकते हों लेकिन गुनगुना तो हर कोई व्यक्ति सकता है। जब भी आप स्नान करते हैं, पानी की बौछार ऊपर से पड़ती है, कोई चाहे गाना जाने या न जाने लेकिन अपने आप गाना शुरू करता है। जब आप कहीं एकान्त में, अकेले में चले जा रहे हों, अन्धेरा हो, डर लगता हो, तो आप डर को भगाने के लिए गाते हैं जैसे ही आपने गाना शुरू किया आपका डर भागता है, ऊँचा बोलना शुरू किया, अन्दर से डर भागने लगता है। जब आप बहुत खुशी में होते हैं, अपनी खुशी का इज़हार कैसे करेंगे – तरंग पैदा होगी, गुनगुनाना शुरू करेंगे और जब और तरंग पैदा हो जाए तो फिर नाचने लग जाओगे।

मीरा जब नाचने लगी, घर के लोगों ने उनको बुरा-भला कहना शुरू किया और मीरा ने किसी का ध्यान नहीं दिया, वह अपनी सुध-बुध खोकर के परमात्मा के प्यार में नाचती चली गई। किसी फ़कीर ने दूसरे फ़कीर से सवाल किया – मीरा को मिल गया है उसका गोपाल, पर लगता है नाच गाकर पाया जा सकता है। दूसरे फ़कीर ने जवाब दिया – नहीं, जब वह आनन्द अन्दर से प्रकट होगा, मुस्कुराहट बनेगा, तरंग बनेगा, गीत बनेगा और गीत, संगीत बनेगा

और संगीत जैसे ही उभरता है फिर वह थिरकन बनता है, अपने आप व्यक्ति नाचने लग जाता है, झूमने लगता है और मीरा के साथ भी ऐसा ही हुआ है।

जिस गीत-संगीत में और जिस कीर्तन में व्यक्ति अपनी सुध-बुध खोने लग जाता है, झूमने लग जाता है, वह कीर्तन सही बनता है, इसीलिए "कीर्तन" शब्द को उलटिए तो शब्द बनता है "नर्तकी" और नर्तकी जब नृत्य करती है तो वह अपने आप को, अपने नाम को, अपनी सुध-बुध को भूल करके नृत्य में ऐसी मग्न हो जाती है कि उसमें झूमती जाती है, नाचती जाती है। तो कहते हैं, कि नर्तकी वाला भाव जब आत्मा में आए, हिलोर बनकर व्यक्ति झूमने लग जाए, उस अवस्था में जो वह गाता जाए अपने प्रभु के गीत तब वह उस अवस्था का नाम कीर्तन बना करता है। "नर्तकी" शब्द को उलट दीजिए तो "कीर्तन" बना और "कीर्तन" को उल्ट दीजिए तो "नर्तकी" बना।

कुछ शब्द ऐसे ही हैं, उनको उलटने में ही आनन्द आता है मतलब उलट कर के ही मतलब पता लगता है-जैसे एक शब्द है "लाभ", लाभ प्राप्त करना चाहते हो तो शब्द को उलट दीजिए, तो फिर शब्द क्या बना "भला"-भला करो तो लाभ हो और अगर भला नहीं करते तो लाभ लेना चाहते हो तो वह लाभ फिर लाभ नहीं। तो इसीलिए उस समय व्यक्ति और तन्मय हो जायेगा अपनी सुध-बुध खो बैठेगा, परमात्मा का प्यार उसको ऐसा डुबायेगा कि उसको होश नहीं रहेगी, झूमेगा, गायेगा।

ज़्यादातर जितने भी सन्त हुए उन्होंने किसी से संगीत नहीं सीखा, किसी ने उनको कविता नहीं सिखाई लेकिन कविता उनके अन्दर से ही जन्म लेने लगी, आख़िर गाने लगे। गुरुनानक देव कौन-सी पाठशाला में पढ़े बैठकर? लेकिन अग़र गहराई से सोचोगे तो अपने परमात्मा की पाठशाला में बैठकर के, वहाँ से जो अमृत लिया वही तो संगीत बनकर के "शबद" बना है न। अब उस पर रिसर्च करने वाले लोग बैठ हुए हैं, न जाने कितने-कितने लोग पी. एच.डी. कर रहे हैं। अपने प्यारे के प्रेम में डूबने का मतलब ही यह है कि कविता जन्म लेगी।

कबीर, गा रहे हैं बैठे हुए; मीरा गाती हैं, नाचती हैं; तुलसी, सूरदास, गाते हैं, कविता लिख रहे हैं और रात-दिन उसी में डूबे हुए हैं और अगर देवी-देवताओं को भी आप देखें – सरस्वती-ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी, हाथ में वीणा पकड़ी हुई है; पता चला कि अगर जीवन में ज्ञान है तो ज्ञान संगीत को जन्म देगा, अगर ज्ञान पाने के बाद भी मस्ती नहीं आई तो फिर ज्ञान, ज्ञान नहीं अधूरापन है। नारद जी भक्ति के प्रतीक हैं, वह भी वीणा लिए बैठे हैं; पता लगा, भक्ति तभी परवान चढ़ेगी जब उसके प्यार में गीत गाओगे; और पूर्ण आनन्द में डूबे हुए भगवान शिव-आनन्द का स्वरूप, नृत्य और डमरू वादक, ताल-स्वर, यह जो हॉरमोनियम होता है न, सारे स्वर एक जगह आकर जुड़ जायें, जो वह स्वरों का संगम जुड़ता है उसकी जो एकता होती है वह आनन्द है।

भगवान कृष्ण सुदर्शन चक्रधारी हैं पर उनका चक्र दिखाई नहीं देता, वह तो छिपा हुआ है, प्रकट है उनकी बाँसुरी इसीलिए उनको "मुरली मनोहर" "मुरलीधर" "बंसीधर" इस नाम से ज़्यादा पुकारा गया। उनका स्वर, मादक स्वर, मोहक स्वर, आनन्द का स्वर, सबका कल्याण करता रहे, हम लोग उस स्वरूप का ध्यान करते हैं।

तो याद रखिए कि संगीत अनायास प्रकट होगा जब भक्ति जागेगी, कविता अपने आप फूटने लगती है। महापुरुष लोग जब भी कुछ कहते चले गए तो ऐसा लगा कि जैसे उनके अन्दर से कोई संगीत बह रहा है। और कविता में एक विशेषता होती है-कविता जितना सुनो उसमें नूतनता होती है, रस होता है और एक मोहक आकर्षण होता है कि कितना भी सुनते चले जाईये आपका मन उबेगा नहीं।

बिल्कुल ऐसा ही भाव है कि उन सन्तों ने, उन महापुरुषों ने जो भी अमृत बाँटा, आज लाखों साल भी अगर हो गए हों या सैकड़ों साल हुए हैं या आने वाले समय में लाखों साल होंगे, उनकी वाणी तब भी वैसे ही रस देती रहेगी, उसके रस में कभी कोई कमी नहीं आयेगी। साधारण कवि कोई कविता लिखता है तो एक-दो बार सुनने के बाद आपका मन वहाँ से हट जाता है लेकिन परमात्मा की भक्ति में डूबे हुए लोगों ने जो कुछ कविताऐं कहीं, इतने

साल बीत गए-तुकाराम को तीन सौ साल हो गए। सिर्फ़ आलनदी में ही एक स्थान पर स्वरों का संगम चलता रहा हो, भक्ति बहती रही, नहीं तुकाराम के माध्यम से सारे, जहाँ-जहाँ भी उन्हें याद करने वाले भक्त लोग बैठे हुए हैं, वह अभंग आज भी उस तरह से आनन्द लेते हैं-चाहे तिरुवल्लुवर हों या पुरंदरदास।

बड़ा अच्छा लगता है, पुरंदरदास के गीत पढ़िये कभी; पुरंदरदास कहते हैं – मिट्टी का घड़ा आग में तपने के बाद मिट्टी नहीं रह जाता; ओ मिट्टी के इन्सान, परमात्मा के प्यार में तपने के बाद फिर तू मिट्टी नहीं रह जायेगा, फिर तो तू उस लोक का वासी कहलायेगा, उसके प्यार का भण्डार तेरे अन्दर मौजूद हो जायेगा; गीत लिखे लेकिन किस अन्दाज़ से; थोड़े गीत नहीं उनके, बीस हज़ार गीत उन्होंने गाये; गीत गाते चले गए, सम्भालने वाले तो सम्भाल ही नहीं पाये।

नामदेव ने भी ऐसे ही किया-बहुत गीत गाये, लोग सम्भाल नहीं पाये पीछे। मीरा के गीतों का भी ऐसा ही हुआ क्योंकि खज़ाना परमात्मा का था, यह लोग तो वहाँ से लेकर के आगे बाँटते चले गए।

इसीलिए जब भी किसी व्यक्ति के अन्दर परमात्मा की कृपा उतरती है एक बड़ा आकर्षण उसके अन्दर होता है, आप कितनी भी देर उसके पास बैठना आपका मन उबेगा नहीं। दूसरी बात यह है कि उसका सान्निध्य शान्ति देने वाला होगा। तीसरी बात, पवित्रता जागृत होगी। चौथी बात, मन बदलने के लिए तत्पर होगा, बुद्धि सोचने को मज़बूर हो जायेगी, ज़िन्दगी धारा बदलने के लिए उन्मुख हो जायेगी। पता लगेगा कि कोई उससे जुड़ा हुआ, उसका प्यारा बन्दा सामने बैठा हुआ था जिसके कारण यह परिवर्तन की लहर जीवन में आती दिखाई दी। ज़ितनी-जितनी श्रद्धा करके उसके निकट बैठो उतना ही आनन्द आयेगा। इसीलिए भगवान कृष्ण ने कहा-

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।।

पवित्र-स्थान में जाकर आसन जमाना, एकाग्र होकर बैठना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना, आसन में बैठकर आत्मशुद्धि का ध्यान रखते हुए योग में प्रवेश करना।

भगवान आगे फिर कहते हैं–

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनःसंयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ।।

शान्त नहीं प्रशान्त होने का पहले प्रयास करना चाहिए, अग़र साधना में बैठना है तो यह पहली शर्त है।

कई लोग कहते हैं हम लोग आँखे बन्द करके बैठे, ध्यान तो आया नहीं, बुरे-बुरे ख़्याल आते रहे, ऐसा क्यों होता है? भाई, बुरे-बुरे ख्याल मन में बसाए हुए हैं, लड़ाई-झगड़ा बसाया हुआ है, मन को शान्त नहीं किया और आँखें बन्द करके आप सोचते हैं कि परमात्मा के दर्शन हों बल्कि दर्शन उस समय किस चीज़ का होता है – आपके अन्तः करण का दर्शन होने लग जाता है कि अन्दर क्या-क्या भरा पड़ा है वह निकलने लगता है सामने। अब उस समय क्या कोई गुरु पकड़कर के आपके अन्दर से अन्तः करण को खींच के बाहर फेंकेगा? दीक्षा दी जाती है लग़ातार बीस दिन तक गुरु की शक्ति का प्रभाव पड़ता है, ध्यान ज़्यादा टिकेगा; उसके बाद जैसे-जैसे आपकी कमाई सामने आयेगी, गुरु का आशीर्वाद सामने आयेगा, दोनों का मेल बैठना शुरू होगा तो फिर चमत्कार घटना शुरू होता है। पर अपना मन तो ख़ाली करना आपका ही काम है।

इतना मत उलझाओ कि सुलझ न सको और ऐसे मत झगड़ो कि झगड़ा ख़त्म न हो सके और ऐसा लालच मत कर लेना कि उस लालच का कहीं अन्त न हो और रात-दिन उसी बखेड़े में लगे रहो, ऐसा संग्रह नहीं करना कि छोड़ने में मुश्किल हो जाए और ऐसा मोह पैदा नहीं करना कि मरण दुःखकर हो जाए और ऐसे लोगों के बीच में मत बैठना कि ज़िन्दगी बोझिल हो जाए। हमें बहुत सोचना चाहिए कहाँ बैठें? किनके बीच बैठें? क्या सोंचे? क्या खायें? क्या पियें? कैसा वातावरण बनायें? कैसा व्यवहार बनायें? इस सब पर चिन्तन करना चाहिए और अग़र नहीं सोचोगे तो फिर चोट खाने वाली स्थिति रहेगी।

एकान्त स्थान में आप जाकर बैठो यह ज़रूरी नहीं कि एकदम शान्ति मिल जाए। हाँ, कुछ समय बैठते ही उन विचारों को हटाते चले जाओ। प्रार्थना करना – 'हे प्रभो! जिसने मेरे प्रति वैर रखा, मेरा बुरा किया, उसने संकल्प

किया, गाली दी, कोशिश की, लेकिन जिसका सम्भालने वाला तू बैठा हुआ है उसका क्या बुरा होने वाला है? भगवान, तेरी बड़ी कृपा है, तेरा बार-बार धन्यवाद है। दुश्मन तो हर बार चाहते हैं कि हम मिट जायें लेकिन जिसका सम्भालने वाला तू है, तेरी कृपा से मैं सुरक्षित हूँ, इसीलिए उनके लिए भी मंगलकामना करता हूँ, भगवान, उनका भला करना।' और अपने लिए क्या सोचना – 'तेरी दया का मैं भी भिखारी हूँ भगवान, मेरी झोली में अपनी कृपा की कुछ भीख डाल दे' और ऐसा कहते कहते फिर कहना – 'ओ मेरे प्रभो! सुलझना सिखा मुझे, मुझे तो उलझने की आदत पड़ गई है, मुझे फिर निकाल कीचड़ से।'

मन को ख़ाली करना, परमात्मा के प्यार को अन्दर पैदा करना, परमात्मा की कृपाओं को याद करना, जो-जो देन उसने आपको दी है, जो-जो भी कुछ उसने आपको दिया है, उस सबका धन्यवाद करते हुए कृतज्ञ होना, जो नहीं मिला उसकी शिकायत नहीं करना अपने सारे आँसू प्रकट करो तो उसके चरणों में, धन्यवाद दो तो उसे और गद्-गद् होकर धन्यवाद देना है, कितना धन्यवाद करूँ प्रभु! ऐसी दशा बनाकर के बैठना, ध्यान टिकेगा। सीधे जाते ही हमला करना चाहते हो न उससे बात नहीं बनने वाली।

दूसरी बात-भगवान आगे कहते हैं – *विगतभी* 'भी' से मतलब भीत होना, भयभीत होना। सब भय हटाओ, जिसने आज तक सम्भाला है, आगे भी सम्भालेगा, जिसने आज तक दिया है आगे भी देगा, जिसने आज तक आपकी सुरक्षा की है वह आगे भी आपकी रक्षा करेगा, इसीलिए उसका भरोसा जगाओ और समस्त प्रकार के डर को अपने अन्दर से निकालो।

भगवान ने आगे फिर फरमाया – *ब्रह्मचारिव्रते* – संयम का व्रत धारण करो, सारी ऊर्जा-शक्ति को एक तरफ़ लगाओ। देखिये, फ़कीर लोग, साधक लोग, कहते हैं कि जिसको तुमने मन दे दिया फिर उसी का मनन करना, मन दिया है परमात्मा को तो फिर रात-दिन उसका मनन करो, फिर संसार का मनन नहीं, संसार का चिन्तन नहीं और अगर संसार का चिन्तन करते हो तो इसका मतलब है कि यह कहना कि हमने तुझे अपना मन दिया प्रभु, मन अर्पण किया तो फिर यह झूठा है कहना कि कोई दोष रह गया, कमी रह गई; जिसके हो

गए फिर उसका ख़्याल करो; सारी ऊर्जा शक्ति को एक तरफ़ लगा दो, बात बनेगी।

शेख फ़रीद से किसी ने कहा – पाना चाहता हूँ लेकिन मिल नहीं रहा। कोशिश तो बहुत की, सफ़ल नहीं हुआ, आप कोई रास्ता बताओ, अभी बताओ, इसी समय बताओ।

शेख फ़रीद ने कहा – बता दूँगा।

बोला – नहीं महाराज, नहाना-धोना बाद में कर लेना, पहले ज़रा बताओ।

फ़रीद ने कहा – अभी थोड़ी देर ठहरो, अभी बाद में बतायेंगे, कुछ उपदेश करेंगे।

'नहीं नहीं महाराज, अभी बताओ, मुझे जल्दी है, मैंने पूरी ताकत लगाई पूरा ज़ोर लगाया लेकिन उपलब्धि नहीं हुई।'

शेख फ़रीद नदी में स्नान करने जा रहे थे, उसे बोले – तू भी आ जा।

अन्दर जैसे ही पहुँचे, शेख फ़रीद ने उसको पास बुलाया, गर्दन पकड़ी और ज़ोर से नीचे दबाया और ऊपर बैठ गए। फरीद साहब ने जो दबाया वह आदमी बड़े ज़ोर से धक्का देकर के अलग हटकर के छूट के भागा और बाहर निकलकर बोला, "आपकी पकड़ से छूट गया, आप तो मुझे पूरा मारने की कोशिश कर रहे थे, ज्ञान देने के लिए तैयार हुए या मारने के लिए तैयार हुए? शेख फ़रीद ने कहा–एक बात बताओ –

क्या तुमने अपनी जान बचाने की कोशिश की?

बोला – 'महाराज, मैंने पूरी-पूरी कोशिश की अपनी जान बचाने की।

शेख फ़रीद बोले – तो फिर जब ऐसी ही पूरी कोशिश करोगे परमपिता परमात्मा को पाने की तो वह तुम्हें मिल जायेंगे।

अर्जुन को आगे समझाते हुए भगवान कृष्ण ने योगी के आसन के सम्बन्ध में कहा- आसन स्थिर हो, मन में धैर्य, अपनी इन्द्रियों को संयम में रखते हुए साधना के मार्ग पर चलना चाहिए। आगे फिर बताया कि हमारा आहार, भोजन, वे भी पवित्र हों।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।

युक्ताहार, उपयुक्त, संतुलित आहार और *विहार* – भ्रमन्त संसार के भोग, संसार के पदार्थों की *तरफ़* चलना – आहार और विहार दोनों ही हमारा संतुलित होना चाहिए; *युक्तचेष्टस्य कर्मसु:* – जितने भी कर्म करते हैं और जैसी भी हमारी चेष्टायें हैं – वे भी सब युक्त अर्थात् संतुलित और मर्यादित होनी चाहियें; *युक्तस्वप्नाववोधस्य* – निद्रा भी संतुलित होनी चाहिए तब ही दुःख को तरा जा सकता है अर्थात् योगी का योग निर्विघ्न रूप से तभी सम्पन्न होगा जब उसकी यह विशेषतायें हों – पहली विशेषता – भोजन नियन्त्रित होना चाहिए लेकिन भोजन को नियन्त्रित करने से मतलब है–न तो अधिक खाना और न भोजन बिल्कुल छोड़ना। साधना करने के लिए जो लोग बैठते हैं उनके सामने यह कठिनाई आती है–भोजन थोड़ा भी स्वाद में आकर ज़्यादा कर लिया, निद्रा और आलस्य आना शुरू हो जाता है और अग़र बिल्कुल अन्न का परित्याग करते चले जायें, तो भी साधना ठीक नहीं चलेगी क्योंकि परमात्मा का जो यह दिया हुआ रथ है, यह शरीर, यह हमें सौ वर्ष की यात्रा के लिए मिला है और हमारे सामने जीवन का जो मार्ग है इस रथ के सामने पड़ने वाला जो मार्ग है वह बड़ा उबड़-खाबड़ है। अग़र समतल मार्ग मिले तो रथ सही रहे लेकिन उबड़-खाबड़ मार्ग मिलता है तो फिर यह जीवन-रूपी रथ संसार के पथ पर ठीक ढंग से चलेगा भी नहीं और ख़राब भी ज़्यादा होगा। इसीलिए सौ साल की यात्रा पर अग़र हम निकले हैं तो हमारा कार्य होना चाहिए कि इस रथ को, इस भगवान के मन्दिर को स्वस्थ रखना, स्वच्छ रखना, बलिष्ठ रखना, ऊर्जावान रखना, सम्भाल के रखना, यह कर्त्तव्य हमारा ही होता है। रोगी शरीर में कोई व्यक्ति परमात्मा के दर्शन कर पाए यह सम्भावना नहीं।

दूसरी बात, जैसे कोई लकड़ी घुन ने खाई हो, दीमक लग गई हो, कीड़ों ने खाई हो तो वह काम की नहीं रहती, इसी तरह से संसार के विषय भोगों से खाई हुई शरीर की लकड़ी अग़र ज़रजरित हो गई तो फिर वह परमात्मा के हवन में अर्पित करने के कार्य में नहीं आयेगी और यही सोचना कि अग़र लकड़ी बहुत पुरानी हो और उस समिधा को आप हवन में डालना चाहें तो वह
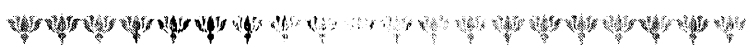
समिधा भी काम नहीं आने वाली। एक तो परमात्मा की तरफ़ चलने वाले व्यक्ति को सोचना चाहिए कि उम्र का वह भाग जब उसमें पूरी तरह से यौवन के फूल खिले हुए हों, शरीर स्वस्थ हो, मन की दशा ठीक हो, उस अवस्था में भगवान को अर्पण किया जाए, जैसे सुन्दर खिला हुआ फूल भगवान के चरणों में अर्पित करते हैं; सड़ा हुआ, बासा, पुराना फूल, सूखा हुआ फूल कोई नहीं चढ़ाता, ऐसे ही परमात्मा की तरफ़ चलने का समय तो सबसे अधिक वही उपयोगी है जिसमें शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ है और आयु युवा अवस्था वाली है।

महत्त्वपूर्ण चीज़ है कि हमारे इस रथ को, इस शरीर को संचालित करने के लिए, इसका जो आहार है, इसका जो ईंधन है उसे सही करना हमारा कर्त्तव्य विशेष रूप से है। नपा तुला भोजन लेना चाहिए। अब यह नहीं कहा जा सकता किस आदमी के लिए कितना भोजन हो क्योंकि हर एक व्यक्ति के शरीर की स्थिति अलग-अलग है पर इतना ज़रूर ध्यान रखना चाहिए कि पानी के लिए और हवा के लिए भी जगह छोड़ देनी चाहिए। जो आदमी ज़्यादा परिश्रम करता है और अच्छी भूख जिसको लगती है वह व्यक्ति जब अन्न की आहुति अन्दर डालता है तो फिर वह शरीर के लिए विशेष रूप से लाभकारी होती है, भोजन का स्वाद भी वही व्यक्ति अधिक ले सकता है जिस आदमी ने भूख को अच्छी तरह प्रचण्ड किया हो।

दूसरे ढंग से कहा जाए, आयुर्वेद के हिसाब से अगर पसीना बहाओगे तो स्वाद अधिक ले सकोगे, पसीना शरीर से ज़्यादा निकलना चाहिए, परिश्रम करना चाहिए, तो फिर आपको भोजन का अधिक स्वाद आयेगा। नित्य-प्रति व्यक्ति को अपने शरीर से कार्य लेने चाहिए लेकिन मस्तिष्क से अधिक कार्य लेने के साथ-साथ कुछ न कुछ शारीरिक परिश्रम भी करना चाहिए। जितना आप आराम-पसन्द शरीर को बनायेंगे उतना ही इसकी सहन करने की शक्ति कम होती चली जायेगी और दुःख जब इसके सामने आयेगा तो थोड़ा दुःख भी ज़्यादा महसूस होगा; कठिनाईयों के बीच में यह खड़ा नहीं हो सकेगा, इसको तपाना और मज़बूत रखना बहुत आवश्यक है। स्वस्थ शरीर के माध्यम से ही आप संसार की यात्रा को सफलता पूर्वक सम्पन्न करेंगे।

इसीलिए वेदों को पढ़िए जहाँ पर यह कहा गया है कि यह मैंने (परमात्मा कहते हैं) तुम्हें सौ साल की अवधि दी है, इसको, इस अवधि को, इस शरीर को स्वस्थ रखना और ठीक रखना तेरा कर्तव्य है और अग़र प्रभात में उठकर प्रभात का आनन्द नहीं लोगे और शरीर को स्वस्थ नहीं रखोगे तो मृत्यु अनेक रूपों में आकर के डरायेगी, दु:ख अनेक शक्लें धारण करके आयेगा और डरायेगा। ध्यान रखना चाहिए कि परमात्मा की दी हुई इस सौगात को बेकार न जाने दें और अपने को स्वस्थ रखें।

आपने देखा होगा कि जो लोग ज़्यादा तकिये का इस्तेमाल करते हैं, मोटे-मोटे तकिये लगायेंगे, बाद में स्थिति यह आ जाती है कि जब रीढ़ की हड्डी में या गर्दन की हड्डी में फ़र्क आ जाए, सरवाईकल वगैरह की परेशानी खड़ी हो जाए तो फिर डाक्टर कहेगा तकिया हटाओ; बहुत मोटे-मोटे गद्दे लगाकर आप लेटते रहे तो फिर बाद में फिर यह कहा जायेगा कि एकदम सपाट जगह पर सोईये, तख़्त पर, गद्दे के नाम पर कहा जायेगा केवल दो इंच, एक इंच की रुई लगाकर के ही सोईये, हो सके तो सपाट जगह पर सोएं और अगर तब भी नहीं माने आखिर में अग़र हॉस्पिटल तक अग़र चले गए तो टाँगों के ऊपर या ग़र्दन से या कमर में कहीं न कहीं वज़न लटकाया जायेगा और उस तरह से लेटाया जायेगा। तो अग़र आराम किया, बाद में उतना ही कष्ट भोगना पड़ा। आराम से मतलब है कि शरीर को अग़र आप बहुत ज़्यादा सुविधाओं में लेकर जाओगे तो उतनी ही दुविधायें आपको भोगनी पड़ेंगी क्योंकि संसार का नियम है कि प्रकृति के नियमों को कोई भी तोड़ेगा-चाहे वे सन्त हों या असन्त हों, ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, धनी हो या निर्धन हो, जो भी नियम तोड़ेगा उसे सज़ा भोगनी पड़ेगी और प्रकृति के नियम बड़े कठोर हैं।

इसीलिए आयुर्वेद में यह कहा जाता है कि एक परहेज़ कर लेना ज़्यादा अच्छा, सौ दवायें करना अच्छा नहीं लेकिन हम लोग क्या कहते हैं कि हम सौ दवायें करने को तैयार हैं लेकिन एक परहेज़ नहीं करेंगे। तो सौ तरह की दवाईयाँ खायेंगे, परहेज़ नहीं करेंगे, दु:ख भोगते जायेंगे।

आप देखिये कैसी मूर्खतायें प्रचलित हैं—आव-भगत के नाम पर, आतिथ्य के नाम पर व्यक्ति को ज़बर्दस्ती खिलाया जाता है और अग़र व्यक्ति

कहे कि नहीं हम बीमार हो जायेंगे तो आगे से क्या जवाब दिया जाता है: – कोई बात नहीं, आप खाईये, हम आपको दवाई खिला देंगे; बीमार हो जाओगे तो हम दवाई दे देंगे लेकिन खाओ ज़रूर; बीमार पड़ लेना तो कोई बड़ी बात नहीं है वह तो हम दवाई देंगे – तो यह क्या आतिथ्य हुआ जिस आतिथ्य में आप बीमार पड़ें भोजन शरीर के लिए है, शरीर भोजन के लिए नहीं है – यह बात निश्चित है और यह भी कहा जाता है कि आपका स्वास्थ्य भोजन-शाला में ही बनता है और वहीं बिगड़ भी जाता है। दुनिया में कम खाने से लोग नहीं मरे लेकिन जितना ज़्यादा खाने से बीमार हुए और मरे हैं और मुसीबत में आए हैं इसके बहुत-बहुत आंकड़े हैं। इसीलिए भोजन पर नियन्त्रण रखना बहुत आवश्यक है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि अगर योग की तरफ़ चलना चाहते हो तो फिर भोजन को नियन्त्रित करना बहुत आवश्यक है और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आपका अन्न पवित्र हो।

चाणक्य, राजनीति में रहे लेकिन साधना में भी तल्लीन थे। शिवजी के प्रति उनकी आस्था थी और वह व्यक्ति देश का प्रधानमन्त्री होने के बाद भी अपने शहर से बाहर कुटिया बनाकर रहते थे। अपने भोजन के लिए कोशिश करते थे कि अपने हाथों से परिश्रम किए हुए खेत में से उगाये हुए अन्न को ही ग्रहण करूँ और फटे हुए कम्बल को ओढ़कर सोये लेकिन विद्यार्थियों के लिए आए हुए नए कम्बलों का प्रयोग नहीं किया क्योंकि उनको यह ध्यान था कि यह किसी अमीर के घर से दान आया है और अमीर व्यक्ति ने कमाई करते समय हो सकता है ग़लत ढंग से कमाई की होगी।

कणाद ऋषि हमारे देश में हुए जिन्होंने "वैशेषिक" नाम का बहुत बड़ा दर्शन-शास्त्र संसार को दिया। उनका नियम था कि जब किसान लोग फसल उठाकर के जब अपनी फसल अपने घर ले आते थे तो जो दाने खेत में बचे रह जाते थे, जो बालियाँ गेहूँ की खेत में बची रह जाती थीं या धान की, चावल की, जो बालियाँ पड़ी रह जाती थीं, जिसके ऊपर चिड़ियों का, पक्षियों का, अधिकार है और जो पानी पड़े तो ज़मीन के अन्दर अंकुरित होकर वहीं ख़राब हो जायें, तो वह वाली बालियाँ जिस पर किसी और का अधिकार नहीं, उन्हें चुन कर लाते थे, एक-एक दाना इकट्ठा करते थे, कण-कण को इकट्ठा

करते थे, कण-कण इकट्ठा करके खाते थे इसीलिए उनका नाम "कणाद" पड़ा था। घोर घने वन के अन्दर बैठकर दो ग्रास, चार ग्रास, एक समय भोजन कर लिया और तब साधना करते हुए संसार के सामने इतना बड़ा दर्शन-शास्त्र, ऐसी फिलॉसफी दी जिसमें उन्होंने कहा था कि शब्दों को भी पकड़ा जा सकता है। भौतिक विकास की बात से ज़्यादा उन्होंने आध्यात्मिक विकास की बात कही, जिसमें उन्होंने कहा–

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः

– कि धर्म क्या है? जिससे मनुष्य की लौकिक उन्नति होती हो और परलौकिक उन्नति होती हो ऐसे समस्त कृत्यों का नाम धर्म है।

सूत्रों की भाषा में जिस व्यक्ति ने संसार को ज्ञान दिया उसकी विशेषता थी कि सबसे पहले अपने आहार को ठीक किया। तिरुवल्लुवर ने कहा था कि मनुष्य अपना भोजन करने से पहले एक कृत्य ज़रूर तेरे जीवन में आना चाहिए, तेरी ज़िन्दगी को बदलेगा – भोजन करने से पहले, रोटी हाथ में लेते ही, एक बार ध्यान से उसे देखना – मेरा अन्न पवित्र है या नहीं? इसमें किसी बेगुनाह के आँसू तो नहीं हैं? किसी बेगुनाह का खून तो इसमें नहीं है? किसी के बच्चों का हक़ तो मेरी रोटी में नहीं है? मैं किसी को सता कर के यह अन्न कमाकर तो नहीं लाया? मैंने छल कपट से तो यह रोटी नहीं कमाई? मेरी रोटी में पाप तो नहीं भरा हुआ? तिरुवल्लुवर कहते हैं कि एक बार ध्यान से देखना रोटी को, अग़र तेरी रोटी पवित्र है तो निश्चित है वह तेरी रोटी तुझे शान्ति देगी और तुझे परमात्मा के चरणों में लेकर जायेगी और अग़र तेरा अन्न पवित्र नहीं तो पाप का अन्न तुझे चैन से बैठने नहीं देगा, तेरे मन में विकार पैदा होगा।

गुरुनानक देव ने भी संसार के सामने शिक्षा प्रस्तुत की थी-अमीर की और गरीब की रोटी हाथ में लेकर। अमीर की रोटी को दबाया और उसमें से खून टपकने लगा; ग़रीब मेहनत-मज़दूरी करने वाले, भगवान की तरफ जुड़े हुए व्यक्ति की रोटी, सूखी रोटी को दबाया, उसमें से दूध टपकने लगा। गुरुनानक देव जी ने फरमाया कि पाप की कमाई खून से भरी हुई है लेकिन पवित्र कमाई वाली सूखी रोटी में भी परमात्मा की कृपा की जो विशेषता है, जो बख्शीश उसने की है, उससे दूध टपक रहा है, अमृत टपक रहा है।

सोचिए कि अग़र हमारा अन्न पवित्र है तो हमारा मन पवित्र है, मन से ही सारी चीजें चलती हैं; इसीलिए आहार को पवित्र रखो, आहार नपा-तुला लो और यह मानकर चलो कि सात करोड़ जीवाणुओं के माध्यम से यह शरीर का नगर बसता है; विज्ञान के हिसाब से अग़र देखा जाए तो, सात करोड़ जीवाणु, मतलब अग़र दिल्ली की जनसंख्या एक करोड़ है तो आप यह मानिये कि सात गुणा दिल्ली हो तो उसे कहा जायेगा कि इतनी आबादी वाली नगरी और कोई नहीं आपका शरीर है, यह जो इतने सारे जीवाणुओं से, यह जो हॉरमनी बनती है इसकी, यह जो एक तरह की एकता बनती है, पूरे शरीर में यह जीवाणु मिलकर के काम करते हैं, तो एक नगर है यह – इस नगर को कहा गया है कि यह है पुरी। इस पुर में, इस नगरी में, जो श्यन करता है वह पुरुष है, पुरुष को पुरुष कहा जाता है, तो इसका मतलब हुआ कि हम इस पुरी में रहते हैं इसीलिए पुरुष कहलाते हैं अर्थात् यह आत्मा एक बड़े भारी नग़र में रहता है और वह नगर हमारा शरीर है

पाँव का उंगलियों से लेकर के मस्तिष्क तक हमारी चेतना लग़ातार प्रवाहित होती है – अग़र कहीं एक पिन भी चुभती है, काँटा भी चुभता है, आप सोचिए कि वह जो चेतना बह रही है उसके अन्दर कहीं-कहीं अवरोध आया तो पीड़ा अनुभव होती है। कितना सुन्दर ताल-मेल है और इस शरीर को आपने केवल मध्य में रखना है। यह जो "युक्त" शब्द प्रयोग किया है, इसका मतलब है मध्य मार्ग में आपने इसको बाँधना है, अति कुछ भी नहीं करना है – न अति भोजन, न अति भूखा, न अति कष्ट में रखना, न ज़्यादा आराम में रखना – बीच वाला मार्ग, तब यह ठीक रहेगा, नहीं तो वही बात होगी जैसे कभी हैनरी फोर्ड ने कहा था –

उसने अपने बारे में जो लिखा उसमें एक प्रसंग आता है नए-नए उन दिनों यह एयर कण्डीशनर चले और इस व्यक्ति ने अपने दफ़्तर में लेकर गाड़ी और सब जगह पर ऐयर कण्डीशनिंग पूरी तरह कराने के बाद पूरा वातानुकूलित घर, दफ़्तार, गाड़ी-ऐसा हिसाब बनाया कि बाहर के मौसम का कोई प्रभाव न पड़ा शरीर पर। अब एकाएक व्यक्ति जो सुख-सुविधा में नहीं था, परिश्रम करता हुआ, हर तरह के मौसम की मार को सहता हुआ चल रहा था, अब

उसे ऐयर कण्डिशंड कमरे में बैठा दिया जाए, तो शरीर की दशा क्या होती है?-बीमार रहने लगेगा। उनका कहना है कि जब मैं बीमार रहने लगा तो डॉक्टर के पास गया।

डॉक्टर ने कहा कि और दवाईयों के साथ आपको एक कार्य करना चाहिए क्योंकि आपके शरीर का सन्तुलन बिगड़ गया है-जितनी देर ठण्ड में रहते हो उतनी देर गर्मी में रहो, मतलब यह है कि अब आपको अपने टब में गर्म पानी डालकर दो घण्टा सुबह और दो घण्टा शाम को लेटना चाहिए तब ठीक रहोगे। वह बोले इसका मतलब यह हुआ कि जितना आराम किया उतना ही गरम पानी के माध्यम से पसीना निकालें तब ठीक रहेगा और उन्होंने कहा कि उसके बाद यही हुआ कि इधर ऐयर कण्डीशण्ड हॉल में बैठकर के आया उसके बाद में सारा दिन वह सब काम करने के बाद अपने को स्वस्थ रखने के लिए फिर गर्म पानी में लेटा जाकर क्योंकि शरीर तो अपना कहीं ना कहीं तालमेल बनायेगा।

आप सोचिए कि अगर ऐसे नहीं हम कोई प्रयोग करेंगे, अपने को स्वस्थ रखेंगे, ज़्यादा आराम पसन्द होकर के यह जो आजकल वातानुकूलित साधन बने हुए हैं इन सबका प्रयोग करते रहेंगे तो फिर कहीं आपको स्टीम-बॉथ लेना पड़ेगा, कहीं सोना-बॉथ लेना पड़ेगा, उन सबके बाद शरीर ठीक हो तो ठीक है अन्यथा बेडौल होने लग जाता है। जिनके शरीर में चर्बी ज़्यादा बढ़ने लगती है उन लोगों को बड़ी समस्या आने लगती है और आप लोग जानते हैं कि जिस समय पैंतीस साल की अवस्था में व्यक्ति आता है उस समय तब उसकी नींद, उसका भोजन, एक अलग तरह से चल रहा होता है, उसके बाद शरीर की स्थितियाँ बिगड़नी शुरू होती हैं। पैंतालिस पर पहुँचते पहुँचते बहुत सारे रोग जो अभी तक नहीं उभरे थे वह उभरने शुरू होते हैं। पचास-पचपन तक पहुँचते-पहुँचते मुसीबत यह होने लग जाती है कि व्यक्ति को रोज़ अपना ध्यान करना पड़ता है, क्योंकि शरीर के अन्दर क्षमता है नहीं और सारी ऊर्जा-शक्ति आकर के जीभ पर ठहरती है, स्वाद लेने की इच्छा होती है, पचा सकता नहीं, खाने की इच्छा ज़्यादा है और बाद में पेट में गड़बड़ और उस अवस्था में जाकर जीभ को कंट्रोल करना है, स्वाद को जीतना है और कम से कम बोलना

है लेकिन होता यह है कि उस समय आदमी ज़्यादा से ज़्यादा बोलेगा, बोले बिना रहेगा नहीं। वह अवस्था है कि जैसे-जैसे व्यक्ति का शरीर आगे जाए, नियन्त्रण ज़्यादा लगाओ।

बच्चे को कहा जाए दस घण्टे तक सोने देना उसे, उसके लिए ज़रूरी है क्योंकि शरीर का निर्माण हो रहा है, विकास हो रहा है। जवान आदमी आठ घण्टे तक सोए रहे, सात घण्टे-आठ घण्टे तक उसके लिए ज़रूरी है; बूढ़ा आदमी चार घण्टे तक सोता है तो इसका मतलब क्या है कि अब निर्माण शरीर में नहीं होना है, अब कोई विकास वाली बात नहीं है, अपने आप नींद खुलती है और जब नींद खुलने लग गई है तो सोच लेना चाहिए कि अब शरीर ह्रास में है, छूटने की स्थिति में बढ़ता जा रहा है, उस समय व्यक्ति को मान लेना चाहिए कि अब अपना क़ायदा कानून बच्चों पर लादना नहीं है – आप कहने लग जायें कि देखो, हम लोग सवेरे चार बजे उठ जाते हैं, यह बच्चे लोग, यह जवान लोग सोए रहते हैं, उठते ही नहीं। अब आपकी तो, क्योंकि सवेरे की स्थिति शरीर की ऐसी है कि आप लोग सो नहीं सकते, अपने आप शरीर मजबूर करता है उठने के लिए, आपको जाना पड़ता है और बच्चों को आप कहें कि वह सो क्यों रहे हैं, उठें। अब अग़र आपसे पूछा जाये कि आप उस अवस्था में जब थे तब क्या कर रहे थे? तो यह ध्यान रखिए कि हर व्यक्ति के शरीर के हिसाब से निद्रा की स्थिति अलग है। हाँ, अगर कोई कानून या फार्मूला बनाकर कहा जाए, तो फिर यह कहा जा सकता है कि हर व्यक्ति के लिए औसतन छः घण्टे की नींद आवश्यक है, छः घण्टे अच्छी तरह नींद लो और जो लोग दिमाग़ी काम अधिक करते हैं उनको चाहिए पन्द्रह-बीस मिनट तक दिन में आराम कर लिया करें।

डॉक्टर लोग इस बात का बड़ा ध्यान रखते हैं-मरीज़ को जो दवाई देते हैं वह तो देते ही हैं लेकिन यह भी सोचते हैं कि मस्तिष्क को तनाव से रहित करना है इसीलिए ज़्यादातर सोने के लिए मज़बूर करते हैं वह लोग मरीज़ के लिए कि आराम करता रहे मरीज़, उससे शरीर ज़्यादा स्वस्थ रहता है। इसीलिए मैं आपसे यह निवेदन करूँगा कि आहार नियमित, मर्यादित, सन्तुलित लीजिए।

चरक के अनुसार, या आयुर्वेद को देखें तो वहाँ पर यह निर्देश है –

हित भुक् मित भुक् ऋत भुक्

ऋतु के अनुकूल भोजन करो, जो हितकर है वही भोजन तो, जो आपके शरीर में पुष्टि दे सकता है; मित भुक्-और बहुत ही मर्यादित और संतुलित भोजन लो, बल्कि सोचना चाहिए कि आपका शरीर सलाद वगैरह ग्रहण करेगा तो ज़्यादा स्वस्थ रहेगा।

सैनडो एक पहलवान हुए। उन्होंने अपने विचारों में एक बात लिखी कि मैं यह बात जानता हूँ कि सबसे ज़्यादा बलशाली और गतिवान अगर कोई होता है तो घोड़ा होता है लेकिन मीट-मांस तो नहीं खाता; चने या घास खाकर के शक्ति पैदा करता है; बैलों के अन्दर इतनी ताकत होती है तो कहते हैं वह भी घास-पात खाते हैं तो शक्ति आती है अन्दर। उसका कहना है कि आहार शाकाहारी हो और आप ज़्यादा उबालकर, मिर्च-मसाले डालकर खाओगे तो फिर आप उसकी जो सारी ऊर्जा है, प्रोटीन है, विटॉमिन्स हैं, उन सबको ख़त्म कर रहे हो, इसीलिए आज डॉक्टर ज़्यादातर यह कह रहे हैं कि अगर अपने शरीर को ठीक रखना है तो भोजन को ज़्यादा देर तक पकाना नहीं चाहिए, बस उबालिये और लें, और सलाद ज़्यादा से ज़्यादा कच्चा खायें, बहुत अच्छी बात है। फ्रैंच लोग दस बारह तरह के सलाद को महत्त्व देते हैं, उबालेंगे भी सही, शहद का प्रयोग भी करेंगे; रशियन लोग भी इसी तरह से करते हैं – तो तरह-तरह से सलाद को आप कितनी भी तरह का भोजन बनाना सीखते हैं तो उसमें सलाद बनाना भी ज़्यादा से ज़्यादा आपको बनाना चाहिए आधे से ज़्यादा भोजन तो आप अपना सलाद से ही कर लें।

यह अलग बात है कि जिनको पत्थरी वगैरह रहती है तो उन लोगों के लिए कहा जा सकता है कि भाई आप टमाटर नहीं ले सकते, कुछ इस तरह की चीज़ों का निषेध होता है, तो जहाँ इस तरह की चीज़ें हों वहाँ तो निषेध लग सकता है लेकिन फिर भी चाहे चुकन्दर है या पालक है या गोभी के पत्ते हैं, गाज़र है, खीरा है – यह सब व्यक्ति को लाभ देने वाली चीज़ें हैं और इसी तरह से अंकुरित भोजन, जिसमें आप अंकुरित दालें ले सकते हैं और सबसे ज़्यादा आनन्ददायक चीज़ है, हम लोग अध्ययन करते थे जिस समय गुरुकुल में तो भोजन में सवेरे जब नाश्ता होता था तो "दलिया" दिया जाता था, गेहूँ

का 'दलिया' दूध के साथ और सच में वह अपने आपे में इतना लाभकारी था क्योंकि रेशेदार आप कोई चीज़ लेते हैं – फलों में या दलिया वगैरह आप लेते हैं, आंतों को ख़राब नहीं होने देता, ऊर्जा-शक्ति बहुत देता है, सन्तुलन बनाता है।

मैं यह निवेदन करूँगा आप सबसे कि अपने भोजन को ठीक रखना शुरू करो तो आप हर तरह से ठीक रहोगे और जितना भोजन करते हैं उतना उससे ज़्यादा परिश्रम करना भी ज़रूरी है-केवल घी-दूध से ही लाभ नहीं हो जायेगा, ठीक है कि दूध व्यक्ति लेता है तो दूध व्यक्ति के लिए बहुत लाभकारी है। चालीस साल के बाद कहा जाता है कि दही व्यक्ति को बहुत लाभ देती है और हमारे लोग, बुजुर्ग लोग तो कहते थे कि मट्ठा अग़र आप लें तो उसका तो कहना ही क्या? बड़े अच्छे ढंग से लोग प्रयोग करते थे, थोड़ा-सा पुदीना, कुछ तुलसी दल और जीरे का तड़का लगाकर मट्ठा जिस तरह से तैयार करते थे वह अपने आप में बड़ा लाभ देता था और भोजन के साथ पानी की व्यवस्था भी ऐसी रखी गई कि अग़र पानी लेना पड़े तो बहुत थोड़ा-सा पानी बीच में, नहीं तो पन्द्रह-बीस मिनट के बाद में पानी पी लिया जाए पर, पानी के लिए जगह ज़रूर रखनी चाहिए और जैसे की इंग्लैण्ड वाले लोग कहते हैं कि सवेरे का जो नाश्ता है वह किसी प्रिंस (राजकुमार) की तरह से होता है और दोपहर का जो भोजन है वह किंग (राजा) की तरह से होता है और रात्रि का जो भोजन है जो आप डिनर करेंगे तो वह किसी क्वीन (रानी) की तरह से है-तो उनका कहना है कि सवेरे का भोजन तो आपका नाश्ता थोड़ा हो, नपा-तुला हो लेकिन बलिष्ठ और पौष्टिक भोजन होना चाहिए। इसीलिए सवेरे ऐसी चीज़ ही लेनी चाहिए कि जो आपके शरीर में ज़्यादा ऊर्जा दे। दोपहर के भोजन में सारी तरह की, राजा जब बैठता है तो उसके चारों तरफ खूब सजावट होती है, तो दोपहर के भोजन में तो सब तरह की चीजें होनी चाहिऐं। जो आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखा है कि बारह, ग्यारह, तेरह और पन्द्रह तक चीजें बताई गई हैं कि उसे चटनी बनाने के लिए प्रयोग करो क्योंकि कुछ लेहिये चीजें होनी चाहियें, चाटने वाली चीज़ कुछ होनी चाहिए-चटनी तो वही है जो आदमी को चाटने के लिए मजबूर कर दे; कुछ

रस वाली चीज़ होनी चाहिए-सब तरह का भोजन-क्योंकि मैं केवल भोजन के ऊपर ही नहीं कहना चाहता, संक्षेप में कह रहा हूँ-यह सारी चीज़ों का तालमेल बनाते बनाते ध्यान रखना चाहिए कि रात्रि का जो भोजन है वह हल्के से हल्का हो; उसकी कोमलता का, सुकोमलता का ध्यान रखना चाहिए लेकिन भोजन करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना है कि अग़र मधुर संगीत चले और प्रसन्न होकर ग्रहण करें और यह मानकर ग्रहण करें कि यह मेरे प्रभु का प्रसाद है तो फिर वह अन्न कमाल करेगा।

महिलायें भी भोजन बनाते समय इस बात का पूरा ध्यान रखें कि जब भोजन बनाया जाये तो उस समय हो सके तो मन-मन में अपने प्रभु का भजन करते-करते भोजन बनायें क्योंकि यह किसी व्यक्ति का भोजन बन रहा हो ऐसा नहीं मानें, यह हमारे प्रभु का प्रसाद तैयार हो रहा है यह मानकर के उसे तैयार करना चाहिए; ऐसी अवस्था में बनाया गया भोजन चमत्कार पैदा करता है। यह बात निश्चित है।

इसीलिए मैंने आपसे कहा – ऋतु के अनुकूल भोजन करना, सन्तुलित भोजन करना और यह ध्यान में रखकर के कि पौष्टिक भोजन हो और जो लोग बहुत परिश्रम करते हैं, पसीना बहाते हैं, मेहनत मज़दूरी करते हैं उनके लिए कोई इतने नियम नहीं बन पाते, उन लोगों की व्यवस्था अलग ही होती है, उनकी डाईजेशन पॉवर भी अलग तरह की होती है। वह कहा ज़ाता है न कि–

कोई किसान मोटी-मोटी, सवेरे-सवेरे, चार सूखी रोटियाँ खाकर, पानी पीकर एक गिलास, उठकर के अपने खेत में हल चलाने के लिए चला। तो एक वैद्य था, उसने दूर से किसान को देखा; उस वैद्यजी ने किसान की तरफ आवाज़ देकर कहा – बीमार पड़ोगे। अग़र पानी लेना था तो बीच में लेते थोड़ा-सा, भोजन किया और एकदम पानी के गिलास पी करके उठ खड़े हुए! बहुत सारा उपदेश किया, किसान ने सुनने के बाद कहा – वैद्यजी आपका मतलब यही है न कि पानी बीच में होना चाहिए था। बोले–हाँ यही मतलब है। बोला–तो फिर बैठो दो मिनट। उसने चार रोटियाँ और खाईं और चार रोटियाँ और खाने के बाद कहा-अब बताना ज़रा पानी बीच में हो गया है क्या? अग़र बीच में हो गया हो तो फिर मैं चलूँ, नहीं तो और कोई कानून हो तो बता दो।

वैद्यजी ने हाथ जोड़े और कहा कि जब तू चार रोटी और खा सकता है तो फिर हाथ जोड़ता हूँ तेरे आगे कि फिर तेरा और कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, तू बिल्कुल ठीक है।

परिश्रमी आदमी है न, परिश्रम वाला व्यक्ति, मेहनती व्यक्ति हर तरह से ही स्वस्थ रहता है। भगवान कृष्ण ने कहा आहार व्यक्ति अपना मर्यादित करे और कर्म करने में, जो भी आप अपनी रोज़ी-रोटी कमाने के लिए जाते हैं उसमें भी आपको ध्यान रखना चाहिए, वह भी आपका मर्यादित हिसाब-किताब हो। रात-दिन लगे हुए हैं काम में आप-ऐसा नहीं, नाप-तोल करके चला करो।

आपने एक चीज़ देखी होगी-हलवाई भोजन बनाता है तो उसमें स्वाद कुछ ज़्यादा होता है, ज़्यादा स्वादिष्ट हो जाता है वह भोजन, उसकी विशेषता क्या है? मसाला डालेगा, नमक डालेगा, कोई भी चीज़ वह डालेगा बड़ा नाप-तोल करके; नाप-तोल से मतलब है पूरा का पूरा तोल करके, हिसाब लगाकर के डालता है तो चीज़ स्वादिष्ट बन जाती है। घर में मिर्च-मसाले डालते हुए व्यक्ति के नाप-तोल में कमी हो जाये तो स्वाद में भी कमी हो जाती है। ठीक इसी तरह से जो व्यक्ति अपनी ज़िन्दगी को पूरा नाप-तोल के साथ बिताता है उसकी ज़िन्दगी ज़्यादा स्वाद से भर जाती है, ज़्यादा रसपूर्ण हो जाती है और जिस व्यक्ति के अन्दर कभी कितना कर दिया और कभी कितना कर दिया उसकी ज़िन्दगी रसहीन हो जायेगी यह बात निश्चित है। इस फार्मूले को ध्यान में रखकर के चलो, बहुत नाप-तोल करके अपने को चलाओ-अति कहीं भी करोगे वहाँ गड़बड़ हो जायेगी–कमाने में भी, कर्म करने में भी-अति नहीं करना। "*युक्तस्वस्वप्ननावबोधस्य* – जागना और सोना यह भी नियम से हो और अगर आपने नींद को बेकार कर दिया यह बात निश्चित है कि फिर आपका अन्दर का सिस्टम बिगड़ेगा। देखिये, जिस आदमी को भूख ठीक से न लग रही हो और जिसकी नींद सही नहीं हो, पूरी नींद नहीं आती तो समझ लेना सिस्टम बिगड़ गया आपका। ऐसा नियम माना गया है-***पेट नर्म, पाँव गर्म, सिर ठण्डा, डॉक्टर आये तो मारो डण्डा***-डॉक्टर अगर इस स्थिति में आए तो फिर उसको–मतलब आने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी, सीधी-सी बात यही है। पेट व्यक्ति का नरम रहे और पाँव गरम रहे, परिश्रम करता रहे,

चलता-फिरता रहे, सैर करे। चालीस साल के बाद तो यह माना जाता है कि सैर आवश्यक है; और दूसरे ढंग से कहें—आधा-घण्टा रोज़ अगर आप अपने लिए नियमपूर्वक दे दें फिर दो घण्टे तक आपको डॉक्टर की लाईन में बैठने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी-यह बात निश्चित है। और अगर आधा घण्टा अपने लिए नहीं निकालेंगे तो फिर दो-दो घण्टे तक डाक्टर की लाईन में बैठो, दवाईयाँ खाओ और काँटे चुभाओ-वह काँटे ही होते हैं न जो सुई लगती है और कई लोग अपना सिस्टम बिगाड़ लेते हैं—शूगर हो गई, अब समस्या बन गई, इलाज़ कोई है नहीं, सिर्फ़ इतना ही है कि उसको कन्ट्रोल में लाने के लिए इन्सुलीन के इंजैक्शन लगवाईये और उस समय लोगों को देखा कि शुगर हो गई तो सवेरे-सवेरे नीम के पत्ते चबा रहे हैं, कोई जामुन की कोकलें खा रहा है, कोई जामुन की गुट्ठलियाँ पूरी तरह से घोट पीसकर के पाऊडर बनाकर के पानी से पी रहा है। पूछा जाए अब क्या जीवन का यही ढंग रह गया? सीधा-सीधा मुँह से निकलता है कि मीठी ज़िन्दगी ख़त्म, कड़वी-कड़वी शुरू क्योंकि अब कड़ुवा ही लेना है, करेले का जूस पीते हुए लोगों को देख हैं, और पहले नियन्त्रण से बाहर।

परमात्मा ने यह जो कोटा बनाकर के रखा है न आपके लिए-इतना सुख ले सकते हो इस तरह से चलकर तो अगर मर्यादा में चलोगे तो देर तक अपना सुख ले सकोगे, मर्यादा से हीन होकर चलोगे तो फिर न नींद का सुख न खाने का सुख, फिर तो कोटा पूरा हो जायेगा, डाक्टर कहेगा अब शूगर नहीं ले सकते, चीनी नहीं खा सकते, नमक नहीं खा सकते, कोटा पूरा हो गया, हल्वे नहीं मिलेंगे अब, पराठें नहीं खाओगे, पूड़ियाँ नहीं खा सकते अब, सीधा ही तली हुई चीज़ें नहीं ले सकते, फ्राइड चीज़ें बन्द – तो मतलब क्या हुआ कि कोटा पूरा का पूरा खत्म हो गया – अब उस स्थिति में बैठे रहिये, हर समय यही ध्यान में रहेगा यह खा लेंगे तो यह हो जायेगा वह खा लेंगे तो वह हो जायेगा।

बहुत बड़े सेठ जिनका बहुत बड़ा कारोबार, डाईनिंग टेबल बड़ी भारी, पन्द्रह सोलह आदमी बैठ सकें एक साथ और उसमें सेठ जी बैठे हुए, चाँदी का थाल और तीन कटोरियाँ उसमें-एक कटोरी में कैप्सूल-टैब्लेट्स और एक

में थोड़ा–सा पापड़ और एक कटोरी में मूँग की दाल का पानी। तो सेठ जी इतना बड़ा मकान, इतना बड़ा कारोबार, इतनी ज़मीन ज़ायदाद, इतनी फैक्ट्रियाँ, इतनी कम्पनियाँ, किस लिए?

आदमी कहता है देखिए जी जो पहन लिया वह वस्त्र अपना, जो खा लिया वह भोजन अपना, जितनी जगह पर वह गए वह जगह काम आ गई बाक़ी तो यह सारी की सारी बेकार की चीजें होती हैं।

अब हम लोगों के लिए तो वह व्यक्ति बहुत बड़ा भोजन का थाल लगवाकर बैठा हुआ, अपने लिए इतनी चीज़। पूछा जाए ऐसा क्यों? कहता है कि किस्मत के खेल हैं। जब परमात्मा ने शक्ति दी थी, दाँत दिए थे तो चने नहीं उस समय थे, अब चने दे दिये तो दाँत चले गए। है न विचित्र! जब दाँत होते हैं तो चने नहीं होते और जब चने मिलते हैं तो दाँत गए। अच्छा हो, अपने चने मिले ना मिलें, लेकिन दाँत न खराब हों, अपने शरीर को दाव पर लगाकर, सेहत को दाव पर लगाकर धन कमा लिया तो फिर वह धन किस काम आयेगा? बाद में आप डॉक्टर से दवाईयाँ लेते रहिए कोई काम आने वाली नहीं, शरीर बिगड़ता रहेगा।

इसीलिए कहा कि नियन्त्रण लगाओ सोने में और जागने में, खाने में, पीने में, कर्म करने में – सबमें व्यवस्था बनाओ तब तो ठीक रहेगा नहीं तो बीमारियाँ आयेंगी, और जिस आदमी को आप कहोगे कि आसन जमाकर के बैठो, उसके घुटने में दर्द है तो ध्यान परमात्मा का करेगा या फिर वह अपनी चरण सेवा करेगा बार–बार पाँव दबाता जायेगा और कहेगा अब घुटने मुड़ते नहीं हैं, शरीर ठीक नहीं है, सिर दर्द हो रहा है, सरवाईकल वाली प्रोबलम है, गर्दन नीचे नहीं कर सकते, थोड़ी–सी गर्दन झुकाई गड़बड़ शुरू, एकदम चक्कर आने शुरू हो जायेंगे। इसीलिए अच्छा है कि अपने को पहले से ही मर्यादित, व्यवस्थित होकर चलाना शुरू करें, अपने बच्चों को भी सिखायें।

आप लोग देखते हैं कि जिन लोगों को डिप्रेशन शुरू होता है उनकी पहली निशानी है कि नींद कम हो जायेगी, आयेगी ही नहीं नींद या अगर आ भी गई तो रात में खुलेगी, बार–बार नींद खुलेगी, सपने आयेंगे निराशा बहुत आयेगी। तो जो लोग रात में नम्बर एक और नम्बर दो के बही खाते तैयार करते

करते, कॉफी पी पीकर के नींद को भगाते थे – अब नींद भाग गई और ऐसी भागी कि अब वापिस आने वाली नहीं, खाते रहिये डॉक्टर की टैब्लेट्स। सोचिये कि इस समय हिन्दुस्तान में दो प्रतिशत लोग हैं जो नींद की गोली खाकर सोते हैं लेकिन अमेरिका में पैंसठ प्रतिशत लोग हैं जो नींद की गोली खाकर अमेरिका जैसे देश में सोते हैं-तो आप सोचिए कि मानसिक-दशा वहाँ कैसी हो गई है, भले ही उन्नति कर ली हो, विकास कर लिया हुआ, सुख-सुविधा के साधन बहुत हो गये हों, लेकिन तनाव बहुत अधिक है।

इसीलिए मैं निवेदन करना चाहूँगा – जो लोग अपने आपको ठीक रखना चाहते हैं तो उन लोगों को पानी का सेवन ज़्यादा करना चाहिए, सत्तर प्रतिशत शरीर के अन्दर जल का तत्त्व है और भूमि पर भी इस सारे संसार में, समस्त ब्रह्माण्ड में सत्तर प्रतिशत जल है और तीस प्रतिशत में आप बाकी चीजें मान लो। आपके टेबल पर जहाँ आप काम करते हैं, अपने चपरासी को बोलकर के रखो कि यह पानी का गिलास ख़ाली नहीं रहना चाहिए, भरा रहना चाहिए क्योंकि आपको तो महसूस होता ही नहीं कि प्यास लगी भी है या नहीं, बहुत ज़्यादा लगेगी तब आप पानी मँगायेंगे और अगर पानी का गिलास सामने रखा हुआ है तो आप उठाकर के पियोगे, पानी पीते रहिए, आपको ठीक रखेगा पानी।

यह भी बात ध्यान रखना – योगी के लिए कहा गया है कि उस आदमी को चाहिए कि वह ज़्यादा चंचलता न आने दे, किसी से मज़ाक करना, किसी के साथ में व्यवहार करते समय ज़्यादा मर्यादा को भूलना यह ठीक नहीं है लेकिन यह भी एक बात महत्त्वपूर्ण है-ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान देने की बात है कि हर समय प्रसन्न रहना और शान्त रहना यह भी कर्त्तव्य है।

आज के दौर में महत्त्वपूर्ण चीज़ है व्यक्ति को दिन में तीन-चार बार खुलकर हँसना चाहिए अगर वह ठीक रहना चाहता है तो और हँसे तो ऐसा कि उसका रोआं रोआं खिल उठे, पूरी तरह से खुल कर हँसना चाहिए, अपनी आदत बनानी चाहिए, इससे व्यक्ति की जीवनी शक्ति प्रबल होती है। भगवान ने यह कहा-योगी अगर चाहता है दु:खों को काटकर के साधना के क्षेत्र में आगे बढ़े तो उसे अपना भोजन नियन्त्रित करना चाहिए, आहार शुद्ध करना

में थोड़ा–सा पापड़ और एक कटोरी में मूँग की दाल का पानी। तो सेठ जी इतना बड़ा मकान, इतना बड़ा कारोबार, इतनी ज़मीन ज़ायदाद, इतनी फैक्ट्रियाँ, इतनी कम्पनियाँ, किस लिए?

आदमी कहता है देखिए जी जो पहन लिया वह वस्त्र अपना, जो खा लिया वह भोजन अपना, जितनी जगह पर वह गए वह जगह काम आ गई बाकी तो यह सारी की सारी बेकार की चीजें होती हैं।

अब हम लोगों के लिए तो वह व्यक्ति बहुत बड़ा भोजन का थाल लगवाकर बैठा हुआ, अपने लिए इतनी चीज़। पूछा जाए ऐसा क्यों? कहता है कि किस्मत के खेल हैं। जब परमात्मा ने शक्ति दी थी, दाँत दिए थे तो चने नहीं उस समय थे, अब चने दे दिये तो दाँत चले गए। है न विचित्र! जब दाँत होते हैं तो चने नहीं होते और जब चने मिलते हैं तो दाँत गए। अच्छा हो, अपने चने मिले ना मिलें, लेकिन दाँत न खराब हों, अपने शरीर को दाव पर लगाकर, सेहत को दाव पर लगाकर धन कमा लिया तो फिर वह धन किस काम आयेगा? बाद में आप डॉक्टर से दवाईयाँ लेते रहिए कोई काम आने वाली नहीं, शरीर बिगड़ता रहेगा।

इसीलिए कहा कि नियन्त्रण लगाओ सोने में और जागने में, खाने में, पीने में, कर्म करने में – सबमें व्यवस्था बनाओ तब तो ठीक रहेगा नहीं तो बीमारियाँ आयेंगी, और जिस आदमी को आप कहोगे कि आसन जमाकर के बैठो, उसके घुटने में दर्द है तो ध्यान परमात्मा का करेगा या फिर वह अपनी चरण सेवा करेगा बार-बार पाँव दबाता जायेगा और कहेगा अब घुटने मुड़ते नहीं हैं, शरीर ठीक नहीं है, सिर दर्द हो रहा है, सरवाईकल वाली प्रोबलम है, गर्दन नीचे नहीं कर सकते, थोड़ी-सी गर्दन झुकाई गड़बड़ शुरू, एकदम चक्कर आने शुरू हो जायेंगे। इसीलिए अच्छा है कि अपने को पहले से ही मर्यादित, व्यवस्थित होकर चलाना शुरू करें, अपने बच्चों को भी सिखायें।

आप लोग देखते हैं कि जिन लोगों को डिप्रेशन शुरू होता है उनकी पहली निशानी है कि नींद कम हो जायेगी, आयेगी ही नहीं नींद या अगर आ भी गई तो रात में खुलेगी, बार-बार नींद खुलेगी, सपने आयेंगे निराशा बहुत आयेगी। तो जो लोग रात में नम्बर एक और नम्बर दो के बही खाते तैयार करते

करते, कॉफी पी पीकर के नींद को भगाते थे – अब नींद भाग गई और ऐसी भागी कि अब वापिस आने वाली नहीं, खाते रहिये डॉक्टर की टैब्लेट्स। सोचिये कि इस समय हिन्दुस्तान में दो प्रतिशत लोग हैं जो नींद की गोली खाकर सोते हैं लेकिन अमेरिका में पैंसठ प्रतिशत लोग हैं जो नींद की गोली खाकर अमेरिका जैसे देश में सोते हैं-तो आप सोचिए कि मानसिक-दशा वहाँ कैसी हो गई है, भले ही उन्नति कर ली हो, विकास कर लिया हुआ, सुख-सुविधा के साधन बहुत हो गये हों, लेकिन तनाव बहुत अधिक है।

इसीलिए मैं निवेदन करना चाहूँगा – जो लोग अपने आपको ठीक रखना चाहते हैं तो उन लोगों को पानी का सेवन ज़्यादा करना चाहिए, सत्तर प्रतिशत शरीर के अन्दर जल का तत्त्व है और भूमि पर भी इस सारे संसार में, समस्त ब्रह्माण्ड में सत्तर प्रतिशत जल है और तीस प्रतिशत में आप बाकी चीजें मान लो। आपके टेबल पर जहाँ आप काम करते हैं, अपने चपरासी को बोलकर के रखो कि यह पानी का गिलास ख़ाली नहीं रहना चाहिए, भरा रहना चाहिए क्योंकि आपको तो महसूस होता ही नहीं कि प्यास लगी भी है या नहीं, बहुत ज़्यादा लगेगी तब आप पानी मँगायेंगे और अग़र पानी का गिलास सामने रखा हुआ है तो आप उठाकर के पियोगें, पानी पीते रहिए, आपको ठीक रखेगा पानी।

यह भी बात ध्यान रखना – योगी के लिए कहा गया है कि उस आदमी को चाहिए कि वह ज़्यादा चंचलता न आने दे, किसी से मज़ाक करना, किसी के साथ में व्यवहार करते समय ज़्यादा मर्यादा को भूलना यह ठीक नहीं है लेकिन यह भी एक बात महत्त्वपूर्ण है-ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान देने की बात है कि हर समय प्रसन्न रहना और शान्त रहना यह भी कर्त्तव्य है।

आज के दौर में महत्त्वपूर्ण चीज़ है व्यक्ति को दिन में तीन-चार बार खुलकर हँसना चाहिए अगर वह ठीक रहना चाहता है तो और हँसे तो ऐसा कि उसका रोआं रोआं खिल उठे, पूरी तरह से खुल कर हँसना चाहिए, अपनी आद्त बनानी चाहिए, इससे व्यक्ति की जीवनी शक्ति प्रबल् होती है। भगवान ने यह कहा-योगी अग़र चाहता है दुं:खों को काटकर के साधना के क्षेत्र में आगे बड़े तो उसे अपना भोजन नियन्त्रित करना चाहिए, आहार शुद्ध करना

चाहिए, कर्म आदि करते हुए पूरी व्यवस्था बनाए कि ज़्यादा कर्मों में उलझ न जायें; जागना और सोना मर्यादित हो, नपा-तुला हो तो साधना में आगे बढ़ सकते हैं। फिर आगे कहा –

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।

भगवान ने कहा कि जो व्यक्ति सब में मुझे देखता है, सब प्राणीमात्र में मुझे देखता है और मुझमें सबको देख रहा है, यह सारा ब्रह्माण्ड मुझ में है और मैं सारे ब्रह्माण्ड में हूँ – कहते हैं कि मैं उसे नष्ट नहीं होने देता, ऐसे व्यक्ति को पतन की तरफ़ नहीं जाने देता अर्थात् वही व्यक्ति आत्म-कल्याण कर सकेगा, भक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ सकेगा, सबमें एक ही चेतन-तत्त्व को परब्रह्म का दर्शन करें कि हर जगह प्रभु बैठा हुआ है।

तुलसी इस संसार में सबसे मिलिए धाय ।
न जाने किस भेस में नारायण मिल जाय ।।

हर एक के साथ प्रेम का व्यवहार करो-यह भी बड़ा सुन्दर नियम है जीवन का; एक छोटे-से बच्चे में भी अपना आपके देखो; आपे घर में अग़र कोई किसी का बच्चा नौकरी करता है, वैसे तो अब परम्परा है और कानून भी है कि बच्चों को पढ़ने के लिए भेजो, उनका बचपन विकास के लिए है, आपके घर में नौकरी करने के लिए नहीं; पर यह सोचकर देखना कि अग़र आपके घर में किसी का बच्चा काम करता है, अपने बेटे को तो आप दस बार पूछ पूछकर के दूध पिलाते हैं और वह पीता नहीं, फेंक देता है उठाकर के और गरीब के बच्चे के हाथ से दूध का गिलास गिर गया, उठाकर के दे रहा था और आपने पकड़कर उसे पीटना शुरू कर दिया, तो सोचना कि आपने उसके अन्दर परब्रह्मा को नहीं देखा, उसके अन्दर की चेतना को अनुभव नहीं किया, उस चेतन तत्त्व को अनुभव नहीं किया।

ऐसा भी हो सकता है कि ज़िन्दगी कभी उस मोड़ पर पहुँच जाए कि आप गरीबी की दशा में आकर के खड़े हों, रहम की भीख माँगें और आपके ऊपर कोई रहम न करे – जीवन का कुछ पता तो नहीं है, कब क्या स्थिति घट जाए, कब क्या हो जाए। संसार का चित्र ऐसा विचित्र है उसे घूमने में देर

नहीं लगती; तख़्त वाला ज़मीन पर आकर गिरता है, यह मुकुट गिरते हुए देर नहीं लगती, सुख-वैभव छिनते हुए देर नहीं लगती ऐसे-ऐसे लोग देखे हैं जिनकी समृद्धि के शिखर आसमान को छूते थे और आज वह लोग दूसरों के यहाँ नौकरी कर रहे हैं; एक-एक बेटा, इकलौता बेटा, जिस आदमी के तीन पानी के जहाज अपने थे (नाम लेना ठीक नहीं है) उसका बैटा नौकरी करता है दूसरे के यहाँ और आदमी सोचता है कि मेरे रिश्तेदार बहुत अमीर हैं, सब सहयोग कर देंगे, कोई रिश्तेदार काम नहीं आया, सबने हाथ पीछे खींच लिए क्योंकि आपके सुख में ही तो सारा संसार साथ दे रहा है, जब आप दु:खी होते है तो तब तो सारा संसार साथ दे रहा है, जब आप दु:खी होते हैं तो तब तो बिल्कुल अकेले होते हैं, तब कोई और साथ नहीं होता, अग़र साथ होता है, तो आप अपनी पीठ के पीछे देखना अगर कोई खड़ा हुआ दिखाई देगा, जो अनुभूति करायेगा तो वह आपका परमात्मा ही होगा, संसार नहीं है इसीलिए प्राणीमात्र में अपने आपको अनुभव करो, ऐसे नहीं सताना किसी को कि किसी की मजबूरी को देखकर के आप उसे सतायें और रुलायें। वक़्त बदलने में देर नहीं लगती।

भगवान ने आत्मा स्थिति को ध्यान में रखकर कहा –

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।

सुख और दु:ख कैसी भी स्थिति सामने क्यों न हो अपने आत्म स्वरूप को ध्यान में रखकर चलते रहना चाहिए कि मैं आत्मा हूँ, चेतन तत्व हूँ, रोग हैं शरीर में, और अपनी आत्मा की उपमा में ही संसार में व्यवहार करें, प्राणीमात्र में अपने आत्म तत्त्व को रखकर के देखिये या ऐसे समझिये कोई आदमी अगर परेशानी की स्थिति में है तो एक बात कभी-कभी सोच लेना – अगर इसकी जगह मैं होता और मेरे साथ यह व्यवहार होता, उस समय मुझे कैसा महसूस होता? इतने सोच लेने में ही मन की दशा बदल जायेगी।

अर्जुन को समझाते हुए कहा कि अर्जुन अपने आपको संतुलित करने के लिए, मन को सँभालने के लिए यह नियम अपनाने चाहिएं – प्राणीमात्र के प्रति करुणा और दया रखना, समस्त प्राणियों में अपनी आत्मा को देखना और कहीं कोई दु:खी है उसका सहयोग करने के लिए तत्पर होना।

महाभारत में वह प्रसंग भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है – कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में पड़े हुए लाशों को देखते हुए शमीक ऋषि जब चले जा रहे थे और देखा हाथी घोड़े मरे पड़े हैं, इन्सान के शरीर बिखरे पड़े हैं।

शमीक ऋषि सोचते हुए आ रहे हैं इस भूमि के लिए इन्सान लड़ा करता है, मैं मालिक बन जाऊँ लेकिन ज़मीन आज भी यहीं है, मन के दिखाने वाला व्यक्ति काल को वश में करने का जो दावा करता था, आज काल उसे खा गया। इन्सान तू यह हवा के किले मत बनाया कर, जानता है तेरा भाग्य तुझे क्या देने वाला है, भाग्य ने तेरे सामने लाकर काल खड़ा कर दिया-शमीक ऋषि ऐसे बोलते जा रहे हैं और पीछे-पीछे उनके शिष्य। शमीक ऋषि ने कहा कि काल का संसार, काल का चक्र, काल की भूमि, उस भूमि से हम पाँव रखते हुए आ रहे हैं, कभी यहाँ तीर्थ थे, ऋषियों ने तप किया यहाँ, इन्द्र ने तप किया इस भूमि पर, उस भूमि से हम निकलते हुए आ रहे हैं और उनके शिष्य लोग बदबू आ रही है तो तेज़ी से उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं वह लोग।

आगे जाकर उन्होंने देखा, एक तरफ हाथी गिरा पड़ा है और थोड़ा–सा आगे देखते हैं तो चिड़िया के दो बच्चे चहचहाते हुए वहाँ बैठे हुए हैं, अण्डे के खोल हैं उनमें से निकले वह बच्चे। अब चिड़िया के बच्चे चहचहा रहे हैं और चारों तरफ लाशें। बस उसी समय शिष्यों ने देखकर के कहा–गुरुदेव, मरघट के बीच में ज़िन्दगी चहचहा रही है। क्या भाग्य है इनका?

शमीक ने कहा – ध्यान से देखो, यह हाथी का घण्टा नीचे गिरा पड़ा है। हुआ ऐसा था (उन्होंने ध्यान लगाया), तीर चल रहे थे, कोई एक चिड़िया अपने घोंसले में अण्डे देने के लिए जा रही थी और तीर लगा उसके पेट में, पेट फटा, ज़मीन में आकर के गिरी और उसके दो अण्डे जमीन पर आ गए और उसी समय दूसरा तीर चला, हाथी का घण्टा टूटकर अण्डों पर आकर गिर गया, घण्टे के बीच में अण्डे रखे रह गए; तीर चला, हाथी भी गिरा दूसरी तरफ़, चारों तरफ लाशें गिरी पड़ी हैं और देखो समय पाकर कैसी उष्णता, कैसी गर्मी मिली होगी उस अण्डों के बीच में से यह बच्चे निकल आए और कैसे किसी के चलने से घण्टे पर पाँव पड़ा तो उसमें से बच्चे बाहर निकलकर यहाँ चहचहा रहे हैं।

शमीक बोले – अब ऐसा करो इन बच्चों को उठाओ, आश्रम में रखेंगे और पालेंगे।

शिष्य कहने लगे – महाराज, जिस भाग्य ने इनको इस मरघट के बीच में भी जन्म दे दिया तो क्या भोजन वह विधाता नहीं देगा इनके लिए?

शमीक ऋषि कहने लगे-नहीं बेटा यह जो इन्सान बनाया है न भगवान ने, यह अपने रूप का ही दूसरा रूप भगवान ने बनाया है यह मनुष्य और इसकी विशेषता और इसकी सजावट है दया और अगर यह इन्सान दया नहीं करेगा, जब दया का पात्र सामने है तो फिर आगे इसको यह चोला नहीं दिया जायेगा, यह अधिकार इसको नहीं मिलने वाला। तुम्हारा फर्ज़ है दया करना, करुणा करना।

सब चीज़ों को भाग्य के भरोसे और भगवान के भरोसे मत छोड़ो क्योंकि जब तुमने जन्म लिया, तुम्हारे जन्म के साथ ही तुम्हारे लिए दूध, तुम्हारे लिए भोजन, संसार में भेजा गया था, तुम्हारे पैदा होने से पहले ही माँ के पास दूध भेज दिया गया कि तेरा बच्चा जन्म लेगा, उसका भोजन भेजा जा रहा है, तुम्हारी व्यवस्था ज़रूर कर दी गई थी लेकिन अब तुम बड़े हो गए हो तो अपना भोजन स्वयं कमाने के लिए ज़ाते हो। तो जब कोई बेबस हो और उस समय तुम समर्थ सामने हो तब तुम्हारा फर्ज़ है दया करके, सहानुभूति और प्रेमपूर्वक, उसका सहयोग करो; हो सके ज्ञान उस चरम तक पहुँचाना, चिड़िया के बच्चों में अपने आपे को डालकर देखना कि मैं ही तो यहाँ पर बैठा हुआ हूँ और तब इनको ज़ब पोषण करोगे तो देखना तुम्हारे हृदय के अन्दर तुम्हारा परमात्मा कितना प्रसन्न होकर के आशीर्वाद देता है।

भगवान कृष्ण ने कहा जो उसमें मुझे देखता है, मुझमें सबको देखता है, अपने आत्मा के अनुरूप सबके साथ व्यवहार करता है, सुख और दुःख में भूलता नहीं, कहते हैं वही योगी होता है। बड़ा सुन्दर उपदेश है यह।

लेकिन इसी उपदेश के साथ में आगे व्यवस्था बदल गई क्योंकि अर्जुन ने आगे फिर प्रश्न किया, अर्जुन फिर जानना चाहता है कि मन को सम्भालने के लिए, तन को सम्भालने के लिए जो व्यवस्थायें बताई गई हैं, उसमें सबसे ज़्यादा मुश्किल चीज़ है मन –

चञ्चलं हि मनः कृष्णः प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।

हे कृष्ण! मन बड़ा चंचल है और यह इतना मथ देने वाला है व्यक्ति को, अपना ज़ोर चल नहीं पाता, *तस्याहं निग्रहं मन्ये* – इसको कब्ज़ा करने को मैं ऐसा मानता हूँ – *वायोरिव सुदुष्करम्* – जिस प्रकार से कोई हवा को कैद करना चाहे तो कैद नहीं हो सकती, मन बड़ा चंचल है *बलवद्दृढम* – बलशाली है और ज़िद्दी है, मन ज़िद्दी है, मन चंचल है, मन हवा की तरह पकड़ पाना मुश्किल है, हे कृष्ण। इसका निग्रह कैसे हो सकता है, इसे कैसे बाँध जा सकता है? बड़ा प्यारा प्रश्न पूछा है-मन को बाँधने के लिए और सम्भालने के लिए हम क्या करें?

भगवान ने इसका उत्तर दिया-श्रीकृष्ण उत्तर देने लगे हैं –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।

बेशक मन चंचल है और इसको विग्रह करना बहुत कठिन है लेकिन हे अर्जुन, अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से इस मन को पकड़ा जा सकता है। मैं मानता हूँ कि मन चंचल है और मुश्किल से कब्ज़े में आता है लेकिन अर्जुन वैराग्य और अभ्यास जिसका मज़बूत है वह अपने मन को नियंत्रित करता है।

यह बड़ा ही मार्मिक और जीवन में तुरन्त अपनाने योग्य उपदेश है कि अगर आप अपने आप को नियंत्रित करना चाहते हो तो उसका नियम यह है कि जिधर से हटाना है उधर का वैराग्य मन में पैदा करो, बार-बार वहाँ के बारे में सोचो – वहाँ जाना तेरे लिए ठीक नहीं, यह खाना ठीक नहीं, यह तुझे लाभ नहीं देगा, यहाँ जाना तेरे लिए उपयोगी नहीं है, यहाँ जाने से तेरी उन्नति नहीं होगी, यहाँ जाने से तुम्हें यह-यह कष्ट होंगे, यहाँ जाने से तुम इस तरह से हानि उठाओगे, इस तरह से अपने मन को बार-बार समझाओ, वहाँ के दोष बताओ और बताने के बाद मन के अन्दर वैराग्य पैदा कर दो, राग से विपरीत वैराग्य है, अनासक्ति पैदा कर दो। दूसरे ढंग से कहें कि घृणा पैदा हो जाए वहाँ के लिए और ज़िधर जाना है उधर के प्रति मन में भाव पैदा करो, प्रेम जगाओ,

रुचि पैदा करो और बार-बार वहाँ जाने का अभ्यास करो तो मन अभ्यास में आ जायेगा और जहाँ से यह बार-बार जिन आदतों का गुलाम था, वहाँ की घृणा को ध्यान में रखते-रखते वहाँ से हटाकर दूसरी तरफ़ लगाते-लगाते अच्छी तरफ़ तो अच्छाई का अभ्यस्त हो जायेगा और बुराई से विपरीत हो जायेगा, इसीलिए मन को सम्भालने के लिए अभ्यास और वैराग्य की नितान्त आवश्यता है।

दूसरे ढंग से समझिए-किसी नहर में पानी का वेग बहुत तेज़ी से आ रहा हो और आप चाहते हैं उस नहर को रोक दें, नदी को रोक दें और जिध र मर्ज़ी आए उधर बहाना शुरू कर दें तो कैसे सम्भव है? अग़र आप नदी को रोकने के लिए, नहर को रोकने के लिए, उस तेज़ बहाव वाले पानी के आगे मिट्टी डालना शुरू करेंगे तो मिट्टी को पानी का वेग बहाकर के आगे ले जायेगा, आपका सारा प्रयास बेकार। क्या करना चाहिए? जिधर पानी बहाना है, पहले उधर की नाली बनाओ कि इधर मैंने बहाना है, इधर मैंने जाना है उधर का रास्ता बनाना शुरू करो, उधर की व्यवस्था बनाओ। उसके बाद उस नाली में पानी को काटो, तो कुछ पानी आपकी बनाई हुई व्यवस्था के अन्दर बहना शुरू करेगा और कुछ पानी जिधर जा रहा है, नदी के अन्दर, उधर ही बहना शुरू करेगा बहता रहेगा। अब आपने क्या करना है एक जग़ह से थोड़ा-थोड़ा मिट्टी जमानी शुरू कर देनी है और मिट्टी का बाँध बढ़ाते चले जाईये आगे तक, पानी आगे टक्कर मारेगा उसे तोड़ने के लिए लेकिन जब पानी को आगे रास्ता नहीं मिलेगा और उससे पहले रास्ता उसका बना हुआ है तो फिर वह क्या करेगा- वहाँ से रूक जायेगा, दूसरी तरफ़ बहना शुरू कर देगा। मन की ऊर्जा बड़ी ताक़त के साथ आपके अन्दर बह रही है।

आप व्यवस्था बनाओ जिधर उसे बहाना चाहते हो उधर का ख़ाता तैयार करो, उधर की व्यवस्था बनाओ और बनाने के बाद सीधा मन को काटकर उध र ले जाने के लिए प्रयत्नशील हो जाओ। एक तरफ़ से रोको, जिधर से रोकना है उधर का मतलब है वैराग्य और जिधर लगाना है उधर का मतलब है अभ्यास; एक तरफ़ से रोकना और दूसरी तरफ़ का अभ्यास करना, निश्चित रूप से पकड़ मज़बूत हो जायेगी और सफल हो जाओगे।

इस बहाव को आप बदल सकते हैं इसीलिए हमारे देश में ऐसा हुआ कि वाल्मीकि अपने पहले स्वरूप से जितनी ऊँचाई पर पहुँचे हैं ऐसा दिखाई देता है–अँधेरे के बीच सूरज उग गया। तुलसीदास, पहला जीवन कीचड़ में लथपथ, दूसरा जीवन–कीचड़ से जैसे कमल खिल गया, देवताओं को चढ़ाये जाने वाले सब फूलों में सबसे सुन्दर और पवित्र कमल होता है और इसकी विशेषता इसीलिए है, सबसे पवित्र माना जाता है क्योंकि वह कीचड़ में ऊगा, उसका भाग्य है कीचड़ में उगना, क़िस्मत ने उसको जन्म कीचड़ में दिया पर इसका पुरुषार्थ देखिये, कीचड़ में रुका नहीं बैठा, ऊपर उठा और इतना ऊपर उठा कीचड़ की भी शोभा बड़ी दी अपने खिलने से और वही पवित्र, सुन्दर पुष्प भगवान के चरणों में चढ़ाने के योग्य बना। अपने अभ्यास से, वासनाओं के कीचड़ से अपने कमल को ऊपर ऊँचा खिलना शुरू करो।

याद रखना, जहाँ से आपकी रीढ़ की हड्डी शुरू होती है वह कीचड़ वाला स्थान है, वासनाओं के कीचड़ वाला स्थान है और आपका जो यह मस्तिष्क है, इसका जो यह सबसे ऊपर वाला भाग है इसको बोलते हैं सहस्रार चक्र, सहस्र, दल, कमल या शत्दल कमल–सौ पंखुड़ियों वाला कमल है यहाँ और रीढ़ जहाँ से शुरू हो रही है वहाँ वासनाओं का कीचड़ है और रीढ़ जो है वह है इस कमल की डण्डी और कमल खिला है कहाँ? सिर के ऊपरी भाग में। अब पता चला कीचड़ में, वासनाओं के कीचड़ में ही, वहीं आपकी ऊर्जा शक्ति सोई पड़ी है। ध्यान से, साधना से, अभ्यास से, इस ऊर्जा शक्ति को ऊपर उठाना शुरू करो और यह जो कमल अब तक बन्द था इसे खिलाना शुरू करो और इसी कमलदल के अन्दर तुम्हारा परमात्मा विराजमान है, यहाँ आकर उसे पा लोगे।

इसीलिए साधना में योगी के लिए जो आसन जमाकर बैठने के लिए कहा गया, तो आसन सीधा रखने का मतलब है ऊर्जा शक्ति को नीचे से ऊपर लेकर जाना है और यह जो छः चक्र हैं इनका भेदन करते हुए ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचना है। यहाँ तक आप पहुँच जायें तो इसका मतलब है कि बस यहाँ आने के बाद अपने आनन्द में आप समाहित हो गए। परमात्मा ने इन्द्रियों का मुख बहिर्मुख बनाया है; पानी का बहाव नीचे की तरफ़ जाता है, ऊर्जा भी नीचे की

तरफ़ जा रही है लेकिन पानी को ऊपर पहुँचाया जा सकता है, आप काम लेते हैं पानी को तो टैंकी में पहुँचाते हैं न और टैंकी में जब पानी पहुँच गया तो पूरी फोर्स से पहुँचाते हैं, उसके बाद वह पानी आपके उपयोग में आ रहा है, आपका कल्याण कर रहा है आप भी इस ऊर्जा शक्ति को पूरी ताक यहाँ तक पहुँचाओ और जब यहाँ पहुँच जायेगी तो आपका भी भला करेगी और संसार का भी भला करेगी, आपके काम आयेगी; नहीं तो फिर यह ऊर्जा शक्ति संसार की तरफ़ बहती चली जायेगी, नीचे ही गिरती चली जायेगी। इसीलिए सारा ध्यान ऊर्जा को ऊपर ले जाने का है।

भगवान कृष्ण ने एक शर्त्त लगाई थी (आपने कल के प्रसंग में जाना था) कि संयम पूर्वक साधना करनी चाहिए, ऊर्जा को सम्भालकर ऊपर ले जाना चाहिए, पूरी शक्ति लगाकर जो फूल खिलता है वह पूरी तरह खिलता है और उसकी सुगन्ध भी फिर संसार को पूरी मिलती है। तुम्हारे विकास में तुम्हारी ऊर्जा पूरी तरह लग जाए तो चमत्कार हो जायेगा, आधा-अधूरा रूप लेकर के संसार में मत जाना। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आप संसार में पूरी तरह से पीठ करके खड़े हो जायें क्योंकि बहुत लोगों ने ऐसी कोशिश की – इन्द्रियों ने सताया आँखें फोड़ लीं, अंग भंग कर लिया लेकिन उसके बाद में कोई विशेषता नहीं आई। ठीक है, शरीर में आँखें अब देखती नहीं है लेकिन मन जो विकारों से ग्रस्त है उसका क्या करोगे?

कहा जाता है कि किसी समय पुष्यमित्र नाम के जो राजा थे उसी युग में ऋषि पतंजलि थे और अश्वमेघ यज्ञ पुष्यमित्र राजा ने रखा। जिस दिन समापन हो गया, पूर्णाहुति हो गई, तो सारे देशों से आए जितने राजा लोग थे उनकी विदाई के अवसर पर एक नृत्य और संगीत का समारोह रखा गया और सारे संसार में योग के अमृत को बाँटने वाले, योगदर्शन के रचयिता-पतंजलि ऋषि – को भी वहाँ पर आमन्त्रित किया गया और नृत्य में, संगीत में, तन्मय होकर बैठ गए पतंजलि ऋषि और इनका एक शिष्य था जिसका नाम था-चैत्र। उसे अच्छा नहीं लगा।

अगले दिन जब गुरु के सन्निध्य में बैठकर क्लास लगी, कक्षा लगी, तो चैत्र ने कहा – गुरुदेव, वृत्तियों को ठीक रखने के लिए आपने बताया संसार से उन्मुख हो जाओ लेकिन यह क्या-संगीत और नृत्य की सभा में योग का प्रवक्ता बैठा हुआ है! तो क्या वहाँ वत्तियाँ बिख़र नहीं सकती?

बोल तो गया शिष्य लेकिन गर्दन नीची करके गुरु के चरणों की तरफ़ देखता रहा और आँसू बहाकर के बोला – क्षमा करना गुरुदेव, आवेश में आकर के मुँह से निकल गया।

पतंजलि ऋषि कहने लगे-यह जो आत्मा है यह रस में जीती है। आदमी की जिधर रुचि होती है न उधर के रस में वह डूबने लगता है मैंने जो तुम्हें साधना बताई वह यह बताई कि रुचि पैदा करो-साधना में, भक्ति में, परमात्मा में लेकिन परमात्मा के इस संसार में बड़ी विभिन्नतायें हैं और उन विभिन्नताओं में जो रस वाली चीजें हैं, रस में संगीत भी है और नृत्य भी है। अगर तुम्हारा अन्त:करण दृढ़ है और तुम्हारी साधना ख़री है तो संगीत और नृत्य वाली जगह में तुम परमात्मा की महिमा के दर्शन करके उठोगे, बिखरोगे नहीं क्योंकि वहाँ तुम परमात्मा की मधुरता को अनुभव करोगे

साधना के कुछ नियम ऐसे भी रहे, पतंजलि का एक अलग ढंग है; लेकिन साथ में पतंजलि आगे फिर कहते हैं एक बात तो बताओ चैत्र, कोई किसान जब अपनी खेती, फसल उगाता है तो अगर उसको यह डर हो कि कहीं पशु आकर सारी खेती बर्बाद न कर जायें क्योंकि पशु तो आते हैं चरने के लिए, तो क्या इस डर से कोई व्यक्ति खेती करना बन्द कर देता है? कोई खेती बन्द नहीं करता; पशुओं पर नियन्त्रण लगता है, खेती अपनी उगाता चला जाता है भाई, इस संसार के रसों की खेती के बीच में रहो ज़रूर लेकिन वह जो पशु वृत्ति है उसे बाहर रोकने की कोशिश करो तभी कल्याण होगा और मैंने भी ऐसा ही किया है। पशुता को निमन्त्रण नहीं देना, हर वस्तु में अपने प्रभु का दर्शन करना, वहाँ तक अपने को ले जाना है और उन्होंने कहा है कि जिसकी निष्ठा हो उसका प्रत्याहार करो, बहुत दृढ़ता लाओ।

आप लोग जानते हैं कि हमारे देश जो की साधनायें हैं उनमें जहाँ प्राणायाम खींचते हुए मतलब यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा,

ध्यान, और फिर समाधि-यह आठ अंग बताये गए हैं और चित्त को कोमल करने के लिए कहा गया है कि सबके साथ मित्रता का व्यवहार करो, किसी के साथ दुश्मनी नहीं बढ़ाओ और करुणा का प्रयोग करते चले जाओ, दूसरों की उन्नति देखकर के जलो नहीं; साथ में यह भी बताया गया दुष्टों को देखकर के उपेक्षा करो, उनसे प्रभावित नहीं हो, पाप और पुण्य का विवेक रखो और सुख-दुःख में समान रहो, इससे चित्त कोमल होता है और चित्त कोमल हो तो साधना स्थिर होती है। यह सब नियम बताए गए लेकिन एक चीज़ और भी है-इतना प्यार पैदा करो अपने परमात्मा के प्रति कि उसके विरह में रोना आ जाए।

शेख फरीद ने कहा न-"कोयल, तू जो इतना मीठा बोलती है रचने वाले विधाता ने जब तुझे इतना मीठा स्वर दिया तो फिर यह कमी क्यों छोड़ दी कि तुझे काला बना दिया? तेरे मीठे स्वर से, तेरे गुणों को देखकर के तो अनुभूति होती है कि सुन्दरता अगर कहीं आकर एक जगह जुड़ गई है तो कोयल तेरे स्वर में आकर जुड़ गई है।

कोयल तो मीठा मीठा स्वर उच्चारण करके चली गई पर शेख फ़रीद ने आगे जाकर कहा, पता लगा, अपने प्यारे के विरह में गीत गाते गाते तो काली पड़ गई है इसीलिए तेरा रंग काला है।

शेख फरीद यहाँ आकर कहते हैं – ओ मालिक! ऐसा ही मीठा स्वर दे कि तेरे प्यार में गाऊँ और गाते-गाते अगर यह तन काला भी पड़ जाए तो भी कोई बात नहीं लेकिन तेरे गीत गाने की मस्ती ख़त्म नहीं होनी चाहिए, रुचि जगा देना और भक्ति में एक रूप तो यह भी आता है। किसी शायर की लिखी यह पंक्तियाँ अच्छी लगीं–

सबकी पूजा एक सी अलग-अलग हर रूप ।
मस्जिद जाए मौलवी कोयल गाए गीत ।।

भगवान आगे फिर समझाते हैं कि अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से अपने आपको नियन्त्रित करना चाहिए, मन सम्भलेगा और दर्शन होंगे। समझाते हैं –
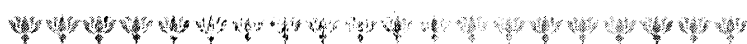
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।।

एक लोग तप तपते हैं, तप तपकर के अपनी आत्मा को बलवान बनाते हैं, शरीर को बलिष्ठ करते हैं, मनोबल बढ़ाते हैं, बुद्धिबल बढ़ाते हैं, इस तरह से अपने को जीतते हैं लेकिन उनसे भी महत्त्वपूर्ण है-योगी। ध्यान रखिये, ईटें कच्ची हों और उनसे मकान बनाया जाए तो वह एक दो बरसात कच्ची ईंटों का मकान सह नहीं पाता लेकिन वही ईंटें आग में तपा दी जायें, आगे में तपाई हुई ईंटें इतनी मज़बूत हो जाती हैं कि सैकड़ों सालों तक मज़बूती से उनका बनाया हुआ भवन खड़ा रहता है और न जाने कितनी आँधी और बरसात को सहने में समर्थ हो जाता है। हर कोई आदमी शरीर से तो कच्चा ही है। तपस्या की अग्नि में जब उसे तपाया जाता है तब ही वह कोई महान् पुरुष बना करता है और ऐसे महापुरुष के द्वारा सैकड़ों हज़ारों सालों तक संसार का भला होता है इसीलिए तपस्वी होना साधारण बात नहीं बहुत बड़ी बात है।

अन्न कच्चा हो तो शरीर में पचना मुश्किल हो जाता है इसीलिए क्या करते हैं उसे पकाना पड़ता है, आसानी से पक जाए लाभकारी हो जाता है; अगर ज़िन्दगी को ज़्यादा लाभकारी बनाना है तो फिर उसे तपाओ, तपस्या में लगाओ।

भगवान कृष्ण कहते हैं तप महत्वपूर्ण है; दुनिया में जो भी ऊँचा उठा उसने तप किया, पर इससे भी बढ़कर योगी है।

भगवान कृष्ण ने बारह वर्षों तक बद्रीनाथ-धाम में तप किया और एक वर्ष तक तो केवल बद्रीफल खाकर के तप किया। इसीलिए बद्रीनाथ ब्रदी बेर को बोलते हैं। भगवान कृष्ण ने इतना तप किया और तीर्थ का विशिष्ट लाभ लेने के लिए और संसार को दर्शाने के लिए ऋषिकेश से ऊपर वाली भूमि, जहाँ जाकर के अपना गरुड़ वाहन रोका, उसका नाम अभी भी गरुड़चट्टी है। वहाँ से फिर नँगे पाँव पैदल चलते हुए गए साधना के लिए; बारह वर्षों तक तप किया यह दर्शाने के लिए कि तप करना हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है, अपनी आत्मा को निखारने के लिए। तप के लिए ज़रूरी होता है एकान्त स्थान हो, प्रकृति का सुन्दर स्थान हो और जाने-पहचाने चेहरे वहाँ नहीं होने

चाहिएं, अनजाने स्थान में जाकर बैठो; अज्ञातवास-ऊँचा उठाने के लिए नियम है अपने आपको।

तो कहते हैं कि तपस्वी से भी अधिक योगी है और तपस्वी होने के बाद अग़र आदमी ज्ञानी न हो क्योंकि तपस्वियों से कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होते हैं ज्ञानी लोग और ज्ञानी होने के साथ में व्यक्ति के लिए ज़रूरी चीज़ है कर्मयोगी होना चाहिए।

भगवान कृष्ण कहते हैं ज्ञान, कर्म और तप-इन सबको मिलाकर के भी अग़र एक जगह जोड़ दिया जाए तो इन सबसे भी बढ़कर के योगी होता है, योगी महान् होता है, इसीलिए अर्जुन योगी बनो, योग को अपनाओ और योगी होने के लिए ज़रूरी है कि ज्ञान योग, कर्मयोग, सांख्ययोग, भक्तियोग, सबका सामंजस्य बनाओ तो फिर योगी योगी बनता है। इसीलिए अर्जुन से कहा – *'तस्मात्'* – इसीलिए, इससे, *'योगी भवार्जुन'* – अर्जुन तुम योगी बनो लेकिन यह योगी कैसे रहे, कैसे चले, क्या क्या अपनाये, यह भी एक महत्त्वपूर्ण चीज़ है – आहार बताया, साधना बताई, मन को वश में करने का मार्ग भी बताया, निद्रा और चेष्टाओं के सम्बन्ध में कहा, आसन कैसा होना चाहिए यह सब बताया लेकिन उसके बाद कैसे चलें भगवान कृष्ण इस प्रसंग को भी फिर पकड़ते हैं, जो कि अगले अध्याय में बताया जायेगा।

बहुत-बहुत शुभकामनायें

अध्याय-छह

ध्यानयोग

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच
जो मनुष्य कर्मफल की इच्छा न करता हुआ उस काम को करता रहता है, जो उसे करना चाहिए, वह सन्यासी है, वह योगी है, वह संन्यासी नहीं है, जो यज्ञ की अग्नि जाना बंद कर देता है और कोई धार्मिक क्रियाएं नहीं करता

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

जिसे वे लोग संन्यास कहते हैं, ये पांडव (अर्जुन), उसे तू अनुशासित कर्म (योग) समझ, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने (स्वार्थ के) संकल्प को त्यागे बिना योगी नहीं बन सकता।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

जो मुनि योग तक पहुँचना चाहता है, उसके लिए कर्म को साधन बताया गया है, जब वह योग को प्राप्त कर लेता है, तब शम अर्थात् शान्ति को साधन बताया गया है।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥

जब कोई मनुष्य इन्द्रियों के विषय में या कर्मों में आसक्त नहीं होता और सारे संकल्पों का त्याग कर देता है, तब कहा जाता है कि उसने योग को प्राप्त कर लिया है (योगारूढ)

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने-आपको ऊपर उठाए, अपने-आपको नीचे न गिराए, क्योंकि आत्मा ही अपनी मित्र है और केवल आत्मा ही अपनी शत्रु है।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

जिसने अपने (निम्नतर) आत्मा को अपने (उच्चतर) आत्मा से जीत लिया है, उसकी आत्मा मित्र होती है। परन्तु जिसने अपनी (उच्चतर) आत्मा को पा नहीं लिया है, उसकी आत्मा ही शत्रु के समान शत्रुतापूर्ण व्यवहार करती है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु यथा मानापमानयोः ॥७॥

जब मनुष्य अपनी (निम्नतर) आत्मा को जीत लेता है और आत्मप्रभुत्व की शांअति प्राप्त कर लेता है, तब उसकी सर्वोच्च आत्मा सदा समाधि में स्थित रहती है, वह सर्दी और गर्मी में, सुख और दुःख में, मान और अपमान में शान्त रहती है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥८॥

जिस योगी की आत्मा ज्ञान और विज्ञान द्वारा तृप्त हो गई है और जो कूटस्थ (अपरिवर्तनशील) है और जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, जिसके लिए मिट्टी का ढेला, पत्थर या स्वर्णखंड एक जैसे हैं, उसे योगमुक्त कहा जाता है।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

जो व्यक्ति मित्रों, साथियों और शत्रुओं में, तटस्थों और निष्पक्षों में, द्वेष रखने वालों और सम्बनिधयों में, सन्तों में और पापियों में एक-सा भाव रखता है, उसे अधिक अच्छा माना जाता है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

योगी को चाहिए कि वह एकान्त में अकेला बैठकर अपने-आपको वश में रखते हुए, सब इच्छाओं से मुक्त होकर और किसी भी परिग्रह (धन-सम्पत्ति या साज-समान)) की कामना करते हुए अपने मन को (परमात्मा में) एकाग्र करे।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

किसी स्वच्छ स्थान में ऐसी जग अपना आसन बिछाकर जो न बहुत ऊँची हो और न बहुत नीची हो, और उस पर कुशाघास, मृगचर्म और वस्त्र एक के ऊपर एक बिछाकर,

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

वहां उस आसन पर बैठकर, अपने मन को एकाग्र करके और चित्त और इन्द्रियों को वश में करके योगी को आत्मा की शुद्धि के लिए योगाभ्यास करना चाहिए।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं दिशाश्चनवलोकयन् ॥१३॥

अपने शरीर, सिर और गर्दन को सीधा और स्थिर रखते हुए नासाग्र पर दृष्टि जमाकर, अन्य किसी की दिशा में न देखते हुए (आंखों को इधर-उधर बिना भटकने दिए।)

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

प्रशान्त मनवाला और निर्भय, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हुआ वह अपने मन को मेरी ओर मोड़कर और केवल मुझमें ध्यान लगाकर संयत होकर बैठ जाए।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

इस प्रकार वह योगी, जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, सदा योग में लगा रहकर शान्ति और उस परम निर्वाण को प्राप्त करता है जो मेरे अन्दर विद्यमान है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति नबे नैव चार्जुन ॥१६॥

वस्तुतः योग उकसे लिए नहीं है, जो बहुत अधिक खाता है, और न उसके लिए जो बिल्कुल ही नहीं खाता। हे अर्जुन, यह उसके लिए भी नहीं है, जो बहुत अधिक सोता है या बहुत अधिक जागता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

जो व्यक्ति परिमित मात्रा में आहार और विहार करने वाला है, जिसने अपनी चेष्टाओं को नियम में रखा हुआ है, जिसकी निद्रा और जागरण नियमित है, उसमें एक ऐसा अनुशासन (योग) आ जाता है, जोस ब दुःखों का नाश कर देता है।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

जब चित्त सब लालसाओं से रहित होकर और अनुशासित होकर केवल आत्मा में ही स्थित हो जाता है, तब वह समस्वरता को प्रापत हुआ (योग में लीन) कहलाता है।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

जिस प्रकार वायुहीन स्थान में रखा हुआ दीपक कांपता नहीं है, वह ही उस योगी को उमना माना गया है, जिसने चित्त को वश में कर लिया है और जो आत्मा के साथ संयोग का (या अपने-आपको अनुशासन में रखने का) अभ्यास कर रहा है।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

जिसमें पहुँचकर एकाग्रता के अभ्यास द्वारा वश में किया गया चित्त शान्त हो जाता है और जिसमें वह आत्मा के द्वारा आत्मा को देखता है और आत्मा में आनन्द प्राप्त करता है।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

जिसमें वह बुद्धि द्वारा ग्रहण किए जाने वाले और अतीन्द्रिय परम आनन्द को प्राप्त करता है और जिसमें स्थित होकर वह कभी तत्त्व से विचलित नहीं होता;

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

जिसे प्राप्त करके वह समझता है कि इससे बड़ा और कोई लाभ नहीं है और जिसमें स्थित होने पर वह बड़े से बड़े दुःख से भी विचलित नहीं होता;

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥२३॥
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ।

उसको योग नामक वस्तु समझना चाहिए, जो दुःखों के साथ संयोग से अलग हो जाना है। इस योग का अभ्यास दृढ़ संकल्प और अनुद्विग्न चित्त से किया जाना चाहिए।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥

निरपवाद रूप (स्वार्थपूर्ण) संकल्प से उत्पन्न हुई सब इच्छाओं का परित्याग करके और सब इन्द्रियों को सब ओर से मन द्वारा वश में करते हुए ;

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥२५॥

वह स्थिरता द्वारा नियन्त्रित बुद्धि से और मन को आत्मा में स्थिर करके धीरे-धीरे प्रशान्तता को प्राप्त करे और वह (अन्य) किसी वस्तु को भी विचार न करे।

यतो यतो निश्चलति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

चंचल और अस्थिर मन जिस-जिस ओर भी भागने लगे, वह उसके काबू में करे और फिर केवल आत्मा के वश में वापस ले आए।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

सर्वोत्तम सुख उस योगी को प्राप्त होता है, जिसका मन शान्त है, जिसके आवेश (रजोगुण) शान्त हो गए हैं, जो निष्पाप है और जो परमात्मा के साथ एक हो गया है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

इस प्रकार वह योगी, जिसने सब पापों को दूर कर दिया है, आत्मा को सदा योग में लगाता हुआ सरलता से ब्रह्म के संस्पर्श से होने वाले परम सुख का अनुभव करता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगमुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

जो व्यक्ति योग द्वारा समस्वरता को प्राप्त हो जाता है, वह सब प्राणियों में आत्मा को निवास करते हुए और सब प्राणियों को आत्मा में निवा करते हुए देखता है। वह सब जगह एक ही-सी वस्तु देखता है।

योो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

जो मुझे सब जगह देखता है और जो सब वस्तुओं को मुझमें देखता है, उससे मैं कभी दूर नहीं होता और न वह ही कभी मुझसे दूर होता है।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

जो योगी एकत्व में स्थित होकर सब प्राणियों में स्थित मेरी उपासना करता है, वह कितना ही क्रियाशील क्यों न हो, फिर भी वह मुझमें ही निवास करता है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

हे अर्जुन, जो व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को अपने जैसा ही समझकर समान दृष्टि से देखता है, चाहे वह स्वयं सुख में हो या दुःख में हो, वह पूर्ण योगी समझा जाता है।

योऽयं योगस्त्वा प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥

अर्जुन ने कहा : हे मधुसूदन (कृष्ण), तूने जो समानता (मन की समता) से स्वभाव वाला यह योग बताया है, उसके लिए, चंचलता के कारण, मुझे कोई स्थिर आधार दिखाई नहीं पड़ता।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

हे कृष्ण, मन बहुत ही चंचल है। यह बहुत ही प्रचंड, बलवान् और हठी है। मुझे तो लगता है कि इसको वश में करना वायु को वश में करने की भांति बहुत ही कठिन कार्य है।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

श्री भगवान् ने कहा : हे महाबाहु (अर्जुन), निस्सन्देह मन को वश में करना बहुत कठिन है और यह बहुत चंचल है, फिर भी हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), इसे निरन्तर अभ्यास औश्र वैराग्य द्वारा वश में किया जा सकता है।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

अर्जुन ने कहा : हे कृष्ण, जो व्यक्ति श्रद्धावान होते हुए भी चंचल मन वाला होने के कारण अपने आपको वश में नहीं कर पाता और योग में सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाता, उसकी क्या दशा होती है?

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

हे महाबाहु (कृष्ण), दोनों ओर से स्थानभ्रष्ट होकर किसी भी स्थान पर दृढ़ता से जमा हुआ न होने के कारण वह ब्रह्म की ओर जाने वाले मार्ग में किंकर्तव्यविमूढ़ होकर फटे हुए बादल की भांति कहीं नष्ट तो नहीं हो जाता ?

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

हे कृष्ण, तू मेरे इस संशय को पूरी तरह मिटा दे, क्योंकि तेरे सिवाय और कोई ऐसा नहीं है, जो इस संशय को नष्ट कर सके।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ।।४०।।

श्री भगवान् ने कहा : हे पार्थ (अर्जुन), उसका न तो इस जीवन में विनाश होता है और न परलोग में; क्योंकि, प्यारे मित्र, जो व्यक्ति भला काम करता है, उसकी कभी दुर्दशा नहीं होती।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।४१।।

जो व्यक्ति योग के मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है, वह पुण्यात्माओं के लोक में जाता है और वहां अनेकानेक वर्षों तक निवा करने के बाद फिर पवित्रात्मा और समृद्ध लोगों के घर में जन्म लेता है।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।४२।।

या वह बुद्धिमान योगियों के वंश में भी जन्म ले सकता है। इस प्रकार का जन्म इस संसार में और भी दुर्लभ होता है।

तत्र तं बुद्धिसंयोग लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।४३।।

वहां वह अपने (ब्रह्म के साथ संयोग के) उन (मानसिक) संस्कारों को फिर प्राप्त कर लेता है, जिन्हें उसने अपने पूर्वजन्म में विकसित किया था और यहां से (इसे प्रारम्भबिन्दु मानकर) हे कुरुनन्दन (अर्जुन), वह फिर पूर्णता पाने का प्रयत्न करता है

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

श्री भगवान् ने कहा : हे महाबाहु (अर्जुन), निस्सन्देह मन को वश में करना बहुत कठिन है और यह बहुत चंचल है, फिर भी हे कुन्ती के पुत्र (अर्जुन), इसे निरन्तर अभ्यास औश्र वैराग्य द्वारा वश में किया जा सकता है।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

अर्जुन ने कहा : हे कृष्ण, जो व्यक्ति श्रद्धावान होते हुए भी चंचल मन वाला होने के कारण अपने आपको वश में नहीं कर पाता और योग में सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाता, उसकी क्या दशा होती है?

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

हे महाबाहु (कृष्ण), दोनों ओर से स्थानभ्रष्ट होकर किसी भी स्थान पर दृढ़ता से जमा हुआ न होने के कारण वह ब्रह्म की ओर जाने वाले मार्ग में किंकर्तव्यविमूढ़ होकर फटे हुए बादल की भांति कहीं नष्ट तो नहीं हो जाता ?

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

हे कृष्ण, तू मेरे इस संशय को पूरी तरह मिटा दे, क्योंकि तेरे सिवाय और कोई ऐसा नहीं है, जो इस संशय को नष्ट कर सके।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

श्री भगवान् ने कहा : हे पार्थ (अर्जुन), उसका न तो इस जीवन में विनाश होता है और न परलोग में; क्योंकि, प्यारे मित्र, जो व्यक्ति भला काम करता है, उसकी कभी दुर्दशा नहीं होती।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

जो व्यक्ति योग के मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है, वह पुण्यात्माओं के लोक में जाता है और वहां अनेकानेक वर्षों तक निवा करने के बाद फिर पवित्रात्मा और समृद्ध लोगों के घर में जन्म लेता है।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

या वह बुद्धिमान योगियों के वंश में भी जन्म ले सकता है। इस प्रकार का जन्म इस संसार में और भी दुर्लभ होता है।

तत्र तं बुद्धिसंयोग लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥४३॥

वहां वह अपने (ब्रह्म के साथ संयोग के) उन (मानसिक) संस्कारों को फिर प्राप्त कर लेता है, जिन्हें उसने अपने पूर्वजन्म में विकसित किया था और यहां से (इसे प्रारम्भबिन्दु मानकर) हे कुरुनन्दन (अर्जुन), वह फिर पूर्णता पाने का प्रयत्न करता है

पूर्वाभ्यासेन तनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥४४॥

वह अपने इस पहले अभ्यास के द्वारा विवश-सा होकर आगे ले जाया जाता है। योग का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर जिज्ञासु भी वैदिक नियमों के परे पहुँच जाता है।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

परन्तु जो योगी सब पापों से शुद्ध होकर, जन्म-जन्मान्तरों में अपने-आपको पूर्ण बनाता हुआ अध्यव्यवसायपूर्वक यत्न करता रहता है, वह परम गति को प्राप्त होता है (सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुँच जाता है

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

योगी-तपस्वियों से बड़ा है; वह ज्ञानियों से भी बड़ा मानाजाता है और वह कर्मकाण्डियों से भी बड़ा है; इसलिए हे अर्जुन, तू योगी ही बन जा

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

सब योगियों में भी उसी योगी को मैं अपने साथ सबसे अधिक संयुक्त मानता हूँ, जो श्रद्धापूर्वक अपनी आत्मा को मुझमें लगाकर मेरी पूजा करता है।

ए. एस. पी. अय्यर ने एक पुस्तक लिखी 'श्रीकृष्ण – डार्लिंग ऑफ ह्युमेनिटी' जिसमें उन्होंने एक सरस कथा लिखी। एक गति बुद्धिशाली व्यक्ति को कृष्ण के अस्तित्व के बारे में ही शंका थी। उन्होंने एक संत के सामने अपनी शंका प्रस्तुत की –

'मुझे प्रतीत होता है कि कृष्ण कोरी कल्पना का पात्र है। वास्तव में ऐसा कोई पुरुष हुआ ही नहीं।' उन्होंने कहा।

'यह बात है? क्या आपका वास्तव में अस्तित्व है?' संत ने जवाबी प्रश्न किया।

'अवश्य।' उस विद्वान ने विश्वास पूर्वक कहा।

'आपको कितने मनुष्य पहचानते हैं?'

'कम से कम पाँच हजार तो अवश्य। मैं प्रोफेसर हूँ, विद्वान हूँ, लेखक हूँ, आदि।

'अच्छा-अच्छा! अब यह कहिए कि कृष्ण को कितने मनुष्य पहचानते हैं?'

'करोड़ों, कदाचित् अरबों भी हो सकते हैं।'

'और यह कितने वर्षों से?'

'कम से कम इस काम को पाँच हजार वर्ष तो हुए ही हैं।'

'अब मुझे यह कहिए कि चालीस वर्ष की आपकी आयु में जो पाँच हज़ार मनुष्य आपको पहचानते हैं, उनमें से कितने आपको पूजते हैं?'

'पूजा? पूजा किसकी? मुझे तो कोई नहीं पूजता।'

'और कृष्ण को पाँच हजार वर्षों के बाद भी करोड़ों मनुष्य अभी भी पूजते हैं। अब आप ही निर्णय करें कि वास्तव में आपका अस्तित्व है अथवा कृष्ण का।'

जिनके स्मरण पात्र से अस्तित्व का अहंकार भी मिट जाता है, ऐसे कृष्ण के द्वारा कही गई "भगवद्गीता" आपके हाथ में है।

पांच हज़ार वर्ष पूर्व भारत की पुण्य भूमि पर गीता का गान गूँजा। दिग्दिगन्त गुंजायमान हुआ। विषाद से प्रसाद की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, कायरता से वीरता की ओर, पलायन से पुरुषार्थ की ओर, भागने से जागने की ओर अर्जुन को माध्यम बना प्यारे कृष्ण ने गीता का सन्देश दिया।

गीता, गंगा, गायत्री, गौ और गुरु इस पावन धरती की संस्कृति की अभिनव पहचान है। गीता संजीवनी है जो मुर्दा मन में प्राण फूँकती है। विश्व में गंगा एक ही है तो सारे संसार में गीता भी एक ही है। गंगा तन पवित्र करती है, गीता जीवन को पवित्र करती है।

आचार्य सुधांशु